हिन्दी एवं नेपाली के चयनित उपन्यासों में निहित स्त्री चेतना : संधान और विश्लेषण

पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

शोध निर्देशक

डॉ. राहुल सिद्धार्थ

विभागाध्यक्ष एवं सहायक प्राध्यापक

हिन्दी-विभाग

शोधार्थी

सुनीता गुरुङ्ग

हिन्दी-विभाग

नामांकन संख्या En16-00032

हिन्दी-विभाग

भाषा, साहित्य और कला केन्द्र

साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची (मध्य प्रदेश)

सन् 2021

शोधार्थी द्वारा घोषणा पत्र

मैं एतद् द्वारा घोषणा करती हूँ कि मैंने भाषा, साहित्य और कला संकाय के अंतर्गत हिन्दी विभाग, साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची (मध्य प्रदेश) में पी-एच.डी. उपाधि हेतु ***"हिन्दी एवं नेपाली के चयनित उपन्यासों में निहित स्त्री चेतना : संधान और विश्लेषण"*** विषय पर डॉ. राहुल सिद्धार्थ के नियमित शोध निर्देशन में यह शोध प्रबंध पूर्ण किया है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध मेरा मौलिक कार्य है, जिसे विभागीय शोध समिति द्वारा अनुमोदित किया गया है।

मैं यह भी घोषणा करती हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार इस शोध-प्रबंध में किसी प्रकार का कोई ऐसा तथ्य उद्धृत नहीं किया गया है, मेरे संज्ञान में इस शोध-प्रबंध को अंशतः या पूर्णतः इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य संस्थान में किसी उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है।

साथ ही मैं यह भी घोषणा करती हूँ कि -

- ❖ मैंने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 2009 के मापदंडों के अनुसार एक सत्र का कोर्स वर्क सफलतापूर्वक पूर्णकिया है।
- ❖ मैंने शोध-प्रबंध अंतिम रूप से जमा करने से पूर्व विभागीय शोध समिति के समक्ष प्रस्तुति दी हैएवं दिए गए निर्देशों व सुझावों के आधार पर संशोधनोंको सफलतापूर्वक शामिल किया है।
- ❖ मेरे द्वारा शोध-प्रबंध से संबंधित दो शोधपत्र (ISSN/ रेफर्ड जर्नल) प्रकाशित हैं एवं शोध विषय से संबंधितदो संगोष्ठी पत्र भी प्रस्तुत किये हैं, जिनकी छायाप्रति शोध-प्रबंध के अंत में संलग्न किया गया है।
- ❖ मेरे द्वारा प्रस्तुत शोध-प्रबंध में कोई भी सामग्री, किसी अन्य शोध या किसी प्रकाशित सामग्री का हिस्सा नहीं है। यदि किसी साहित्यिक सामग्री को लिया है तो उसका यथास्थान संदर्भ दिया गया है।

स्थान - साँची **शोधार्थी**

दिनांक - **सुनीता गुरुङ्ग**

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि शोध-प्रबंध विषय ***"हिन्दी एवं नेपाली के चयनित उपन्यासों में निहित स्त्री चेतना : संधान और विश्लेषण"*** सुनीता गुरुङ्ग द्वारा किया गया शोध कार्य है, जिसे साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची (मध्य प्रदेश) में पी-एच.डी. उपाधि हेतु मेरे निर्देशन में पूर्ण किया गया।

मेरी जानकारी के अनुसार-

1. यह शोधार्थी का मौलिक कार्य प्रतीत होता है।
2. यह शोध कार्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के मापदंडों व निर्देशों को पूरा करता है।
3. विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. उपाधि से संबंधित अध्यादेश की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

स्थान - साँची
दिनांक -

शोध निर्देशक

डॉ. राहुल सिद्धार्थ
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी-विभाग
साँ. बौ. भा. ज्ञा. अ. वि.वि.

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
	भूमिका	01-11
प्रथम अध्याय	हिन्दी उपन्यास साहित्य में स्त्री चेतना : प्रेमचंद पूर्व युग से आधुनिक युग तक	12-56
	1.1 प्रेमचंद पूर्व युग: भारतेन्दु व द्विवेदी युग में स्त्री व स्त्री संबंधी लेखन	
	1.1.1 प्रेमचंद पूर्व युग का समाज	
	1.1.2 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री-चेतना	
	1.1.3 स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यास	
	1.2 प्रेमचंदयुगीन हिन्दी-उपन्यास : स्त्री व स्त्री सम्बन्धी लेखन	
	1.2.1 प्रेमचंदयुगीन समाज	
	1.2.2 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री-चेतना	
	1.2.3 स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यास	
	1.3 प्रेमचंदोत्तर युग व स्त्री रचनाकार	
	1.3.1 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री-चेतना	
	1.3.2 स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यास	
द्वितीय अध्याय	नेपाली उपन्यास साहित्य में स्त्री चेतना-आरम्भ से आधुनिक युग तक	57-104
	2.1 सन् 1902 से सन् 1934 तक	
	2.1.1 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना	
	2.1.2 स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री-चेतना	
	2.2. सन् 1934 से सन् 1990 तक	
	2.2.1 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना	
	2.2.2. स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना	
	2.3 सन् 1990 से अद्यतन	
	2.3.1 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना	
	2.3.2. स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना	
तृतीय अध्याय	हिन्दी और नेपाली उपन्यासों में नारी-अस्मिता के निरंतर परिवर्तित होते सन्दर्भ	105-164
	3.1 स्वतन्त्रता के पश्चात् का स्त्री लेखन	
	3.1.1 हिन्दी उपन्यास और स्त्री लेखन	
	3.1.2 नेपाली उपन्यास और स्त्री लेखन	
	3.2 भूमंडलीकरण व स्त्री लेखन	
	3.2.1 भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास	
	3.2.2 भूमंडलीकरण और नेपाली उपन्यास	
	3.3 इक्कीसवीं सदी का स्त्री लेखन	
	3.3.1 इक्कीसवीं सदी और हिन्दी उपन्यास	
	3.3.2 इक्कीसवीं सदी और नेपाली उपन्यास	

चतुर्थ अध्याय	**हिन्दी एवं नेपाली उपन्यासों में स्त्री चेतना**	**165-216**
	4.1 स्त्री और पुरुष सम्बन्ध	
	4.1.1 पितृसत्तात्मक व्यवस्था	
	4.1.2 हिंदी उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध	
	4.1.3 नेपाली उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध	
	4.2 स्त्री और समाज परिप्रेक्ष्य	
	4.2.1 नेपाल एवं भारत की जनजातीय स्त्रियाँ	
	4.2.2 ग्रामीण एवं नगरीय स्त्रियाँ	
	4.3 स्त्री-चेतना और चिंतन-स्वातंत्र्य	
	4.3.1 स्त्री-चेतना का संक्षिप्त परिचय	
	4.3.2 आर्थिक सशक्तिकरण	
	4.3.3 नेपाल में नारीवादी चिंतन	
पंचम अध्याय	**हिन्दी और नेपाली उपन्यासों में स्त्री-चेतना - तुलनात्मक अध्ययन**	**217-265**
	5.1 तुलनात्मक साहित्य : संक्षिप्त परिचय	
	5.1.1 तुलनात्मक अध्ययन की प्रासंगिकता	
	5.2 हिन्दी एवं नेपाली के चयनित उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय	
	5.2.1 हिन्दी के चयनित उपन्यासों के नाम	
	5.2.2 नेपाली के चयनित उपन्यासों के नाम	
	5.3 हिन्दी और नेपाली के चयनित उपन्यासों में निहित स्त्री-चेतना का तुलनात्मक अध्ययन	
	5.3.1 सामाजिक-चेतना	
	5.3.2 आर्थिक-चेतना	
	5.3.3 स्त्री-चेतना	
	उपसंहार	**266-272**
	संदर्भ ग्रंथ सूची	**273-288**
	परिशिष्ट	**289-295**
	संगोष्ठी प्रमाण-पत्र	296-298
	शोध पत्र	299-307
	उरकुंड प्रमाण-पत्र	308-309

भूमिका

भारत और नेपाल दो अलग-अलग संपूर्णसम्प्रभुता-संपन्न देश है, फिर भी इनके बीच साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक धरातल पर बहुत कुछ साम्यता देखने को मिलती है। इनके साहित्य पर समय-समय पर विभिन्न वादों तथा आंदोलनों का प्रभाव भी देखा गया है। नेपाली और हिन्दी भाषा की लिपि एक होने के कारण नेपाली भाषा की हिन्दी भाषा के साथ समानता किसी भी अन्य भाषा से अधिक माना जाता है। अतः विचारों का परस्पर आदान-प्रदान सहज ढंग से संभव हो पाता है।

नेपाल में हिन्दी साहित्य का प्रभाव प्राचीन काल से देखा जाता है। हिन्दी साहित्य में नारी उद्धार की बात करें तो प्रेमचंद युग से ही इसका आरम्भ माना जाता है तथा नेपाली साहित्य में आधुनिक काल के उपन्यासों को देखें तो यह स्पष्ट होता है कि सदियों से तड़पती, प्रताड़ित होती स्त्रियों को आवाज देने के लिए रुद्रराज पांडेय और विष्णुचरण जैसे लेखकों ने कलम चलाया। इन उपन्यासों ने नारी समस्या को अपना आधार बनाकर समाज के ढोंगी परम्पराओं पर प्रहार किया। हिन्दी साहित्य के प्रमुख उपन्यासकार प्रेमचंद ने तत्कालीन हिन्दी साहित्य में समाज का चित्रण करते हुए जिस प्रकार यथार्थवादी उपन्यासों का आरम्भ किया था। उसी का प्रभाव हमें रुद्रराज पाण्डेय के उपन्यास में देखने को मिलता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय का शीर्षक है 'हिन्दी उपन्यास साहित्य में स्त्री चेतना : प्रेमचंद पूर्व युग से आधुनिक युगतक' जो एक परिचयात्मक अध्याय है। इसके अंतर्गत हिन्दी उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय देते हुए उसकी उत्पत्ति, विकास एवं महत्ता का उल्लेख किया गया है। उपन्यास विधा, साहित्य का एक अभिन्न अंग है। साहित्य का क्षेत्र संवेदना और विचार का है, उपन्यास भी मानव जीवन तथा समाजिक तत्वों से स्वत: जुड़ा हुआ है। इसलिए प्रेमचंद ने उपन्यास को 'मानव चरित्र का चित्रण' कहा है। उपन्यासों के अध्ययन के माध्यम से स्त्रियों को अबला घोषित करने की नहीं बल्कि उनकी खोयी हुई चेतना को जागृत करने की आवश्यकता है तथा उनके मूल्यों को जानने की जरुरत है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि हिन्दी में उपन्यास-रचना की

प्रेरणा बंगला साहित्य से माना जाता है। प्रेमचंद पूर्व उपन्यासकारों में श्रद्धाराम फिल्लौरी ने तत्कालीन नारी समाज में व्याप्त मध्ययुगीन अंधविश्वास पूर्ण कुरीतियों को मिटाकर नवीन युग के अनुकूल 'भाग्यवती' उपन्यास की रचना की। अत: हिंदी उपन्यासों के आरम्भ में समकालीन यथार्थ का अंकन इतनी गहरी संवेदनशीलता तथा स्त्री सम्बन्धित विषयों से होता हुआ देखा जा सकता है।

हिन्दी उपन्यासों में निहित स्त्री-चेतना को रेखांकित करने से पूर्व उपन्यासों में चित्रित स्त्रियों की सामाजिक स्थिति, स्वभाव एवं प्रवृतियों को समझना प्रथम अध्याय का प्रमुख उद्देश्य है। प्रस्तुत अध्याय को तीन उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है – प्रत्येक उप-अध्यायों में उस काल के स्त्री और पुरुष दोनों वर्गों द्वारा लिखे गए उपन्यासों में निहित स्त्री-चेतना का विवरण प्रस्तुत किया गया है। अतएव प्रत्येक युग के प्रवृत्ति अनुरूप उपन्यासकारों ने सामान्यत: स्त्रियों के स्थिति का चित्रण किया है, जिसका स्वरूप समय के साथ बदला भी है एवं जो समकालीन सामाजिक परिवेश, परिस्थितियों तथा सामाजिक व्यवस्थाओं को समझने में सहायक हो पाया है।

द्वितीय अध्याय 'नेपाली उपन्यास साहित्य में स्त्री चेतना : आरम्भ से आधुनिक युग तक' भी परिचयात्मक अध्याय है, जिसमें नेपाली उपन्यास के उत्थान तथा विकास का संक्षिप्त परिचय देते हुए उपन्यासों में निहित स्त्री-चेतना को दर्शाया गया है। नेपाली उपन्यासों की यात्रा सन् 1902 से प्रारम्भ होकर अद्यतन जारी है लेकिन नेपाली उपन्यास का प्रारम्भ मुख्यत: संस्कृत साहित्य के आख्यानों के अनुवाद से से माना जाता है, तत्पश्चात् अन्य स्रोतों के रूप में हिन्दी, फ़ारसी, उर्दू, अरबी, बंगाली, अंग्रेजी आदि उपन्यास नेपाली उपन्यास के स्थापना का आधार बना। इसलिए नेपाली उपन्यास के पृष्ठभूमि के रूप में संस्कृत से अनूदित ग्रन्थों केरूपांतरण रूप के अतिरिक्त उक्त स्रोतों को भी लिया जाता है।

प्रस्तुत अध्याय में नेपाली उपन्यासों के माध्यम से समाज के सर्वथा उपेक्षित वर्ग स्त्री के सामाजिक पक्षों एवं जीवन संघर्षों का चित्रण किया गया है। शुरुआती दौर में स्त्री का चित्रण पारम्परिक आदर्शवादी

रूप में दर्शाया गया है। धीरे-धीरे उसमें मनोविश्लेषणवादी, प्रगतिवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए उपन्यासकारों द्वारा स्त्री-चेतना के अनेक रूपों को उजागर करने का प्रयास किया गया है। विभिन्न काल खंडों में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार स्त्रियों की चुनौतियों, संघर्षों तथा अनुभवों को रेखांकित करते हुए उपन्यासकारों ने समाज के विकास में उनके अमूल्य योगदान को स्थान दिया है। कृष्णचन्द्र सिंह प्रधान उपन्यास को मानव जीवन के सम्पूर्णता की अभिव्यक्ति मानते हैं। इस अध्याय में कई उपन्यासकार ऐसे हुए जिन्होंने नारी-अस्मिता के वास्तविक बिंदुओं को उजागर करने का प्रयास किया। लैनसिंह बाङ्गदेल ,पारिजात, हृदयचन्द्र सिंह प्रधान आदि।

विश्व भर में जहाँ साहित्य के विभिन्न विधाओं में महिलाओं की भागीदारी को लेकर गहन अनुसन्धान हो रहे हैं, लेकिन नेपाली साहित्य के अंतर्गत इस सम्बन्ध में बहुत ही कम अनुसन्धान हुए हैं। अनेक महिला साहित्यकारों ने अपनी कृति के माध्यम से नेपाली उपन्यास के विकास में योगदान तो दिया है दुर्भाग्यवश उनके बारे में संक्षिप्त विवरण के अतिरिक्त शोध उपलब्ध नहीं है। नेपाली उपन्यास के इतिहास में अम्बालिका देवी (राजपूत रमणी' (वि. सं. 1989) पहली महिला उपन्यासकार मानी जाती हैं। लीला लुइटेल अपनी पुस्तक 'नेपाली महिला उपन्यासकार' में लिखती हैं कि इक्कीसवीं सदी में भी नेपाल की आधी आबादी अभी भी मध्ययुगीन बर्बरता से पीड़ित हैं, उनकी पारिवारिक, सामाजिक तथा कानुनी स्थिति अत्यन्त दयनीय अवस्था में है। अर्थात् इस क्षेत्र में और कार्य करने की आवश्यकता है। अत: उपन्यासों के जरिए स्त्री में आत्म-चेतना, आत्मविश्वास तथा आत्मनिर्भरता का सृजन करना नितांत आवश्यक है।

तृतीय अध्याय 'हिंदी एवं नेपाली उपन्यासों में नारी अस्मिता के निरंतर परिवर्तित होते संदर्भ' यह एक विश्लेषणात्मक अध्ययन है। प्रस्तुत अध्याय में सर्वप्रथम नारी मुक्ति के इतिहास को समझते हुए दोनों साहित्य के उपन्यासों में स्त्री के अधिकारों, उसकी मुक्ति एवं स्वतंत्रता के प्रश्न को प्रमाणिकता के साथ

विश्लेषण किया गया है। अत: नारी अस्मिता से जुड़े प्रश्नों को वैदिक काल, बौद्ध काल, मध्य काल तथा आधुनिक काल के परिप्रेक्ष्य में देखकर तत्कालीन सामाजिक कुरीतियाँ - सतीप्रथा, विधवा पुनर्विवाह निषेध, पर्दाप्रथा, बेमेल विवाह, दहेजप्रथा आदि जैसे अत्याचारों से मुक्त होने का आह्वान किया गया है जिसका संक्षेप में उल्लेख किया गया है। उदाहरणस्वरुप वेदकालीन नारियों में ऐसे कई विदुषियाँ हुईं जिनका नाम इतिहास के पन्नों पर स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया है। इनमें से कुछ प्रसिद्ध ऋषिकाओं के नाम हैं – मैत्रेयी, गार्गी, घोषा, अपाला, वाक् आदि। बौद्धकालीन नारियों ने सर्वप्रथम मुक्ति के गीत गाए, इस सन्दर्भ में थेरीगाथा में कई भिक्षुणियों के गीत संग्रहीत हैं जो अपने अनुभवों को गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती हैं। वे भिक्षुणियाँ हैं – सुमंगला, उब्बीरी, प्रकृति (चंडाल कन्या) आदि। महादेवी वर्मा यशोधरा के बारे में कहती हैं कि त्यागी बुद्ध की करुण कहानी की आधार सती गोपा भी केवल उनकी छाया नहीं जान पड़ती, वरन् उसका व्यक्तित्व बुद्ध से भिन्न और उज्जवल है। निराशा में, ग्लानि में और उपेक्षा में वह न आत्महत्या करती है, न वन-वन पति का अनुसरण। ऐसे हार न मानने वाले व्यक्तित्व से प्रेरित होकर उपन्यासकारों ने समकालीन परिवेश एवं मुद्दों को ध्यान में रखते हुए लेखन कार्य किया है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में नारी के शैक्षिक एवं बौद्धिक चेतना को और विकसित रूप देकर उपन्यासकारों के महत्वपूर्ण कार्य को रेखांकित किया है।

हिन्दी उपन्यासों की बात करें तो प्रेमचंद ने सर्वप्रथम उपन्यासों के जरिए भारतीय स्त्रियों को अबला एवं दासी जैसे उपमाओं से छुटकारा दिलवाया। उन्होंने ऐसी स्त्री पात्रों का सृजन किया जो अन्याय, शोषण तथा दमन के विरुद्ध आवाज बुलंद कर सकें। प्रेमचंद के बाद के उपन्यासकारों ने स्त्री के यौन शुचिता से सम्बन्धित प्रश्नों को भी अपने उपन्यासों में स्थान दिया। बाद के उपन्यासों के विषयों में एकल जीवन की त्रासदी, पति-पत्नी द्वंद्व, किन्नर समस्या, वेश्यावृत्ति, लिव-इन-रिलेशनशिप आदि समस्याओं को समाहित किया जाने लगा।

कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, मैत्रेयी पुष्पा, ममता कालिया, नासिरा शर्मा आदि लेखिकाओं ने स्त्रियों के राजनीतिक स्वतंत्रता एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता अर्जित करने के साथ-साथ हाशिये पर पड़ी स्त्रियों के अस्मिता को नयी दिशा प्रदान की। भूमंडलीकरण ने औरत के लिए एक खूबसूरत जेल का आविष्कार किया है, इस सन्दर्भ में सिमोन का कहना था कि चेहरे पर एक हल्की सी झुर्री, लिपस्टिक का होठों पर जरा-सा छितरा जाना, उसका सारा दिन ख़राब करने को काफी है, स्त्री को यदि मुक्ति चाहिए तो पहले गहने-कपड़ों से, प्रसाधन से मुक्ति ले। ये तो बेड़ियाँ हैं जिन्हें अबतक अज्ञानतावश वह पहनती रही और वस्तुरूप में स्वयं को पेश करती रही। ममता कालिया कृत 'दुक्खम सुक्खम' में कवि इन्दु की बेटी प्रतिभा ग्लैमर जीवन के प्रति कैसे आकर्षित होती है? उसपर चिंतन किया गया है। इसी प्रकार 'आवां' में भी बाज़ारवाद के नाम पर स्त्रियों के ऊपर होने वाले शोषण की ओर इशारा किया गया है। भूमंडलीकरण, बाजारवाद और उपभोक्तावाद के परिप्रेक्ष्य में पारिवारिक संबंधों में आयी यांत्रिकता की भयानक परिणति ममता कालिया के 'दौड़' उपन्यास में उभर आया है। पारिवारिक रिश्तों को बनाए रखने में इक्कीसवीं सदी की युवा पीढ़ी कठिनाई अनुभव कर रही है। युवाओं की संवेदना एकदम लुप्त होती जा रही है, वे अकेलेपन में ही सिमट रहे हैं, भावनाएँ नष्ट हो चुकी है। भूमंडलीकरण एवं उसके पश्चात् के उपन्यासों में स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से अधिक संपन्नता का परिचय भी देती हैं।

नेपाली उपन्यासों में भी क्रमश: सामाजिक परिवेश एवं समय की मांग अनुसार परिवर्तन देखा जा सकता है। पहले स्त्रियों की एक ही पहचान होती थीं - पति नारीको श्रृंगार हो, परमेश्वर हो, नारीका लागि पति नै सर्वस्व हो भन्ने परम्परागत हिन्दू आदर्श पनि परिवर्तित भई समानता र स्वतंत्रताको खोजी गर्दै एकअर्कामा सहयोग, सद्भाव र सम्मानको वातावरण सिर्जना हुनुपर्ने युगानुकूल धारणातर्फ नेपाली मानसिकता उन्मुख भएको कुरा उल्लेख गरिएको छ। अर्थात् नेपाली समाज में स्त्रियाँ अब समानता चाहने लगी हैं, वे अपना अधिकार चाहती हैं इसलिए पूछने से नहीं हिचकती – ए आमा म छोरी हैन, र दाइलाई

अंश मलाई क्यै छैन र? हे माँ क्या मैं तेरी बेटी नहीं? भैया के लिए अंश तो मेरे लिए क्या?? भूमंडलीकरण के कारण उच्च तथा उच्च मध्य वर्ग में मौजूद तथाकथित 'पावर विमेन' की स्थिति समाज के बहुसंख्यक आम औरतों से नितांत भिन्न है। यह बहुसंख्यक औरतें अभी भी शिक्षा, अज्ञानता और गरीबी से मुक्त नहीं हो पायी है। भूमंडलीकरण और उपभोक्तावाद के वर्तमान माहौल में एक ओर स्त्री देह में सिमटती जा रही है, उसका सौंदर्य बिकाऊ हो गया है। महिलाओं का बहुसंख्यक हिस्सा आज भी अपने को पुरुष वर्ग की दासता से मुक्त नहीं कर सकी हैं। इसलिए आवश्यक है कि पितृसत्तात्मक समाज के माहौल में पली-बढ़ी औरतें कई तरह के मानसिक ग्रंथियों से पीड़ित हैं जिनसे मुक्त होकर उन्हें अपनी दिशा स्वयं तय करनी है।

चतुर्थ अध्याय 'हिंदी एवं नेपाली उपन्यासों में स्त्री चेतना' के अंतर्गत स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की चर्चा करते हुए जनजातीय स्त्रियाँ तथा ग्रामीण और नगरीय महिलाओं के जीवन-संघर्षों को उजागर करने की कोशिश की गई है। दाम्पत्य जीवन में पड़ने वाले दरारों के कारण किसी तीसरे व्यक्ति तथा परिवार पर क्या-क्या प्रभाव पड़ता है इसका संक्षिप्त परिचय 'छिन्नमस्ता' उपन्यास का पात्र संजू के जरिए उजागर हुआ है। बेचारा संजू मियाँ-बीवी की लड़ाई में पिसता जाता है। 'आपका बंटी' में पहले ही मन्नू भण्डारी ने बंटी के मनोविज्ञान पर पड़ने वाले प्रभाव पर विस्तृत चित्रण किया था। 'अर्की आइमाई' में भी सुवर्ण और ईभा (पूर्व पत्नी) के बच्चों पर उनके रिश्तों में आए द्वंद्वों का नकारात्मक प्रभाव पड़ता देखा जा सकता है। इसलिए आवश्यक है कि पहले स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को समझना होगा, इस सम्बन्ध में महादेवी वर्मा के स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को निम्न सिद्धांतों से समझा जा सकता है - पुरुष और नारी के प्रकृतियों में उतना ही अंतर है जितना विद्युत और झड़ी में। एक से शक्ति उत्पन्न की जा सकती है बड़े-बड़े कार्य किए जा सकते हैं, परंतु प्यास नहीं बुझाई जा सकती। दूसरी से शांति मिलती है परंतु पशुबल की उत्पत्ति सम्भव नहीं। दोनों के व्यक्तित्व, अपनी पूर्णता में समाज के एक ऐसा रिक्त स्थान को भर देते हैं जिससे विभिन्न

सामाजिक सम्बन्धों में सामंजस्य उत्पन्न होकर उन्हें पूर्ण कर देता है। इसलिए आवश्यक है कि स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में संशोधन एवं सकारात्मक परिवर्तन हो। ताकि एक-दूसरे के मूल्यों को समझते हुए वे आगे बढ़ सके।

प्रस्तुत अध्याय को भी तीन उप-अध्यायों में विभक्त किया गया है जिसके अंतर्गत स्त्री और पुरुष सम्बन्ध, स्त्री और समाज परिप्रेक्ष्य तथा चिंतन स्वातंत्र्य को स्थान दिया गया है। उपन्यासों में चित्रित स्त्री और पुरुष सम्बन्ध की जटिलताओं, कुंठाओं, चुनौतियों को चयनित उपन्यासों के विभिन्न पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली है - चाहे वह शाल्मली और नरेश का सम्बन्ध हो, चाहे नरेंद्र और प्रिया या फिर सुगंधा और रितिक का हो, सानी और हरि हो, सुवर्ण और तारा हो या फिर मधुश्री और ललित आदि। ये सभी पुरुष पात्र पितृसत्तात्मक समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं, स्त्री के स्वतन्त्र अस्तित्व को नकारते हैं। 'शाल्मली' में नरेश शाल्मली को नौकरी करने की छूट तो देता है लेकिन उसे अपना गुलाम भी समझता है, शाल्मली पूर्ण स्वतंत्र हो ऐसा नहीं चाहता। इसी प्रकार नेपाली उपन्यास 'अर्की आइमाई' उपन्यास में तारा और सुवर्ण के बेमेल विवाह के कारण सुवर्ण तारा को सिर्फ एक शरीर भर समझता है। 'कारागार' की नायिका पुरुष के छद्म रूप तथा पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता को जानने लगी है वह पुरुषवादी मानसिकता द्वारा गढ़े गए स्त्रियों के छवि की व्याख्या पर प्रश्न करती है - स्वास्नीमानिसहरु चाँडै बूढी हुन्छन् भन्ने मनोवैज्ञानिक अस्त्र प्रहार गरेर उनीहरुको आत्मविश्वास र आत्मसचेतनालाई अधमरो पारी लोग्नेमानिसहरू उत्पादनको मैदानलाई अझ खुला र विस्तृत तुल्याउँन्छन्। अर्थात् पुरुषों की अपेक्षा औरतें जल्दी उमरदार होने लगतीं हैं स्त्रियों के सन्दर्भ में इस प्रकार की छवि गढ़कर उनके मनोबल एवं आत्मचेतना को निराशा में बदल देता है तथा अपने लिए आगे की संभावनाओं को निश्चयता प्रदान करता है। चयनित उपन्यासों में चित्रित स्त्री-पुरुष के बीच असमानता के दिवार के कारण सब पृथक-पृथक जीवन व्यतीत करते दीखते हैं।

स्त्री जीवन की पूर्णता मातृत्व में माना जाता है। मातृत्व की आकांक्षा स्त्री को पुरुष से जोड़ती है। 'ए लड़की' की माँ अपनी बेटी को समझाती है कि अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखते हुए परिवार चलाने और माँ बनने में ही स्त्री की सार्थकता है। इसी प्रकार जब 'आंवा' में संजय कनोई का अपनी पत्नी से कोई संतान नहीं हो पाता है ऐसी स्थिति में वह नमिता को अपने प्यार के जाल में फंसाकर उसके कोख का प्रयोग करना चाहता है। संजय कनोई जैसा व्यक्तित्व नेपाली उपन्यास 'अर्की आइमाई' के पुरुष पात्रों में भी पाया जाता है वहाँ भी तारा की कोख और देह का इस्तेमाल सब करना चाहते हैं, तारा मातृत्व का सुख भोगना चाहती है लेकिन सन्तान के बदले सेकेण्ड हैण्ड गाड़ी की चाबी पाती है। इस तरह उक्त उपन्यासों में स्त्री के मातृत्व अधिकारों के प्रश्नों को उठाया गया है।

पंचम अध्याय के अंतर्गत 'हिन्दी एवं नेपाली उपन्यासों में स्त्री चेतना-तुलनात्मक अध्ययन' नामक शीर्षक को रखा गया है जो तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित है। इस अध्याय के अंतर्गत तुलनात्मक साहित्य का परिचय देते हुए उसकी प्रासंगिकता पर चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत शोध में हिन्दी एवं नेपाली के चयनित उपन्यासों का विश्लेषण किया गया है। हिन्दी के चयनित उपन्यासों - **छिन्नमस्ता** (छ.सं.2016), **शाल्मली** (न.सं.2018), **आज बाज़ार बंद है** (2005), **कस्बाई सिमोन** (2017) और **फिरोज़ी आँधियाँ** (2018) तथा नेपाली के चयनित उपन्यासों - **माइतघर** (वि. सं. 2006) **आँधी** (दू. सं. 2018) **कारागार** (वि. सं. 2066) **अर्की आइमाई** (वि. सं. 2070) **युगसन्धि** (2002) आदि उपन्यासों के माध्यम से स्त्री के संघर्षों को चिन्हित करते हुए उनमें निहित सामाजिक चेतना, आर्थिक चेतना तथा स्त्री चेतना का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत अध्याय में उपरोक्त उपन्यासों में निहित स्त्री चेतना के विभिन्न स्वरूपों को कई पात्रों के माध्यम से उजागर करने की कोशिश की गई है तथा हिन्दी एवं नेपाली उपन्यासों में साम्यता-वैषम्यता के रूपों को चिन्हित किया गया है। तुलनात्मक साहित्य एक से अधिक भाषाओं में रचित साहित्य का

अध्ययन है। तुलना इस अध्ययन का मुख्य अंग माना जाता है। तुलनात्मक साहित्य अंग्रेजी के कम्पैरेटिव लिटरेचर का हिंदी अनुवाद है। सन् 1848 में मैथ्यू अर्नाल्ड ने सबसे पहले अपने पत्र में 'कम्पैरेटिव लिटरेचर' (comparative literature) पद का प्रयोग किया था। तुलनात्मक साहित्य साहित्यिक समस्याओं का वह अध्ययन है, जहाँ एक से अधिक साहित्यों (भाषाओं, रचनाकारों, कृतियों, युगों, प्रवृत्तियों) का उपयोग किया जाता है। इसके अध्ययन में प्रत्येक अध्याय या पृष्ठ में तुलनात्मक होने की आवश्यकता न होकर उसकी दृष्टि, उद्देश्य तथा कार्यान्वयन का तुलनात्मक होना चाहिए। इसी आधार पर प्रस्तुत अध्याय में हिन्दी एवं नेपालीके चयनित उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत अध्याय में 'छिन्नमस्ता' की प्रिया हो या 'आँधी' की नम्रता, 'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा हो या फिर 'आज बाज़ार बंद है' की पार्वती, 'फिरोज़ी आँधियाँ' की मधुश्री से लेकर, 'अर्की आइमाई' की तारा, कारागार की नायिका, 'शाल्मली' की शाल्मली और 'युगसन्धि' की लक्ष्मी आदि का व्यक्तित्व एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी उनके दर्द, पीड़ाएँ, बेबसी एवं मुक्ति की चाह एक जैसे हैं। सभी स्त्री पात्र मानसिक रूप से ज़ख्मी हैं, वे पुरुषवादी मानसिकता की शिकार होती हैं बावजूद उनकी चेतना जागृत है, वे हालातों से समझौता नहीं करतीं बल्कि दुगने उत्साह एवं निडरता के साथ संघर्ष करती है तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देती हैं।

'छिन्नमस्ता' की प्रिया कहती है कि मृत सम्बन्धों को ढोने में जितनी ताकत लगती है, उससे एक चौथाई ताकत में व्यापार किया जा सकता है। लिखना-पढ़ना या फिर कोई नया काम किया जा सकता है। अर्थात् दूसरों(नरेन्द्र जैसे व्यक्तित्व) को खुश रखने के बजाय स्त्रियों को आत्मनिर्भरता हेतु कदम बढ़ाकर समय का सदुपयोग करना चाहिए। 'कारागार' की नायिका कहती है कि हरेक कुरा राम्रो-नराम्रो जे जस्तो होस् आफैँले निर्णय गरेकी छु। यस अर्थमा म सीता होइन, निर्णायक हुँ। अत: आज की स्त्रियाँ सही हो या गलत अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेने में विश्वास करती हैं, जैसा कि रमणिका गुप्ता अपनी पुस्तक 'स्त्री-

मुक्ति : संघर्ष और इतिहास' में लिखती हैं कि स्त्रियों का एक वर्ग ऐसा है जिनकी परिभाषा के अंतर्गत स्त्री स्वतंत्रता में देह की स्वतंत्रता या मुक्त-यौन की आकांक्षा की छूट के साथ-साथ अपनी देह और यौन-संबंधों के अतिरिक्त सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक मुद्दों को सरोकारों संबंधी सभी निर्णय खुद से लेने की छूट भी शामिल है।

अत: तुलनात्मक अध्ययन विविध जातियों, भाषा-भाषियों को चिंतन के धरातल पर निकट लाता है और उनके सृजनात्मक भाव-विकास को बढ़ावा देता है, समानता और भाईचारे की भावना को प्रोत्साहित करता है। नेपाल और भारत पड़ोसी देश हैं। अत: तुलनात्मक अध्ययन दोनों पड़ोसी देशों के बीच के साहित्यिक सम्बन्धों को और भी मजबूत करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। स्त्रियों की सामाजिक समस्याओं को हिन्दी और नेपाली उपन्यासों में गहरी प्रमाणिकता व संवेदनशीलता से उठाया गया है ताकि आने वाली पीढ़ी इसी प्रेरणा के साथ विकास के तरफ अपने कदम बढ़ा सकें।

***

हिन्दी उपन्यास साहित्य में स्त्री चेतना : प्रेमचंद पूर्व युग से आधुनिक युगतक

1.1 प्रेमचंद पूर्व युग : भारतेन्दु व द्विवेदी युग में स्त्री व स्त्री संबंधी लेखन
- 1.1.1 प्रेमचंद पूर्व युग का समाज
- 1.1.2 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री-चेतना
- 1.1.3 स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यास

1.2 प्रेमचंदयुगीन हिन्दी-उपन्यास : स्त्री व स्त्री संबंधी लेखन
- 1.2.1 प्रेमचंदयुगीन समाज
- 1.2.2 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री-चेतना
- 1.2.3 स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यास

1.3 प्रेमचंदोत्तर युग व स्त्री रचनाकार
- 1.3.1 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री-चेतना
- 1.3.2 स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यास
- 1.3.2 स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यास

साहित्य हमेशा से समाज के दर्पण के रूप में अपने आप को खड़ा पाता है क्योंकि समाज में जो भी चीजें घटित होती हैं उसको साहित्य अपना लेता है और पुनः उसे अपने ढंग से जनमानस को प्रेषित कर प्रभावित करता है। अत: समाज का साहित्य पर प्रभाव देखा जा सकता है, इन्हीं गुणों के कारण साहित्य शब्द का सरलतम रूप होता है - सहितता अर्थात् शब्दों और अर्थों का मेल। स्वाभाविक है शब्द के बिना अर्थ और अर्थ के बिना शब्दों का प्रयोग करना दुष्कर है। साहित्य की रचना का तत्व ही है - जन समुदाय अर्थात् समाज। साहित्य किसी भी श्रेणी का हो पर उसमें किसी न किसी समाज की झलक आती ही है। साहित्य के विषय में प्रेमचंद अलग दृष्टिकोण रखते हैं जिसकी व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की है – "साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई है, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो।"[1] साहित्य के अनेक अंगों में से एक मुख्य अंग है उपन्यास, जिसका प्रभाव मानव प्रकृति पर पड़ता है और पड़ा भी है। उपन्यास निश्चित रूप से मनुष्य जीवन के अनेक रूपों से परिचय कराता है और बहुत कुछ सिखाता भी है। हेनरी जेम्स के अनुसार उपन्यास में जीवन के मूल संगीत को, उसकी छलना को, उसके अरूप अनगढ़ को पकड़ने की कोशिश होती है और यही प्रयास उपन्यास को जीवंत बनाता है।

वर्त्तमान साहित्य की सबसे लोकप्रिय और सशक्त विधा उपन्यास है क्योंकि यह मनोरंजन के साथ जीवन की बहुमुखी रूप को विस्तार से व्यक्त करने में सक्षम है। उपन्यासों के माध्यम से उपन्यासकार मानव-चरित्र को नया रूप देने में सक्षम है। समकालीन यथार्थ को ध्यान में रखते हुए उपन्यासकार अपने बुद्धि, अनुभव और कल्पना शक्ति (जो दूरदर्शिता भी हो) के आधार पर ऐसे उपन्यास का सृजन कर रहा है जो पाठक वर्ग के हृदय को उपन्यासों में घटित समस्याओं से न सिर्फ रूबरू करवाता है बल्कि उन समस्याओं के पीछे के कारणों को जानकर उसका निराकरण करने को भी मजबूर करता है। यदि एक उपन्यास में इतनी शक्ति है जो पाठक वर्ग के सोयी हुई आत्मा को जगा देने में समर्थ हो तो निश्चित रूप से वह उपन्यास कालजयी उपन्यास कहलायेगा। उपन्यास का आरम्भ

[1] शर्मा, रामविलास. (1952). ***प्रेमचंद और उनका युग.*** नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं. 136.

व उत्पत्ति कहाँ से हुआ यह महत्वपूर्ण मुद्दा नहीं है बल्कि उसे किस मोड़ पर ले जाना है और उसका क्या उद्देश्य होना चाहिए यह अधिक आवश्यक है। फिर भी इसके उद्भव और विकास की चर्चा किये बिना यह शोध सार्थक नहीं होगा।

हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास

हिन्दी में गद्य-साहित्य का निर्माण विभिन्न रूपों में हुआ है जिसे कई विधाओं में (नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध और समालोचना) विभक्त किया गया है। इनमें से उपन्यास विधा का आरम्भ भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में हुआ है जिसे निम्न प्रकार से देखा जा सकता है -

- **उपन्यास का अर्थ**

उपन्यास 'उप' और 'न्यास' दो शब्द से मिलकर बना है। 'उप' का अर्थ समीप और 'न्यास' का अर्थ है रचना। अर्थात् उपन्यास वह है जो कल्पित और लंबी कहानी हो और अनेक पात्रों एवं घटनाओं से युक्त हो। अंग्रेजी के 'नॉवेल' शब्द के पर्यावाची के रूप में उपन्यास को लिया गया है जिसका अर्थ होता है नया। फ्रांस में उपन्यास के लिए 'नोवास' शब्द का प्रयोग होता था जिसका अर्थ यथार्थ चित्रण होता है। अत: उपन्यास शब्द से यथार्थ जीवन के सुलभ संभव काल्पनिक चित्रण को निकट स्थापित करने का बोध होता है। "अंग्रेजी में 'नावेल' की तर्ज पर भारत में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग सबसे पहले भूदेव मुखोपाध्याय ने 1862 ईस्वी में अपनी पुस्तक 'ऐतिहासिक उपन्यास' में किया था'।"[2]

- **उपन्यास का आरम्भ**

'उपन्यास' हिंदी गद्य साहित्य की एक प्रमुख विधा है। बांग्ला और हिन्दी में इसे 'उपन्यास', उर्दू में 'नाविल', मराठी में 'कादम्बरी' तथा गुजराती में 'नवल कथा' के नामों से अभिहित किया गया है।

---

[2] तिवारी, विनोद एवं अजय आनंद (2016). ***उपन्यास कला और सिद्धांत.*** दिल्ली : अनन्य प्रकाशन, पृष्ठ सं. 07.

उपन्यास की कथावस्तु कहानी से आकार में ज्यादा ही बड़ा होता है। यह अत्यंत लम्बा लिखित गद्य कथा वृत है। उपन्यास का जन्म चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी के लगभग हुआ। पश्चिम में डेनियल डेफो द्वारा रचित उपन्यास 'राबिन्सन क्रूसो' (1719) से उपन्यास का जन्म माना जाता है। कुछ विद्वानों ने रिचर्डसन के 'पामेला' (1740) से अंग्रेजी उपन्यास का आरम्भ माना है। शेक्सपियर ने अपने कई नाटकों की रचना इटालियन उपन्यासों के आधार पर ही किया था। यह शैली इतनी लोकप्रिय हुई कि आज समस्त संसार के साहित्य में उपन्यास विधा का आधिपत्य है। गुजराती कवि उमाशंकर जोशी ने 'उपन्यास में भारत की खोज' शीर्षक आलेख में भारतीय उपन्यास की पहचान देने वाले उपन्यासों का उल्लेख किया है जिनमें प्रमुख है– 'गोरा', (रवीन्द्रनाथ टैगोर) 'सरस्वतीचंद्र', (गोवर्धन राम त्रिपाठी), 'आरण्यक', (विभूतिभूषण), 'मैला आँचल', (फणीश्वरनाथ 'रेणु') और 'मानावीनी भवाई' (पन्नालाल पटेल)। उनकी दृष्टि में आँचलिक उपन्यासों से ही भारतीय उपन्यास की मौलिक पहचान बनती है।

गत 60 वर्षों में भारत के साहित्यिक क्षेत्र में उपन्यास जितना रचा गया उतना शायद साहित्य के किसी भाग में हुआ हो। हिन्दी साहित्य से पूर्व उपन्यास का जन्म अन्य साहित्य अर्थात् बांग्ला और मराठी में हो चुका था। बांग्ला में शरतचंद्र (देवदास, श्रीकांत, और परिणीता (1953), बंकिमचंद्र (दुर्गेशनंदिनी, मृणालिनी, इंदिरा और राधारानी), रविंद्रनाथ टैगोर (राजर्षि, चोखेर बालि, गोरा), गुजराती में गोविन्ददास ('चंपावती', 'कृष्णलता' और 'सोमलता'), मराठी के प्रसिद्ध उपन्यासकार हरि नारायण आपटे (1864-1919) के 'मधली स्थिति' (1885), 'पण लक्षात कोण घेतो?' (1890) और 'चंद्रगुप्त', उर्दू में रतननाथ (फ़साना-ए-आज़ाद, सैर कोहसार, जामे-सरशार, खुदाई फौजदार) ने उपन्यास के क्षेत्र में कलम चलाई।

हिन्दी उपन्यास की परंपरा की यदि बात करें तो यह उतना ही प्राचीन है जितना कि हिन्दी काव्य। फर्क सिर्फ इतना ही है कि हिन्दी के प्राचीन काव्यों की हस्तलिखित अंश सुरक्षित रहा जबकि गल्प-साहित्य मौखिक ही बना रहा। इसलिए हम कह सकते हैं कि भारतेंदु युग से हिन्दी उपन्यास

लिखित रूप में उपलब्ध होने लगा। पहले-पहल हिन्दी में भी उपन्यास का अनूदित रूप ही आया। बाबू गोपालराम बंग भाषा से अनूदित उपन्यास – 'बड़ा भाई' (वि. सं. 1957), 'देवरानी जेठानी' (वि. सं. 1958), 'दो बहिन' (वि. सं. 1959), 'तीन पतोहू' (वि. सं. 1961), और 'सास पतोहू'। कई बार यह भी माना जाता हैं कि हिन्दी उपन्यास का श्रोत बांग्ला उपन्यास है जिससे प्रभावित होकर हिन्दी साहित्य ने एक नयी विधा को लिखित स्वरुप दिया जो है हिन्दी उपन्यास। बांग्ला में भावानीचरण बन्द्योपाद्ध्याय का 'नवबाबू विलास' (1825 ई0) और टेकचंद ठाकुर का 'आलालेर घरेर दुलाल' (1827 ई0) काफ़ी प्रसिद्ध हुए। इसके साथ ही शरतचंद्र का 'देवदास', बंकिमचंद्र का 'दुर्गेशनंदिनी', हरि नारायण आपटे का 'मधली स्थिति' (1885 ई0) भी हिन्दी उपन्यास से पहले लिखा गया था। उन्नीसवीं शती तक उपन्यास साहित्य पूरे यूरोप में समृद्ध हो चुका था।जो भारतीय भाषाएँ सीधे तौर पर अंग्रेजी के संपर्क में थी, वहाँ इसका आरंभ हिंदी से पहले हो गया था। बांग्ला और मराठी ये दोनों ही भाषाएँ अंग्रेजी के संपर्क में थी। यूरोप, इटली, इंग्लैंड में महत्वपूर्ण उपन्यासों की रचना हुई। अंग्रेजी और बांग्ला उपन्यासों की लोकप्रियता से हिंदी साहित्य में इस विधा का आरम्भ हुआ।

हिन्दी उपन्यास का भारतीय नवजागरण से गहरा संबंध माना जाता है। बंगाल और महाराष्ट्र की तुलना में हिन्दी क्षेत्र में नवजागरण की प्रक्रिया कुछ बाद में आरम्भ हुई। इस प्रकार से उपन्यास का आरम्भ हिन्दी क्षेत्र में बांग्ला और मराठी की अपेक्षा बाद में हुआ। हिन्दी में नॉवेल के अर्थ में उपन्यास का प्रथम प्रयोग 1857 ईसवीं में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने किया और भारत में 1862 ईसवीं में बंगाल में भूदेव मुखोपाध्याय ने उपन्यास शब्द का प्रथम बार प्रयोग किया था। उपन्यास निश्चित तौर पर कहानी से भिन्न थी। कहानी छोटी होती थी और उपन्यास लम्बा लिखा जाता था। उपन्यास की कथा कुछ लम्बी अथवा बड़े आकर की हुआ करती थी इसलिए उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में पत्रिकाओं में उपन्यास नाम से प्रकाशित रचनाएँ धारावाहिक रूप में प्रकाशित की जाती थी और दस से बारह अंकों में ही पूरी हो पाती थी। उसका कोई सुनिश्चित आकार नहीं था। हिंदी के प्रथम मौलिक

उपन्यास को लेकर विद्वानों में प्रायः मतभेद रहा है। इस सम्बन्ध में जिन दो उपन्यासों को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं वे है- श्रद्धाराम फुल्लोरी कृत 'भाग्यवती' (सन् 1877 ई०) तथा लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरु' (1882 ई०)। आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'हिंदी साहित्य का इतिहास' पुस्तक में श्रीनिवास दास के 'परीक्षा गुरु' को हिंदी का प्रथम उपन्यास माना है। इसी प्रकार पं. गौरीदत्त कृत 'देवरानी-जेठानी की कहानी' को डा. गोपाल राय ने हिन्दी का पहला उपन्यास स्वीकार किया है।

- **उपन्यास की परिभाषा :**

- रामचन्द्र शुक्ल - "लोक या किसी जनसमाज के बीच काल की गति के अनुसार जो गूढ़ और चिंत्य परिस्थितियाँ खड़ी होती रहती हैं उनको गोचर रूप में सामने लाना और कभी-कभी निस्तार का मार्ग भी प्रत्यक्ष करना उपन्यासों का काम हैं।"[3]
- प्रेमचंद ने उपन्यास को 'मानव चरित्र का चित्रण माना' है और साथ ही कहा है कि मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।
- डॉ. श्यामसुंदरदास ने उपन्यास को 'मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा' कहा है।
- आचार्य नंददुलारे बाजपेयी – "उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य है। इसमें मानव जीवन और मानव चरित्र का चित्रण उपस्थित किया जाता है। वह मनुष्य के जीवन चरित्र की व्याख्या करता है।"
- इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका– "उपन्यास का मूल आधार उसमें निहित यथार्थमकता का तत्व है।"
- राल्फ़ फाँक्स ने उपन्यास को 'पूँजीवादी आकांक्षा का विशिष्ट साहित्य रूप' कहा है।[4]
- हेनरी जेम्स – "उपन्यास एक ऐसा आधुनिक काव्य रूप है जिसमे एक साथ ही कहानी और नाटक, कविता और संगीत, चित्रकला और स्थापत्य का अंतर्भाव मिलता है।"[5]

[3] शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. (2002). ***हिंदी साहित्य का इतिहास.*** इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ सं. 67
[4] तिवारी, विनोद एवं अजय आनंद (2016). ***उपन्यास कला और सिद्धांत.*** दिल्ली : अनन्य प्रकाशन, पृष्ठ सं. 09.
[5] वही, पृष्ठ सं. 11.

- According to Ralph Fox "Novel is the most important gift of bourgeois or capitalist civilization to the world's imaginative culture."[6]

हिन्दी उपन्यास के उद्भव और विकास के संबंध में सम्यक धारणा बनाने के लिए प्रारंभ से आज तक के विकास को तीन कालखंडों में विभक्त कर देखा जा सकता है –

- प्रेमचंद पूर्व हिन्दी उपन्यास
- प्रेमचंदयुगीन हिन्दी उपन्यास
- प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास

➢ प्रेमचंद पूर्व हिन्दी उपन्यास

प्रेमचंद पूर्व हिन्दी उपन्यास अनुकरण-अनुसरण का युग था। संस्कृत कथा-साहित्य 'हितोपदेश', 'पंचतंत्र' एवं 'रामायण'-'महाभारत' आदि कृतियों के अनुवाद होते थे। इसके अतिरिक्त प्रेमचंद पूर्व हिन्दी उपन्यास के अंतर्गत निम्नलिखित प्रकार के उपन्यास को देखा जा सकता है-

- अनूदित उपन्यास
- सामाजिक उपन्यास
- तिलस्म/मनोरंजक उपन्यास
- ऐतिहासिक उपन्यास

• अनूदित उपन्यास

हिन्दी उपन्यास लेखन का आरम्भ अनूदित उपन्यासों से होता है जिसमें सर्वप्रथम बाबू रामकृष्ण वर्मा का नाम आता है। उन्होंने उर्दू और अंग्रेजी के उपन्यासों का अनुवाद जैसे – 'ठगवृत्तान्तमाला'

[6] Fox, Ralph. (1979). ***The novel of the People***, Lawrence & Wishart Ltd : page no. 53.

(सं.1946), 'पुलिस वृत्तान्तमाला' (1947), 'अकबर' (सं.1948), 'अमलावृत्तांतमाला' (सं.1951), 'चित्तौरचातकी' (सं.1952) कर लिया था। इसके पश्चात् बाबू कर्तिकप्रसाद खत्री ने 'इला' (1952), 'प्रमीला' (1953) का अनुवाद किया। इन अनुवादकों की भाषा में भारतेंदु काल के हिन्दी का प्रभाव देखने को मिलता है। अनूदित उपन्यास के अगली कड़ी में बाबू गोपालराम बंग भाषा से अनुवाद करते नजर आते हैं जो इस प्रकार है – 'बड़ा भाई' (सं.1957), 'देवरानी जेठानी' (सं.1958), 'दो बहिन' (सं.1959), 'तीन पतोहू' (सं.1961), और 'सास पतोहू'। उनकी भाषा चटपटी एवं वक्रता से पूर्ण होती थी और उनके लिखने का ढंग मनोरंजक्पूर्ण था। एक और अनुवादक मुंशी उदितनारायण लाल हुए जिन्होंने कई उपन्यासों का अनुवाद किया, जिनमें से 'दीपनिर्वाण' उनका प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास है। रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा लिखित उपन्यास 'चोखेर बालि' का भी अनुवाद 'आँख की किरकिरी' के नाम से हिन्दी में हुआ है।

इस अनुवाद प्रक्रिया में पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा और पंडित रूपनारायण पाण्डेय ने विशेष योगदान दिया है। गंगाप्रसाद गुप्त ने 'पूना में हलचल' आदि कई उपन्यास उर्दू से अनुवाद किया और बाबू रामचंद्र द्वारा मराठी से अनुदित उपन्यासों में 'छत्रसाल' को सबसे उत्कृष्ट माना जाता है। "बंगभाषा के अतिरिक्त उर्दू, मराठी और गुजराती के भी कुछ उपन्यासों के अनुवाद हिंदी में हुए पर बँगला की अपेक्षा बहुत कम।"[7] श्रीमती मल्लिका देवी ने 'चन्द्रप्रभा पूर्ण प्रकाश' का मराठी से अनुवाद किया।

- **सामाजिक उपन्यास**

प्रेमचंद पूर्व युग से आधुनिक युग तक कई उपन्यास ऐसे लिखे गए हैं जिनका केंद्र विषय नारी ही रही है, चाहे वो नारी से जुड़ी समस्या हो या नारी से सम्बद्ध रचा गया हो। उपन्यास एक बहुत बड़ा प्लेटफार्म/अवसर है जिसके जरिए उपन्यासकार समाज में घटित स्त्री सम्बन्धी समस्याओं जैसे – विधवा समस्या, अनमेल विवाह समस्या, दहेज़ समस्या, सती प्रथा समस्या, वेश्या समस्या आदि के

[7] शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. (2002). ***हिंदी साहित्य का इतिहास.*** इलाहाबाद : लोकभरती प्रकाशन, पृष्ठ सं. 342.

बारे में अतिसंवेदनशील भाव रखते हुए उसका यथार्थ चित्रण कर समाज तक पहुँचाता है। प्रेमचंद पूर्व हिन्दी उपन्यासों में स्त्री सम्बन्धी समस्याओं को मुख्य विषय बनाकर तत्कालीन समाज को आईना दिखाया गया है। उस काल में तत्कालीन समाज की आवश्यकता के अनुरूप स्त्री के हित की कामना की गई है, जिनमें उन्हें पढ़ाई-लिखाई, बुनाई जैसे कार्यों में प्रशिक्षण दिया जाता था। इन उपन्यासों में विधवा विवाह को सुधार के रूप देखा गया है। लेखकों का स्त्री के बारे इतना सोचना ही स्त्री-चेतना का प्रस्थान बिंदु माना जा सकता है। सामाजिक समस्याओं के चित्रण में, जो मुख्यतः नवजागरण से जुड़ी हुई थीं, इसमें समकालीन जीवन के यथार्थ जीवन की ओर झुकाव है। धीरे-धीरे तिलिस्म और ऐयारी की दुनिया को त्याग कर वास्तविकता की दुनिया में दाखिल होने लगे। कई उपन्यासों में स्त्री शिक्षा के प्रसार, बालविवाह और वृद्धविवाह की आलोचना, विधवाओं के प्रति सहानुभूति, अंतर्जातीय विवाह का समर्थन होने लगा था।

इस काल के उपन्यासकार और उनके उपन्यास इस प्रकार हैं – पं. गौरीदत्त कृत 'देवरानी-जेठानी की कहानी', ईश्वरी प्रसाद कृत 'वामा शिक्षक', श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती', बालकृष्ण भट्ट कृत 'रहस्यकथा', राधाकृष्ण दास कृत निस्सहाय हिन्दू, ठाकुर जगन्मोहन सिंह कृत 'श्यामा स्वप्न', किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'कुसुमकुमारी', पं. लज्जाराम मेहत्ता कृत 'स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी' आदि।

- **तिलस्म-जासूसी एवं मनोरंजक उपन्यास**

इस उपन्यास के अंतर्गत हम साहित्यकार/लेखक की कलम की शक्ति को महसूस कर सकते हैं। वे हैं - देवकीनंदन खत्री कृत उपन्यास 'चंद्रकांता' (1887) और 'चंद्रकांता संतति' जिसे पढ़कर कई युवा हिन्दी के लेखक हो गए तो कितनों ने इसे पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी। इस उपन्यास को भले ही साहित्य के कोटि में न रखा गया हो लेकिन इस कृति ने हिन्दी के सबसे अधिक पाठक बनाए। हिन्दी में पहले-पहल अद्भूत रस के उपन्यासकार हुए। धीरे-धीरे उसमें चरित्र चित्रण, मनोभाव और जासूसी

आदि उपन्यास प्रकाशित होने लगे। 'चंद्रकांता' (1887) और 'चंद्रकांता संतति' की लोकप्रियता प्रतिदिन बढ़ती गयी, जिससे उत्साहित होकर देवकीनंदन खत्री ने अन्य एक उपन्यास 'भूतनाथ' (1907) की रचना की। वह भी पूर्व उपन्यास की भाँति प्रसिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त 'कटोरा भर खून', (1895), 'नौलखा हार' (1899), 'काजर की कोठरी' (1902) आदि अपराधप्रधान कथापुस्तकों की भी रचना की गई। उनके उपन्यासों की लोकप्रियता से प्रेरित होकर कई लेखकों ने उनका अनुकरण किया जिनमें हरिकृष्ण जौहर, किशोरीलाल गोस्वामी, मदनमोहन पाठक, रामलाल वर्मा, बालमुकुन्द वर्मा आदि का नाम लिया जाता है। इनमें से अधिकांश उपन्यास में देवकीनंदन खत्री के भद्दे अनुकरण मात्र पाए जाते हैं। गोपालराम गहमरी जासूसी उपन्यास के प्रवर्तक माने जाते हैं। इन्होंने लगभग दो सौ जासूसी उपन्यास लिखे, जिनमें से 'अद्भुत लाश' (1896), 'गुप्तचर' (1899), 'बेकसूर की फाँसी' (1901) आदि प्रसिद्ध है।

देवकीनंदन खत्री ने कथा, विचार, शिल्प, भाषा, पुस्तक के आकार-प्रकार और मूल्य सभी दृष्टियों से अपने समय के संभावित पाठकों की पठन क्षमता और रूचि का ध्यान रखा, जिसके फलस्वरूप पाठकों में ने उन्हें सहज भाव से स्वीकार किया। इनके पुत्र बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री ने अपनी पिता की उपन्यास परम्परा को जीवित रखा। उन्होंने भूतनाथ को पूरा किया तथा मौलिक तिलस्मी उपन्यास 'रोहतासमठ' की रचना की। इनकी ऐयारी-तिलिस्म प्रधान कथा-पुस्तकों को रामचन्द्र शुक्ल उपन्यास की कोटि में नहीं रखते। उनके अनुसार "इन उपन्यासों का लक्ष्य घटना वैचित्रय रहा ; रससंचार भावविभूति या चरित्र निर्माण नहीं। ये वास्तव में घटनाप्रधान कथानक या किस्से हैं जिनमें जीवन के विभिन्न पक्षों के चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं, इससे ये साहित्य की कोटि में नहीं आते।"[8]

[8] राय, गोपाल (2002). ***हिंदी उपन्यास का इतिहास.*** नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं. 74.

- **ऐतिहासिक उपन्यास**

प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों में ऐतिहासिक उपन्यास तो लिखे गए हैं, लेकिन ये सच्चें अर्थों में ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है क्योंकि इनमें इतिहास से कई अधिक प्रणय कथाओं एवं विलासिता का वर्णन हुआ है। ये उपन्यासकार पाठकों का ध्यान इतिहास की घटना की ओर न ले जाकर मनोरंजन की तरफ ले जाते हैं। फिर भी इस क्षेत्र में कई उपन्यासकारों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अच्छे ऐतिहासिक उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी का नाम आता है। इनके 'तारा व क्षात्रकुल कमलिनी' (1902 ई०), 'कनक कुसुम वा मस्तानी' (1903 ई०), 'सुल्ताना रज़िया बेगम व रंगमहल' (1904 ई०), 'हृदयहारिणी व आदर्श रमणी' (1904 ई०), 'मल्लिका देवी' (1905 ई०), 'गुलबहार' (1916 ई०), 'लखनऊ की कब्र' (1916 ई०) आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है।

किशोरीलाल गोस्वामी इतिहास के प्रति सजग एवं गंभीर थे, बावजूद वे कल्पना को भी उतना ही महत्व देते थे जितना इतिहास को। इस बारे में उनका कहना था कि "जिस प्रकार इतिहास की मूल भित्ति सत्य है, उसी प्रकार उपन्यास की मूल भित्ति कल्पना है, पर जहाँ इतिहास की घटना जटिल, सत्याभास मात्र और कपोलकल्पित भासती है, वहाँ लाचार हो, इतिहास को बाँधकर कल्पना ही अपना पूरा अधिकार फैला लेती है।"[9] गंगाप्रसाद कृत प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास निम्नलिखित हैं – 'नूरजहाँ' (1902 ई०), 'वीर पत्नी' (1902 ई०), 'कुमार सिंह सेनापति' (1903 ई०) 'हम्मीर' (1903 ई०)। मथुराप्रसाद शर्मा कृत प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'नूरजहाँबेगम' (1905 ई०) है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें इतिहास अधिक और कल्पना कम है। बलदेव प्रसाद मिश्र ने तीन ऐतिहासिक उपन्यासों - 'अनारकली' (1900 ई०), 'पृथ्वीराज चौहान' (1902 ई०), 'पानीपत' (1902 ई०) की रचना की।

---

[9] राय, गोपाल (2002). ***हिंदी उपन्यास का इतिहास.*** नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं. 87.

➢ प्रेमचंदयुगीनहिन्दी उपन्यास

प्रेमचंद युग को सही मायनों में हिन्दी उपन्यास का उत्थान कालव जागरण काल कहा जाना चाहिए। इसका एक स्पष्ट कारण और विशिष्टता यह है कि उन्होंने सच्चाई को निर्भीकता के साथ जनता के समक्ष रखा है। यूँ तो इस काल में कई उपन्यास लिखे गए लेकिन प्रेमचंदके उपन्यास अविस्मरणीय है। वेश्या समस्या जैसी ज्वलन्त समस्या को प्रेमचंद 'सेवासदन' उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। केवल वेश्या समस्या ही नहीं, बल्कि अनमेल विवाह, दहेज़-प्रथा, जैसी समस्याओं को उन्होंने यथार्थत्मकता के साथ चित्रण किया है। प्रेमचंद एक ऐसा नाम है जिसे लिये बिना कथा-साहित्य अधूरा-सा लगता है। उनके अन्य उपन्यास 'प्रेमाश्रम', 'निर्मला', 'गबन', 'कायाकल्प', रंगभूमि, 'कर्मभूमि', 'गोदान' आदि है। नारी चेतना का अलग रूप सबसे पहले हमें प्रेमचंद के उपन्यास में ही दिखाई देता है। 'गोदान' में गोबर और झुनिया तथा सिलिया और मातादीन के विवाह के रूप में प्रेमचंद ने विधवा विवाह के साथ-साथ अंतर्जातीय विवाह का भी चित्रण कर साहस का परिचय दिया है। उन्होंने समाज में अंतर्जातीय विवाह व विधवा विवाह की पहल कर युगनिर्माता के रूप में स्वयं को स्थापित किया है।

इसी काल में उषादेवी मित्रा कृत 'वचन का मोल' (1936 ई०) और 'नष्टनीड़' उपन्यास है। इनके उपन्यासों में स्त्री की समस्याओं और उलझनों का विश्वसनीय, मनोवैज्ञानिक अंकन हो पाया है। आधुनिकता का ढोंग करने वाले पुरुषों का नारी के प्रति तर्कहीन दृष्टिकोण तथा स्त्री को भोग की वस्तु समझने की प्रवृत्ति की आलोचना प्रस्तुत उपन्यासों में की गई है एवं बलात्कार की शिकार स्त्री की सामाजिक तथा मानसिक स्थिति का अंकन किया गया है। साथ ही सतीत्व की रुढ़िवादी अवधारणा को ख़ारिज किया है। संक्षेप में कहा जा सकता है की इनके उपन्यासों ने स्त्री सम्बन्धी संहिता, जो पुरुष वर्ग द्वारा निर्मित है उसे चुनौती दी है। इसी काल में कंचनलता सब्बरवाल ने तीन उपन्यासों की रचना की जो इस प्रकार है – 'मूक प्रश्न' (1944 ई०), 'भोली भूल' (1946 ई०) और 'संकल्प' (1946 ई०) आदि।

➢ प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास

प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास का कथा फलक काफी विस्तृत रहा है। इन उपन्यासों में अधिकतर महानगरीय जीवन में जी रही स्त्रियों की जटिल मानसिक द्वंद्व और दाम्पत्य जीवन समस्या से उपजने वाली अन्य समस्याओं का चित्रण किया गया है तथा जीवन के कई पहलुओं को संवेदना के साथ प्रस्तुत किया गया है। स्त्री की परिवर्तनशील परिवेश, समस्याओं, जीवन मूल्यों के अनुरूप स्त्री का पारम्परिक सीमित दायरा भी बदला है, जिसे उपन्यासकारों ने स्त्री-विमर्श का स्वर दिया। यशपाल कृत 'दिव्या', 'मनुष्य के रूप' (1949) को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। उपन्यास में दिखाया गया है– 'स्त्री मात्र एक देह है' जो कि पितृसत्तात्मक समाज का मानना है इसी आधार पर नारी की विवशता को दिखाया गया है और उसके भटकन के साथ-साथ मुखौटे लगाये भोगवादी व्यक्तियों का चित्रण किया गया है।

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'सूरजमुखी अँधेरे में' (1972 ई०) और 'दिलो-दानिश' (1993 ई०) में स्त्री सम्बन्धी समस्याओं को उठाया गया है। सन् 1944 ई० में जन्मी मेहरुन्निसा परवेज के 'आँखों की दहलीज' (1969 ई०), 'उसका घर' (1972 ई०), 'कोरजा' (1977 ई०) और 'अकेला पलाश' (1981 ई०)। अभिमन्यु अनत के उपन्यास है - 'अपनी ही तलाश' (1979 ई०) और 'शेफाली' (1979 ई०)। शिवानी द्वारा रचित उपन्यास हैं – 'चौदह फेरे', 'कृष्णकली' (1969 ई०), 'छिमा' (1971 ई०) आदि।

'आपका बंटी' मन्नू भंडारी की प्रसिद्ध उपन्यास है जिसमें स्त्री-परुष संबंध व दाम्पत्य जीवन का चित्रण किया गया है। ममता कालिया कृत उपन्यास निम्नलिखित हैं – 'बेघर' (1971 ई०), 'प्रेम कहानी' (1980 ई०), 'एक पत्नी के नोट्स' (1997 ई०), 'नर-दर-नरक' (1975 ई०) आदि। 'एक पत्नी के नोट्स' में स्त्री-पुरुष संबंध के विविध रूपोंका चित्रण करने का प्रयास किया गया है। मृदुला गर्ग की लगभग सभी उपन्यासों के केंद्र में आधुनिक नारी की समस्या और अस्तित्व का संघर्ष रहा है। इनके द्वारा लिखे गए उपन्यास हैं – 'उसके हिस्से की धूप' (1975 ई०), 'वंशज' (1976 ई०),

'चितकोबरा' (1979 ई०), 'अनित्य' (1980 ई०), 'मैं और मैं' (1984 ई०), 'कठगुलाब' (1996 ई०) आदि। मंजुल भगत द्वारा रचित उपन्यास इस प्रकार है – 'टुटा हुआ इन्द्रधनुष' (1976 ई०), 'लेडीज क्लब', 'अनारों' (1977 ई०), 'बेगाने घर के' (1978 ई०), 'खातुल' (1983 ई०), 'तिरछी बौछार' (1984 ई०), 'गंजी' (1995 ई०) आदि।

1.1 प्रेमचंद पूर्व युग: भारतेन्दु व द्विवेदी युग में स्त्री व स्त्री संबंधी लेखन:-

अंग्रेजी में 'नावेल' की तर्ज पर भारत में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग सबसे पहले भूदेव मुखोपाध्याय ने और हिन्दी में रामचन्द्र शुक्ल ने किया था। सन् 1870 ईसवीं में लिखा गया 'देवरानी-जेठानी की कहानी' जिसके रचियता पं. गौरीदत्त हैं जिसे गोपाल राय ने हिन्दी का पहला उपन्यास स्वीकार किया है। 'देवरानी-जेठानी की कहानी' निश्चित रूप से पुनर्जागरण की चेतना से जुड़ी है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के नेतृत्व में बंगाल में सतीप्रथा की कानूनन समाप्ति हुई जिसका मुख्य कारण था– पुनर्जागरण का आन्दोलन। सातवें दशक में हिन्दी साहित्य नारी विषयक दृष्टिकोण और उसके प्रति व्यवहार में बदलाव चाहता था। 'देवरानी-जेठानी की कहानी' स्त्री शिक्षा के लिए पाठ्य पुस्तक के रूप में लिखित एक कथा पुस्तिका मात्र थी। उस समय तक उपन्यास शब्द प्रचलन में नहीं था, चूँकि यह हिन्दी की मौलिक कथा पुस्तक थी, जिसमें समकालीन नारी की सामाजिक-पारिवारिक स्थिति को लेखक ने आत्मसात् कर लिया था। अत: यह कथापुस्तिका अनायास ही उपन्यास के बहुत निकट है। इसके बाद 'वामा शिक्षक' (1872 ई०) प्रकाशन में आया, जो ईश्वरी प्रसाद और कल्याण राय द्वारा लिख गया था। 'वामा शिक्षक' उपन्यास के केंद्र में कायस्थ परिवार के लोग हैं। उस समय भले ही कायस्थ समाज पढ़े-लिखे थे, अंग्रेजों के शासनकाल में नौकरियाँ आसानी से पा ले रहे थे, किन्तु यह समाज स्त्रियों की शिक्षा के प्रति उदासीन ही था। परंपरागत सामाजिक मूल्यों तथा मान्यताओं से कायस्थ समाज मुक्त नहीं था, वे भी अन्धविश्वासी थे। बाल-विवाह का प्रचलन था जिसके कारण उनके अनेक लड़कियाँ असमय ही विधवा हो जाती थीं और उनका पुनर्विवाह नहीं हो पाता था।

उपन्यासकार ने समकालीन स्त्रियों की स्थिति पर अपनी संवेदनात्मक दृष्टिकोण रखने का प्रयास किया है। वामा शिक्षक में अंग्रेजी शिक्षा के साथ-साथ स्त्रियों की शिक्षा पर अधिक जोर दिया गया है क्योंकि समकालीन प्रबुद्ध समाज समझने लगा था कि समाज का विकास तभी हो पायेगा जब स्त्रियाँ शिक्षित होंगी। जॉन स्टुअर्ट मिल एवं लेनिन ने भी इसी बात पर विशेष जोर दिया था कि नारियों के उत्थान में ही समाज का तथा देश का उत्थान हो सकता है। वे स्त्री शिक्षा को समाज के प्रगति के लिए अनिवार्य मानते हैं।

1.1.1 प्रेमचंद पूर्व युगका समाज -

प्रेमचंद पूर्व युग की जब बात करें तो भारतेंदु युग और द्विवेदी युग का समाज स्वत: हमारे सामने आता है जिसका नवजागरण काल से गहरा सम्बन्ध है और नवजागरण काल 1857 ई० के स्वाधीनता संग्राम से शुरू होता है। भारतवर्ष में तब अंग्रेजों की हुकूमत थी, सारे देश की एकता को ध्यान में रखकर स्वाधीनता संग्राम शुरू की गई। राजा राम मोहन राय, बंकिम चंद्र और ईश्वर चंद्र विद्यासागर जैसे समाज सुधारक उभरे और उन्होंने भारतीयों के हक्क की लड़ाई लड़ी। उनका प्रमुख लक्ष्य एकजुट होकर विदेशी शासन के खिलाफ लड़ना था। 1857 ई० के विद्रोह के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी का अंत हुआ और कई नई नीतियों के साथ ब्रिटिश सरकार का उदय हुआ। इस समय देश का विशाल जनसमुदाय ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के शोषणचक्र में पिस रहा था, समाज में सतीप्रथा, अनमेल विवाह, बाल विवाह जैसे कार्य होने लगे थे, विधवा पुनर्विवाह मान्य नहीं थी। पुरुष प्रधान समाज द्वारा स्त्रियों को मर्यादा में रहने का परामर्श दिया जाता था। इसी को ध्यान में रखकर आदर्शवादी उपन्यास भी रचे गए जैसे - “लड़कियों के पाठ्यक्रमों में पढ़ना-लिखना, गिनती-पहाड़ा सिखना, सब्जी बनाना, गुड़िया बनाना, सीना-पिरोना, जाली काटना, बेल-बूटे काढ़ना आदि शामिल है। इससे उस समय के लड़कियों के लिए जीवनादर्श, कुशल गृहणी बनने-बनाने की आकांक्षा का पता चलता है।”[10] समाज

[10] राय, गोपाल.(2002).***हिन्दी उपन्यास का इतिहास***. राजकमल प्रकाशन : नई दिल्ली. पृष्ठ सं. 30.

में एक प्रकार से हिन्दू धर्म के सिद्धांतों का प्रतिपादन हो रहा था। हिन्दी-प्रदेश में सामाजिक चेतना को जनसाधारण तक पहुँचाने का श्रेय 'आर्यसमाज' (1878 ई०) आन्दोलन को जाता है। इस आन्दोलन का हिन्दी-साहित्य पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा है।

1.1.2 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री-चेतना -

गौरीदत्त कृत 'देवरानी-जेठानी की कहानी' एवं ईश्वरी प्रसाद और कल्याण राय द्वारा 'वामा शिक्षक' के पश्चात् श्रद्धाराम फिल्लौरी द्वारा 'भाग्यवती' (1887 ई०) प्रकाशित होता है। भाग्यवती का केंद्र बिंदु स्त्री शिक्षा ही रहा है। ऐसा नहीं है कि अन्य समस्याओं की ओर उपन्यासकार का ध्यान नहीं गया बल्कि समाज के तत्कालीन हिन्दू समाज की बुराइयों/कुरीतियों एवं जीवन दशा का भी वर्णन इस उपन्यास में किया गया है। इस उपन्यास की एक विशेष बात यह है कि इसमें स्पष्ट रूप से पहली बार विधवा विवाह का समर्थन किया गया है जिसे उस काल के रूढ़िवादी समाज स्वीकारने को तैयार नहीं थे। समाज इतनी अधिक रूढ़िवादिता से ग्रसित थी कि सरकार भी नहीं चाहते थे कि विधवा विवाह की शिक्षा पाठशालाओं में दी जाए। इससे अनुमान लगाया जा सकता है की स्त्रियों की स्थिति उस काल के समाज में कैसी थी। बड़े साहस के साथ उपन्यासकारों ने अपने कलम द्वारा स्त्रियों की स्थिति में सुधार की मांग की। बाल-विवाह जैसे घोर अपराध का भी विरोध प्रस्तुत उपन्यास करता है। डॉ० रामचन्द्र तिवारी का कहना है कि "पं० श्रद्धाराम फुल्लौरी ने तत्कालीन नारी-समाज में व्याप्त मध्ययुगीन अंधविश्वासपूर्ण कुरीतियों को मिटाकर उन्हें नवीन युग के अनुकूल आचरण करने में समर्थ बनाने के लिए ही भाग्यवती की रचना की थी।"[11]

उक्त तीनों उपन्यासों - 'देवरानी-जेठानी की कहानी', 'वामा शिक्षक', 'भाग्यवती' में उपन्यासकारों ने स्त्री की स्थिति को समाज में बेहतर बनाने का सन्देश दिया है तथा समकालीन समाज में चल रहे बुराइयों एवं कुरीतियों का जोर-शोर से विरोध किया है। नारियों के प्रति इस प्रकार की

[11] तिवारी, डॉ. रामचंद्र.(2015). ***हिन्दी का गद्य-साहित्य.*** वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृष्ठ सं. 189.

जागरूकता/चेतना को लेकर उन्नीसवीं शदी की ये उपन्यासें हिन्दी क्षेत्र में अपना परिचय देते हुए आगे बढ़ते हैं।

'रहस्यकथा' (1882 ई०) बालकृष्ण भट्ट के द्वारा रचा गया उपन्यास है। "इस उपन्यास का धारावाहिक प्रकाशन आरम्भ कर बालकृष्ण भट्ट ने उपन्यास पद के प्रयोग को ही नहीं, बल्कि उपन्यास लेखन की परंपरा को भी आगे बढ़ाया।"[12] इस उपन्यास में भी पाखंड, रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास का विरोध किया गया है।

1881 ई० में राधाकृष्ण ने 'निस्सहाय हिन्दू' नामक रचना की, लेकिन यह उपन्यास किन्हीं कारणों से नौ वर्ष के पश्चात् प्रकाशित हुआ जिसके फलस्वरूप इस उपन्यास को हिन्दी का पहला उपन्यास कहने का गौरव प्राप्त न हो सका। अत: रामचन्द्र शुक्ल ने 1882 ई० में प्रकाशित लाला श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षा गुरु' को ही हिन्दी का प्रथम उपन्यास होने का श्रेय दिया और आज भी सामान्यत: यही मत प्रचलित है। 'निस्सहाय हिन्दू' उपन्यास का केन्द्रीय विषय गाय हत्या से संबंधित प्रकरण है। हिन्दू और मुसलमान अपने-अपने धर्मों के प्रति अति संवेदनशील थे जिसका लाभ उठाते हुए अंग्रेजों ने गौ-हत्या जैसे मामले को जोड़कर उनके बीच फूट डालने की कोशिश की। अंतत: हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के पीछे ऐसे पड़ गए कि दंगे होने लगे, किन्तु दोनों पक्षों में कई ऐसे लोग भी थे जो नहीं चाहते थे कि आपस में विवाद हो इसलिए वे विरोध करने लगे जिसके कारण उन्हें अपना जान गवाना पड़ा। लेखक का उद्देश्य हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रासंगिकता को पाठकों के समक्ष रखना है। अत: यह उपन्यास समकालीन राष्ट्रीय भावना और नवजागरण चेतना से ओत-प्रोत थी। जितने भी उपन्यासकार हुए सभी नवजागरण चेतना से ओत-प्रोत थे और उसका प्रभाव उन्होंने अपने उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्त किया तथा समाज में चल रही कुरीतियों, रूढ़ियों एवं अत्याचारों का विरोध लेखकों ने साहस के साथ किया।

[12] राय, गोपाल.(2002). ***हिन्दी उपन्यास का इतिहास***. राजकमल प्रकाशन : नई दिल्ली. पृष्ठ सं. 39

हिन्दी उपन्यासों में सती-प्रथा के विरोध को लेकर लिखा गया उपन्यास यदि है तो वह है किशोरीलाल गोस्वामी का 'स्वर्गीयकुसुम' व 'कुसुमकुमारी' जो सन् 1901 ई० में लिखा गया था। प्रेमचंद पूर्व युग के महत्वपूर्ण उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी एक थे। इस उपन्यास की नायिका कुसुमकुमारी बिहार के एक बड़े जमींदार की बेटी है जो देवदासी प्रथा के अंतर्गत देव मंदिर को अर्पित कर दी जाती है। जहाँ से उसे एक वेश्या खरीद लेती है और उसे संगीत, नृत्य आदि की शिक्षा देकर वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य करती है। वेश्या जीवन के गहरे दर्द को सामने लाने वाला यह संभवत: हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है। वेश्या जीवन के बारे में कुसुमकुमारी कहती है– "संसार में यदि सचमुच किसी का जीवन मरने से करोड़ दर्जे बुरा होता है, तो वह वेश्याओं का है।"[13]

किशोरीलाल गोस्वामी की एक और उपन्यास 'माधवीमाधव' या 'मदनमोहिनी' उपन्यास में धर्म से अर्थ, काम और मोक्ष तीनों की प्राप्ति की बात बताई गई है। मुख्य कथा नायक माधव और नायिका माधवी तथा उपनायक मदन और उपनायिका मोहिनी जैसे आदर्श जोड़ी का विवाह धर्मानुसार किया जाता है। इतना ही नहीं इन आदर्श पात्रों के विवाह में बाधा डालने वाले अधर्मी पात्रों का दुखद अंत का चित्रण उपन्यास में दिखाया गया है। इनके अन्य उपन्यास 'अंगूठा का नगीना' (1918 ई०), 'प्रणयिनी परिणय' (1880 ई०), 'चन्द्रावती' (1905 ई०), 'लावण्यमयी' (1891 ई०) आदि सामाजिक उपन्यास हैं। इनके प्राय: सभी उपन्यास स्त्री-प्रधान है और उनमें प्रेम के विविध रूपों का वर्णन है। स्त्रियों के सभी पक्षों, रूपों का चित्रण उपन्यासों में किया गया है। एक तरफ से वे आदर्श नारी को रचते हैं। भारतीय पतिव्रता नारी का सजीव चित्रण वे करते हैं तो दूसरी ओर वे वेश्याओं के कुत्सित जीवन, अवैध प्रेम तथा देवदासियों की विलास लीला का चित्रण करते हैं। इस दृष्टि से गोस्वामी जी प्रेमचंद्र पूर्व उपन्यासकारों में अपना विशेष स्थान रखते हैं।

पं. लज्जाराम मेहत्ता का 'स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी' 1889 ई० में लिखा गया उपन्यास है जिसमें रमा और लक्ष्मी नामक दो बहने हैं। दोनों बहने अलग-अलग ढंग से जीवन व्यतीत करती हैं

[13] तिवारी, डॉ. रामचंद्र.(2015). ***हिन्दी का गद्य-साहित्य.*** वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृष्ठ सं. 178.

रमा अंग्रेजी शिक्षा से प्रभावित होने के कारण स्वतंत्र जीवन व्यतीत करती है और लक्ष्मी भारतीय संस्कृति के अनुकूल पतिव्रता नारी का जीवन व्यतीत करती हैं। उपन्यासकार ने तुलनात्मक आधार पर भारतीय नारी के पातिव्रत्य की महत्ता को सही सिद्ध करने का प्रयास किया है। उपन्यासकार ने आधुनिक शिक्षा, स्त्री शिक्षा, स्त्री स्वातंत्र्य एवं विधवा विवाह का विरोध किया है। इनके अन्य उपन्यास 'आदर्श हिन्दू' (1914) में अंतर्जातीय विवाह और विधवा विवाह का विरोध किया गया है, विधवा विवाह को व्यभिचार के समान मानता है तथा बाल विवाह का समर्थन तक किया गया है।

ज्ञानचंद जैन ने दो उपन्यासों भुवनेश्वर कृत 'घराऊ घटना' (1894 ई०) और किशोर कृत 'गुलेनार' (1907 ई०) का ध्यान पाठकों की ओर खींचा है जिसमें कस्बों और ग्रामीण अंचलों के मध्यवर्गीय जीवन के साथ-साथ तत्कालीन रईसों की जीवन गाथाओं का चित्रण हुआ है। गोपालराम गहमरी के दो उपन्यास 'देवरानी जेठानी' और 'तीन पतोहू' (1905) में निम्न वर्ग की स्त्रियों के जीवन-व्यवहार का यथार्थ चित्रण किया गया है। अशिक्षा के कारण ग्रामीण महिलाओं को नारकीय जीवन जीने के लिए किस प्रकार बाध्य होना पड़ता है इसका वर्णन इस उपन्यास में देखने को मिलता है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत दो सामाजिक उपन्यास– 'ठेठ हिन्दी का ठाट' (1899 ई०), एवं 'अधखिला फूल' (1907 ई०) है। 'ठेठ हिन्दी का ठाट' में अनमेल विवाह एवं जाति प्रथा आधारित विवाह के दोषों के क्या-क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं उसकी विस्तृत चर्चा की गई है। इस उपन्यास की नायिका 'देवबाला' अपने ही जाति के युवक से प्रेम करती है लेकिन हर प्रकार से योग्य होने के बावजूद जाति उपभेद में कुछ हीन होने के कारण विवाह हेतु दोष निकल आता है। फलस्वरूप देवबाला का विवाह जातिशुद्धता के नाम पर एक अयोग्य व्यक्ति से कर दिया जाता है, जिसका दुष्परिणाम उसे जीवन भर निर्वहन करना पड़ता है। ब्रजनंदन सहाय के उपन्यास निम्नलिखित है – 'सौन्दर्योपासक' (1912 ई०), 'राधाकान्त' (1918 ई०), 'अद्भुत प्रायश्चित' (1906 ई०), 'राजेन्द्र मालती' (1906 ई०), 'अरण्य बाला' (1915 ई०)। 'सौन्दर्योपासक' में नायक और उसकी साली एक दूसरे से प्रेम करते हैं जिसका पता 'सौन्दर्योपासक' के नायक की पत्नी को हो जाता है। इस सत्य

को स्वीकार न कर सकने पर उसकी पत्नी बहुत दुखी हो जाती है, अंततः स्वर्गवास हो जाती है और साली भी रोग के कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। अंत में नायक अकेले जीवन जीने को बाध्य होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक ढंग से लिखा गया है। मन्नन द्विवेदी गजपुरी के दो उपन्यास - 'रामलाल' (1917 ई०) और 'कल्याणी' (1920 ई०) सामाजिक उपन्यास के अंतर्गत आते हैं। हिन्दी साहित्य में आगे ऐतिहासिक एवं तिलस्मी उपन्यासों का समय आया जिसके प्रवर्त्तक देवकीनंदन खत्री को माना जाता है। 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता संतति', 'भूतनाथ', आदि उपन्यास इसी श्रेणी में आते हैं। देवकीनंदन से प्रभावित होकर अन्य उपन्यासकारों ने भी तिलस्मी उपन्यासों की रचना की, लेकिन इन उपन्यासों में से अधिकांश देवकीनंदन खत्री के रोमांसों केभद्दे अनुकरण मात्र पाए जाते हैं।

1.1.3 स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यास -

प्रेमचंदपूर्व युग की महत्वपूर्ण विशेषता उपन्यास लेखन के क्षेत्र में लेखिकाओं कीभागीदारी रही है। हिन्दी की महिला द्वारा लिखा गया पहला मौलिक उपन्यास 'सुहासिनी' (1890 ई०) माना जाता है। लेखिका का नाम साधवी सती प्राण अबला है जो कि गुप्तनाम माना जाता है। ब्रजरत्नदास के अनुसार वह लेखिका मल्लिका देवी ही है। इस उपन्यास के तीन वर्षों के उपरांत श्रीमती हरदेवी द्वारा लिखा गया उपन्यास 'हुकुम देवी' (1893 ई०) प्रकाशित होता है। इस युग की अन्य महिला उपन्यासकारों में प्रियंवदा देवी 'लक्ष्मी' (1908 ई०), कुन्ती देवी 'पार्वती' (1909 ई०), यशोदा देवी का 'सच्चा पति प्रेम' (1911 ई०), हेमंत कुमारी चौधरी की 'आदर्शमाता' (1912 ई०), ब्रह्मकुमारी भगवान देवी दूबे की 'सौन्दर्य कुमारी' (1914 ई०) और श्रीमती कुमुदबाला देवी की 'सदाचारिणी' (1917 ई०) है।

प्रेमचंद पूर्व युग में उपन्यास साहित्य सामाजिक मूल्यों के आधार पर लिखा गया। श्रद्धाराम फुल्लौरी ने 'भाग्यवती' उपन्यास के माध्यम से तत्कालीन नारी समाज में व्याप्त अंधविश्वासपूर्ण कुरीतियों को मिटाने तथा नवीन युग के अनुकूल आचरण करनेमें समर्थ बनाने का प्रयास किया।

प्रेमचंदपूर्व युग के उपन्यासकारों ने स्त्री की स्थिति के सुधार हेतुकई प्रयास किए, लेकिन वे नारी सम्बन्धी परंपरागत दृष्टिकोण से समन्वित थे जिससे कोई क्रन्तिकारी बदलाव नहीं हो सका। किशोरीलाल गोस्वामी ने भी अपने उपन्यासों में समकालीन समाज में व्याप्त स्त्री के प्रति रुढ़िवादी विचारों, वेश्यावृत्ति जैसे भयानक और दर्दनाक स्थिति का जिवंत चित्रण किया है। प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों में स्त्री चेतना के अंतर्गत कुछ ही उपन्यासों का चयन किया जा सकता है जिसने सही मायनों में स्त्री-चेतना को जगाने का प्रयास कर नारी जाति का उत्थान किया है। सामाजिक उपन्यासों के सन्दर्भ में यह कह सकते हैं कि इनमें समकालीन जीवन की सुपरिचित यथार्थ की ओर झुकाव बढ़ता दिखाई देता है। तिलस्मी-ऐयारी की दुनिया को त्यागकर वास्तविकता के धरातल पर उपन्यासकार आते हैं। उनके उपन्यासों में अब स्त्री शिक्षा का प्रसार, बाल-विवाह की आलोचना, विधवाओं के प्रति सहानुभूति, अंतर्जातीय विवाह का समर्थन आदि समाहित होने लगा। हिन्दी उपन्यास के आरंभिक दौर में नारी शिक्षा तथा नारियों की सर्वांगीण उन्नति के प्रति जो उत्साह था वह मंद पड़ता गया। तत्कालीन समाज के साथ-साथ कई उपन्यासकार स्त्रियों की उच्च शिक्षा और स्वतंत्रता के विरोधी थे तथा विधवा विवाह का समर्थन भी नहीं करते थे। इसका एक कारण यह भी था कि हिन्दू समाज नारी के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण त्यागने की मानसिकता में नहीं आ पा रहा था जिससे अनेक उपन्यासकार हिन्दू समाज की नारी विषयक रुढ़िवादी विचारधारा के विरोध में खड़े होने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे।

भारतीय जीवन के यथार्थ का एक महत्वपूर्ण चित्र समाज और परिवार में नारी की स्थिति से सम्बन्धित है क्योंकि उन्हें आदर्श नारी के ढाँचे में फिट होने के लिए पारम्परिक रुढ़िवादी रूपी जीवन व्यतीत करना पड़ता था, जिसके कारण उनका दोहरा शोषण होता था। राजेन्द्र यादव कहते हैं कि दलित हमारे घरों और बस्तियों से बाहर होता है। स्त्री हमारे भीतर है इसलिए उसका संघर्ष ज्यादा जटिल है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य का प्रेमचंद पूर्व उपन्यास में प्रयोग के लक्षण तो पाए गए लेकिन इस प्रयोग में अनुकरण की प्रधानता अधिक रही। हिन्दी उपन्यास के

आरंभिक काल में सामाजिक उपन्यासों की उतनी लोकप्रियता नहीं हुई जितनी तिलस्मी-ऐयारी एवं जासूसी उपन्यासों का हुआ। बावजूद इसके इस काल के उपन्यासकारों ने नारी के प्रति हो रहे अत्याचार का विरोध करते हुए संवेदना-सह चित्रण किया।

1.2 प्रेमचंदयुगीन हिन्दी उपन्यास : स्त्री व स्त्री सम्बन्धी लेखन :-

प्रेमचंद के आगमन के पूर्व हिन्दी उपन्यास अपने नए स्वरुप की तलाश कर रहा था जिससे समाज में क्रान्ति ला सकें। इस युग में उपन्यासकारों द्वारा नारी के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त की गई है तथा उन्होंने माना कि नारी के विकास में बाधा होने से समाज में प्रगति नहीं हो सकती। संभवतः प्रेमचंद के आगमन से यह तलाश जैसी पूरी हो जाती है और हिन्दी उपन्यास प्रौढ़ता की अवस्था में प्रवेश करता है। 'सेवासदन' (1918) के प्रकाशन काल से हिन्दी-कथा साहित्य में एक नये युग का आरम्भ होता है। प्रेमचंद ने ही उपन्यास में मानव मन का स्वाभाविक एवं सजीव अंकन आरम्भ किया। उन्होंने पहली बार हिन्दी उपन्यास में घटना और चरित्र का संतुलन स्थापित कर मनोविज्ञान का उचित समावेश किया। समाज की समस्याओं को सर्वप्रथम कथा-साहित्य में स्थापित करके हिंदी में सामाजिक उपन्यासों का आधुनिक अर्थ में सूत्रपात किया। प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों की विशेषता यह है कि उनमें परंपरा से चली आ रही नारियों के नियम (जिसे आदर्श का नाम दिया जाता है) का विरोध खुले रूप से किया गया है। प्रेमचंद के उपन्यास 'सेवासदन' में नायिका सुमन के द्वारा उपन्यासकार ने मानों भारतीय पतिता नारी संहिता को चुनौती दी है। इस उपन्यास के एक प्रसंग द्वारा प्रेमचंद ढोंगी-लालची समाज का विरोध दर्ज करते हुए दिखाई देते हैं – किसी कारण सुमन घर देर से लौटती है। पति गजाधर उस पर चरित्रहीन का आरोप लगाता है और उसे घर से निकाले जाने की धमकी मिलती है। ऐसी स्थिति में सुमन पति के पैरों पर न पड़ती है और न ही गिडगिडाती है। वह जवाब देती है – "हाँ यो कहो कि तुझे रखना नहीं चाहता, मेरे सिर पर पाप क्यों लगाते हो? क्या तुम्हीं मेरे अन्नदाता हो?

जहाँ मजूरी करुँगी, वहीं पेट पाल लूँगी।"[14] स्वाभिमानी सुमन ऐसे आदमी की गुलामी कर गालियाँ खाने के लिए तैयार नहीं होती है अंततः वह घर छोड़ कर चली जाती है। उस समय एक आदर्शवादी पतिता नारी के लिए यह बहुत बड़ा कदम था क्योंकि उन्हें विवाह के पश्चात् अर्थी के रूप में ही ससुराल छोड़ने की इजाज़त थी।

प्रथम हिन्दी उपन्यास 'सेवासदन' में प्रेमचंद ने वेश्या जीवन से सम्बद्ध समस्याओं का जीवंत चित्रण करने का प्रयास किया है। वेश्या जीवन पर उपन्यास लिखने की प्रेरणा इन्हें शायद उर्दू के मिर्ज़ा हादी रुस्वा के 'उमराव जान अदा' (1899 ई०) नामक प्रसिद्ध उपन्यास से मिली होगी। हिन्दी में भी किशोरीलाल गोस्वामी, कुँवर हनुमंत सिंह रघुवंशी, गिरिजानंदन तिवारी, जयरामदास गुप्त, चंद्रशेखर पाठक आदि ने वेश्या जीवन को मार्मिकता के साथ अपने-अपने उपन्यासों का केंद्र विषय बनाया था। इन उपन्यासकारों से भी शायद प्रेमचंद को प्रेरणा मिली होगी। कुँवर हनुमंत सिंह रघुवंशीने विधवा विवाह के निषेध को वेश्यावृत्ति का कारण बताया था। सेवासदन में वेश्यावृत्ति समस्या, पति द्वारा पत्नी की उपेक्षा, अविश्वास और क्रूर व्यवहार का चित्रण हुआ है। प्रेमचंदपूर्व उपन्यास और प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों में अंतर यह है कि प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों में स्त्रियों को पातिव्रत्य दिखाया गया है जो स्त्रियाँ पातिव्रत्य का पालन नहीं करती हैं, उन्हें ईश्वरीय दंड मिलता है ऐसा उल्लेख हुआ है।

समकालीन समाज में नारी, विशेषकर मध्य और उच्च वर्ग की नारियाँ दोहरी दासता की शिकार थीं। उन्हें न तो पारिवारिक संपत्ति में कोई अधिकार था और न ही वे स्वतंत्र रूप से अपनी जीविका अर्जित करने में समर्थ थीं। प्रेमचंद पर गांधीजी के विचारधारा का प्रभाव अत्यधिक था इसलिए 1930 ई० का एक प्रसंग है जब गाँधी जी ने भारत के सभी नारियों को विदेशी वस्तुओं जैसे – कपड़े, शराब, आभूषण आदि का बहिष्कार करने हेतु सरकारी संस्थानों, दुकानों, आदि में धरने हेतु प्रेरित किया था जिससे हजारों नारियों ने स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लिया और जेल गईं। शिवरानी देवी जो खुद प्रेमचंद की पत्नी थी वे भी जेल गई थीं। इसका प्रभाव बेशक प्रेमचंद के उपन्यासों के

[14] शर्मा, रामविलास. (1952). ***प्रेमचंद और उनका युग.*** नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं. 36.

नारी पात्रों पर भी दिखाई देता है। गतिशील जीवन दृष्टि के निर्माण में आर्यसमाज की तार्किकता, गाँधी जी की विनयशीलता और तिलक की तेजस्विता का प्रभाव प्रेमचंद के उपन्यासों में देखने को मिलता है।

1.2.1 प्रेमचंदयुगीन समाज-

हिन्दी उपन्यासों की बात करें तो प्रेमचंद ने सर्वप्रथम उपन्यासों के जरिए भारतीय स्त्रियों को अबला एवं दासी जैसे उपमाओं से छुटकारा दिलवाया। उन्होंने ऐसे स्त्री पात्रों का सृजन किया जो अन्याय, शोषण तथा दमन के विरुद्ध आवाज बुलंद करसकती थीं। प्रेमचंद द्वारा दो दर्जन से अधिक उपन्यासों में से निर्मला, मंगलसूत्र, कर्मभूमि, प्रतिज्ञा, तो ऐसे उपन्यास हैं जो पूर्ण रूप से नारी चरित्रों पर केन्द्रित है। मैनेजर पांडे लिखते हैं कि बीसवीं सदी के भारतीय समाज के इतिहास की सबसे बड़ी घटना है अँग्रेजी राज की गुलामी से मुक्ति के लिए इस देश की जनता का संघर्ष। प्रेमचंद उस संघर्ष की वास्तविकताओं और संभावनाओं के अनन्य कथाकार होने के कारण बीसवीं सदी के प्रतिनिधि कथाकार भी हैं। उन्होंने समाज के विभिन्न समस्याओं को कलमबद्ध करते हुए बड़े ही सूक्ष्म दृष्टि के साथ नारी के उत्थान पर चर्चा की है।

प्रेमचंदयुगीन समाज में महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, राजा राममोहन राय आदि महापुरुषों और प्रेमचंदयुगीन साहित्यकारों ने राष्ट्रीय आंदोलन के साथ-साथ भारत में नारी-आंदोलन, सती-प्रथा एवं नारी की समस्या की ओर लोगों का ध्यानाकर्षण किया, साथ ही स्त्री को उसके अधिकारों के प्रति जागरूक किया। तत्कालीन समाज में नारी को देवी माना जाता था तथा पूज्यनीय भावनाओं से विभूषित किया जाता था, उस समय स्त्री की स्थिति दासी के तुल्य ही थी। प्रेमचंद मानते थे कि त्याग और वात्सल्य की मूर्ति नारी के जीवन का वास्तविक आधार प्रेम है और यही उसकी मूल प्रकृति भी। महादेवी वर्मा उसके इस स्थिति पर प्रश्न करती हैं कि मातृत्व की गरिमा से गुरु और पत्नीत्व के सौभाग्य से ऐश्वर्यशालिनी होकर भी भारतीय नारी अपने व्यवहारिक जीवन में सबसे

अधिक क्षुद्र और रंक कैसे रह सकी यही आश्चर्य है। समाज ने उसे पुरुष की सहायता पर इतना निर्भर कर दिया कि उसके सारे त्याग, सारा स्नेह और संपूर्ण आत्मसमर्पण बंदी के विवश कर्तव्य के समान जान पड़ने लगे।

1.2.2 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री-चेतना -

स्त्री-चेतना की नींव रखने का श्रेय प्रेमचंद को जाता है। उन्होंने उपन्यासों की परम्परा से हटकर नए ढंग की उपन्यास की रचना की। प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों में विधवा समस्या, अनमेल विवाह समस्या, दहेज़ समस्या, सती प्रथा समस्या, वेश्या समस्या की झलक मात्र थी, लेकिन प्रेमचंद के उपन्यासों में इन समस्याओं का विरोध अलग ढंग से किया गया है। उन्होंने अपने उपन्यास 'सेवासदन' के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार पत्नी अपने पति से विद्रोह कर वेश्यावृति अपनाती है। उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र सुमन को कोई वेश्या नहीं बनाता है बल्कि वह स्वयं वेश्यावृत्ति अपनाती है। पूरे समाज तथा अपने पति से प्रतिशोध लेने के लिए वह वेश्यावृत्ति अपनाती है। सुमन के चरित्र के माध्यम से प्रेमचंद ने नारी के संघर्ष की कहानी को अभिव्यक्त करने का साहस किया है। रामविलास शर्मा ने सेवासदन की समस्या के बारे में कहा है कि सेवासदन की मुख्य समस्या भारतीय नारी की पराधीनता है। प्रेमचंद ने किसी तरह तमाम पुरानी सांस्कृतिक परम्पराओं को तोड़ते हुए वर्तमान समाज में नारी की पराधीनता को अपने निठुर और वीभत्स रूप में चित्रित किया है।

हिन्दी उपन्यासों में जो यथार्थ की भावना थी, वह कहीं न कहीं प्रेमचंद के उपन्यास के उदाहरण के द्वारा हम जान सकते हैं। प्रेमचंद ऐसे पाखंडियों से नफरत करते थे जो ऊपर से तो दहेज़ की कुप्रथा की बुराई करते थे लेकिन उसे कायम रखने के लिए हमेशा बहाने ढूढ़ लिया करते थे। 'सेवासदन' में प्रेमचंद ने इस धन लोलुपता में लिप्त लोगों का यथार्थ चित्रण किया गया है। उपन्यास का स्त्री पात्र सुमन एक अच्छे स्वभाव की सुन्दर-सी लड़की है। वह अन्याय को सहन नहीं कर सकती थी। जब सुमन की रिश्ते के लिए लड़के वाले आते हैं, उनका मानना है कि वे दहेज़ प्रथा का विरोध

करते हैं, लेकिन अच्छाई का ढोंग उनसे नहीं हो पाता और अपनी मनसा व्यक्त कर ही लेते हैं – "दरोगा जी, मैंने लड़के को पाला है, सहस्रों रुपये उसकी पढ़ाई में खर्च किए है। आपकी लड़की को इससे उतना ही लाभ होगा जितना मेरे लड़के को। तो आप ही न्याय कीजिए कि यह सारा भार मैं अकेले कैसे उठा सकता हूँ।"[15]

'गबन' की जालपा एक समझदार लड़की है जिसकी सूझ-बूझ से पति का उद्धार हो पाता है। बचपन से उसे एक ऐसा ख़्वाब दिखाया जाता है जिसके झूठे शान में जिंदगी भर उसे झुलसना पड़ता है। भारतीय समाज की विडम्बना यहीं है कि स्त्री को शिक्षा, आत्मनिर्भर बनाने की जगह उसे सिखाया जाता है पति, ससुराल ही उसका लक्ष्य होना चाहिए जो उसके अधूरे ख़्वाब को पूर्ण करेगा। इसी सोच के दुष्परिणाम की ओर प्रेमचंद संकेत करते हैं। 'कर्मभूमि' में सुखदा हरिजनों के मंदिर प्रवेश आन्दोलन का नेतृत्व करती है और जेल जाती है। सुखदा के अलावा सकीना, बुधिया पठानिन, रेणुका देवी, मुन्नी आदि ब्रिटिश सरकार का विरोध करती हुई जेल जाती हैं। नैना तो जुलूस का नेतृत्व करती हुई शहीद हो जाती है। 'गोदान' की मालती देश सेवा तथा समाज सेवा के लिए विवाह न करने का व्रत लेती है। अत: कह सकते है कि हिन्दी के किसी अन्य उपन्यासकार ने भारतीय नारी का ऐसा जागृत रूप नहीं दिखाया है। नारी चेतना का ऐसा रूप सबसे पहले हमें प्रेमचंद के उपन्यास में ही दिखाई देता है। गोदान उपन्यास से मेहता के शब्दों में – "औरत वफ़ा और त्याग की मूर्ति है, जो अपनी बेज़बानी से, कुर्बानी से, अपने को बिलकुल मिटाकर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। देह पुरुष की रहती है, पर आत्मा स्त्री की होती है। स्त्री पृथ्वी की भाँती धेर्यवान, शान्तिसंपन्न, सहिष्णु है। मर्द अपने को क्यों नहीं मिटाता? औरत से ही से क्यों आशा करता है? मर्द में वह सामर्थ्य नहीं है। वह अपने को मिटायेगा तो शून्य हो जायेगा॥"[16] गोदान में गोबर और झुनिया तथा सिलिया और मातादीन के विवाह के रूप में प्रेमचंद ने विधवा विवाह के साथ-साथ अंतर्जातीय विवाह का भी चित्रण किया है।

[15] शर्मा, रामविलास. (1952). ***प्रेमचंद और उनका युग.*** नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं. 32.
[16] प्रेमचंद. (न.सं.2010). ***गोदान***. दिल्ली-6 : मनोज पब्लिकेशन्स. पृष्ठ सं. 114.

प्रेमचंद के बाद के उपन्यासकारों में रचनाक्रम की दृष्टि से जगदीश झा विमल, चंडी प्रसाद हृदयेश, बेचन शर्मा उग्र, देवनारायण द्विवेदी, शिवपूजन सहाय, ऋषभचरण जैन, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला आदि हैं।

जगदीश झा विमल की 'निर्धन कन्या' (1920 ई०) उपन्यास में आर्थिक रूप से असमान परिवारों में हुई शादी के दुष्परिणामों का चित्रण किया है। जी.पी. श्रीवास्तव के उपन्यासों – 'प्राणनाथ' (1925 ई०) और 'गंगाजमुनी' (1927 ई०) में नि:स्वार्थ प्रेम, दहेज़ प्रथा, बाल विवाह, स्त्री शिक्षा आदि का चित्रण हुआ है। मदारीलाल गुप्त के उपन्यास - 'गौरीशंकर' (1923 ई०), 'सखाराम' (1924 ई०) और 'मानिक मंदिर' (1932 ई०) आदि उपन्यासों में स्त्री की पातिव्रत्य, सच्चरिता, वृद्ध विवाह के दुष्परिणाम, निरक्षरता, वेश्यावृत्ति आदि का चित्रण किया गया है। चंडी प्रसाद हृदयेश ने दो उपन्यास लिखे – 'मनोरमा' (1924 ई०) और 'मंगल प्रभात' (1925 ई०)। विषय की दृष्टि से इन उपन्यासों में समकालीन नारी समस्यायें जैसे – दहेज़ प्रथा, बाल विवाह, हिन्दू समाज की रूढ़ मान्यताएं और रीतिरिवाज, सतीत्व और पातिव्रत्य की महिमा और उसके सामाजिक अंतर्विरोध, विधवाओं की दयनीय स्थिति तथा उन पर होने वाले अमानुषिक अत्याचार आदि प्रस्तुत की गई है। दोनों ही उपन्यासों में समाज सुधार की भावना निहित है।

प्रेमचंद युग के अन्य एक उपन्यासकार पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने तत्कालीन समाज की कुरीतियों को साहसपूर्ण चित्रण करने का साहसिक कदम उठाया है। इनके द्वारा रचित उपन्यास हैं – 'चंद हसीनों के खतूत' (1927 ई०), 'दिल्ली का दलाल' (1927 ई०), 'बधुवा की बेटी' (1928 ई०), 'शराबी' (1930 ई०) आदि। 'दिल्ली का दलाल' उपन्यास में कन्याओं और युवतिओं का क्रय-विक्रय करने वाली संस्थाओं का पर्दाफाश किया गया है। भोली-भाली लड़कियों को बहला-फुसलाकर गायब कर दिया जाता है। नारी की दुर्गति का वीभत्स चित्रण इस उपन्यास में दर्शाया गया है। उग्र के उपन्यासों में अधिकतर शराबियों, वेश्याओं, दलितों से जुड़े समस्याओं का नग्न चित्रण साहस के साथ चित्रण हुआ है। 'शराबी' में वेश्या जीवन के बारे में यथार्थ चित्रण हुआ है।

प्रेमचंदयुगीन उपन्यासकार वेश्याओं को केवल भोग की वस्तु या समाज की कोढ़ के रूप में चित्रित नहीं करते बल्कि उनके प्रति संवेदनशील दृष्टि का परिचय भी देते हैं। 'समाज की वेदी पर' 'वेश्या का हृदय', 'हीरे की अँगूठी', 'तीन वर्ष' आदि उपन्यासों में वेश्याओं की महानता, त्याग, निश्छल प्रेम आदि का चित्रण किया गया है। अन्य उपन्यास 'जी जी जी' में हिन्दू परिवार और समाज में स्त्री पर होने वाले अत्याचारों का विस्तारपूर्वक अंकन मिलता है।

विधवा का पुनर्विवाह करना या करवाना समकालीन समाज में पाप के बराबर था। कुछ उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में विधवा का पुनर्विवाह दिखाकर बहुत ही हिम्मत का काम किया है। ये उपन्यास निम्नलिखित हैं – 'संगम', 'मास्टर साहब', 'अमर अभिलाषा', 'इंदिरा बी.ए.', 'हीरे की अँगूठी', 'पतिता की साधना', 'मुन्नी की डायरी' आदि। अत: उक्त विवरण से हम जान सकते हैं कि प्रेमचंद युग से ही हिन्दी उपन्यासों में नारियों के उत्थान का प्रवेश हो चुका था, लेकिन असल में नारी जागरण, नारी शिक्षा, नारी चेतना का व्यापक प्रचार-प्रसार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही हुआ।

उपन्यासकार विश्वम्भरनाथ कौशिक ने केवल दो उपन्यासों की रचना की - 'माँ' (1929 ई०) और 'भिखारिणी' (1929 ई०)। 'माँ' उपन्यास में आदर्श माँ की कल्पना की गई है, वास्तविक माँ और गोद लेने वाली माँ के बीच के प्यार में अंतर दिखाया गया है। साथ ही उपन्यास में वेश्या गमन की बुराइयों का चित्रण किया गया है। 'भिखारिणी' उपन्यास में प्रेम के बारे में जाति भावना के द्वंद्व में प्रेम का पराजय और त्रासदी अंकन किया गया है। लगभग 16 वर्ष बाद अन्य एक उपन्यास 'संघर्ष' (1945 ई०) का प्रकाशन होता है जिसमें आर्थिक विषमता के कारण प्रेम की निष्फलता एवं पश्चाताप का चित्रण किया गया है।

भगवती प्रसाद वाजपेयी द्वारा कई उपन्यास लिखे गए हैं उनमें से 'अनाथ पत्नी' (1928 ई०) स्त्री जागरण से सम्बन्धित उपन्यास है। उपन्यास की मुख्य पात्र रजनी अपने सामने आए विपरीत परिस्थिति में घबराती नहीं है बल्कि आर्थिक स्वालंबन और पुरुष की गुलामी से मुक्ति का प्रयास

करती रहती है और लगातार पढ़ाई करते हुए अंत में डाक्टर की परीक्षा पास कर अपना जीवन रोग पीड़ितों की सेवा में लगा देती है इसलिए इस उपन्यास को स्त्री सशक्तिकरण के अंतर्गत माना जाता है।

इलाचंद जोशी कृत 'घृणामयी' सन् 1929 ई० में लिखा गया था, जो बाद में 'लज्जा' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में ऐसी स्त्री की कहानी है जो अपने प्रेमी से विवाह करने हेतु अपने पिता और भाई की उपेक्षा करती है। जब तक उसे एहसास होता है तब तक बहुत देर हो जाती है। पश्चाताप की मन:स्थिति में दिखाकर लेखक ने अपनी नारी सम्बन्धी रुढ़िवादी दृष्टिकोण को दर्शाया है।

मनन द्विवेदी कृत 'कल्याणी' (1920 ई०) में बाल-विवाह और विधवा की दुर्दशा का चित्रण हुआ है जो नारी समस्या से सम्बद्ध है। ऋषभचरण जैन द्वारा लिखित उपन्यास हैं – 'पैसे का साथी' (1928 ई०), 'दिल्ली का व्यभिचार' (1928 ई०), 'वेश्यापुत्र' (1929 ई०), 'दिल्ली का कलंक' आदि। इन्होंने दिल्ली महानगर में फैले वेश्याओं की जीवन-शैली, वेश्या समाज तथा उनसे होने वाले अपराधों के विषय में लिखा है। इनका मानना है कि व्यभिचारिणी स्त्रियों व वेश्याओं के कारण समाज में अपराध फैलता है जिसे उपन्यास में चित्रण किया गया है। लेखक के दृष्टिकोण से उपन्यास में अपराध होने का कारण वेश्याओं को माना है, लेकिन इसमें उन वेश्याओं का क्या दोष हो सकता है? एक तो वे पहले से ही कुत्सित जीवन व्यतीत करने हेतु बाध्य है तथा शौक से चकलाघरों में नहीं जातीं बल्कि धोखे एवं सामाजिक परिस्थिति के मजबूरी के चलते उन्हें जाना पड़ता है। अन्य एक उपन्यास 'चम्पाकली' (1937) में लेखक एक तरफ तो वेश्या जीवन की पीड़ा/त्रासदी को सहानुभूति के साथ अंकन करते हैं और दूसरी तरफ वेश्याओं को समाज का कलंक मानते हैं। इस प्रकार के विरोधाभासी मानसिकता के बीच नारी अभी भी उसी स्थान पर पायी जाती है जहाँ से वह चली थीं। सिर्फ दुखों का बयान करना काफ़ी नहीं हैं बल्कि उनके लिए एसा मार्ग ढूढ़ निकालना होगा जहाँ समाज में सभी को समान रूप से जीने/रहने का अधिकार है चाहे वह वेश्यावृत्ति ही क्यों न करती हो।

प्रेमचंद के बाद जैनेन्द्र कुमार ने नारी की स्थिति को अलग चश्मे से देखा। इन्होंने कई उपन्यासों की रचना की जिनमें 'परख' (1929) इनका पहला उपन्यास है। दूसरा उपन्यास 'सुनीता' के

प्रकाशित होते ही साहित्य जगत् में जैसे हलचल मची, क्योंकि एक स्त्री द्वारा तत्कालीन समाज को जबरदस्त चुनौती मिलती है। "व्यक्ति के आतंरिक जीवन, मानसिक द्वंद्व, मूल्य विषयक संघर्ष आदि को अधिक गहराई और सर्जनात्मकता के साथ उपन्यास का विषय बनाने का श्रेय जैनेन्द्र कुमार को है।"[17] जैनेन्द्र कुमार ने स्त्री-पुरुष के प्रेम और दाम्पत्य की समस्या को अधिक वैचारिक गंभीरता और संवेदनशीलता के साथ मनोवैज्ञानिक स्तर पर चित्रित किया है। उपन्यास की स्त्री पात्र सुनीता का अपने प्रेमी हरिप्रसन्न के समक्ष आक्रामक समर्पण की मुद्रा में निर्वस्त्र हो जाना, उस समय के समाज के लिए ग्राह्य नहीं था। जैनेन्द्र ने हिन्दी उपन्यास को नई दृष्टि देने का प्रयास किया, जिसका विकास बाद में हुआ। 'त्यागपत्र' की मृणाल नारी विषयक परंपरागत सहिंता की जंजीरों में जकड़ी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जिसे जैनेन्द्र ने जैसे मुक्ति का रास्ता दिखाया।

जयशंकर प्रसाद ने तीन उपन्यास लिखे जो काफ़ी प्रसिद्ध हुए वे हैं – 'कंकाल' (1930 ई०), 'तितली' (1934 ई०) और 'इरावती' अपूर्ण (1936 ई०)। कंकाल में तत्कालीन समाज तथा तीर्थस्थानों पर धर्म के नाम पर प्रचलित दुराचारों, रूढ़ियों एवं कुरीतियों का यथार्थ वर्णन है साथ ही स्त्री के प्रति पुरुष का अमानवीय व्यवहार जो परम्परावादी दृष्टिकोण से उन्हें प्राप्त हुआ है। उसका भी प्रसाद ने जिवंत चित्रण किया है। प्रसाद ने दिखाया है कि स्त्रियाँ पुरुषों द्वारा किसी न किसी रूप में छली जाती है। जिनके द्वारा धोखा होता है, वे भी समाज के तथाकथित भद्र पुरुष होते हैं। इस उपन्यास के माध्यम से जान सकते हैं कि स्त्रियाँ किसी भी काल की हो, किसी भी जाति से हो या किसी भी परिवेश से आयी हो पुरुष ने हमेशा अपने स्वार्थ के लिए उसका इस्तेमाल किया है।

प्रेमचंद ने भले ही वेश्याओं के प्रति अपनी सहानुभूति रखी है किन्तु वे सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला-सा सहस नहीं कर पाए। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के उपन्यासों में सामाजिक परिवर्तन की कामना प्रखर रूप से देखने को मिलती है। प्रश्न चाहे वेश्याओं का हो या किसानों का, निराला की क्रांतिकारी कदम बदलाव की दृष्टि से सर्वत्र मुखरित है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला कृत उपन्यास

[17] राय, गोपाल. (2002). ***हिंदी उपन्यास का इतिहास.*** नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं. 160.

'अप्सरा' में वेश्या समाज की समस्याओं का चित्रण हुआ है। इस उपन्यास के माध्यम से वेश्या पुत्री का विवाह अन्य कूल के युवक के साथ कराकर तत्कालीन समाज को चुनौती दी है। अन्य उपन्यास 'निरुपमा' में भी वे वेश्या पुत्री कनक का विवाह किसी साहित्यकार युवक से सफलतापूर्वक पूर्ण करते हैं। लेखक समाज को एक ज्वलंत समस्या के प्रति आगाह करते हैं। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही हिन्दी उपन्यासों में वेश्या समस्या समाज की एक ज्वलंत समस्या के रूप में विद्यमान रहा। वेश्यावृत्ति को समाज के विकास में बाधा के रूप में देखा गया और वेश्यावृत्ति जैसे कार्य में स्त्रियों की मार्मिक स्थिति को भी लेखकों ने उपन्यास के माध्यम से अभीव्यक्त किया। बीसवीं शताब्दी के उपन्यासों में स्त्री दोयम दर्जे का जीवन व्यतीत कने हेतु बाध्य थी। चाहे स्त्री के जिस भी किसी रूप में लेखक ने इन समस्याओं को रखा लेकिन केंद्र में वेश्या समस्या को लेकर चिंता ही थी।

धनीराम प्रेम एक उपन्यासकार हुए जिन्होंने 'वेश्या का हृदय'/'आयसू' नामक उपन्यास लिखा जिसमें वेश्या जीवन का अत्यंत मार्मिक चित्रण करते हुए उनके समान पूर्ण वैवाहिक जीवन की कल्पना की है। इस प्रकार हम देख सकते हैं की प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों में अधिकांश ऐसे उपन्यास है लिखे गए जो स्त्रियों की समस्याओं से सम्बद्ध रही।

सुरेन्द्र वर्मा कृत 'मालती' (1934 ई०) में स्त्री शिक्षा का प्रचार-प्रसार को दर्शाया गया है। इस उपन्यास की केन्द्रीय पात्र नारी जागरण और स्त्री-शिक्षा के प्रचार के लिए न केवल आन्दोलन करती है वरन् गाँव-गाँव जाकर रात्रि पाठशाला, कन्या पाठशाला, व्यायामशाला आदि की स्थापना कर स्त्रियों में जागृति पैदा करती है।

सियारामशरण गुप्त कृत 'गोद' (1933 ई०) में ग्रामीण जीवन की पृष्ठभूमि पर संयुक्त परिवार की महत्ता तथा स्त्री पर अविश्वास के कारण समाज द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का वर्णन हुआ है। उनकी अंतिम उपन्यास 'नारी' (1937 ई०) सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है। इसमें समकालीन भारतीय स्त्री की विवशता का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास की मुख्य पात्र जमुना एक परित्यक्ता

नारी है जो संघर्ष करती हुई सामाजिक वर्जनाओं को सहती और उनसे जूझती है लेकिन वह कभी समझौता नहीं करती।

राधिकारमण प्रसाद सिंह कृत 'राम रहीम' (1937 ई०), 'सूरदास' (१९४३ ई०), 'चुम्बन और चांटा' (1957 ई०) आदि उपन्यासों में पुरुष समाज द्वारा नारी के शोषण का विस्तार से अंकन किया गया है। इनके अनुसार वेश्यावृत्ति भी एक वृत्ति है और यदि कोई देह का व्यवसाय निर्लिप्त भाव से करती है तो उसमें कोई दोष नहीं हैं।

देवनारायण द्विवेदी द्वारा कृत दो उपन्यास 'दहेज़' (1938 ई०) और 'पश्चाताप' है। 'दहेज़' में दहेज़ प्रथा समस्या को उजागर किया गया है। हिन्दू समाज में व्याप्त दहेज़ प्रथा अत्यंत गंभीर समस्या है। दहेज़ प्रथा से स्वत: कई समस्याएं जुड़ने लगती है और स्त्री को इस प्रकार जकड़ लेती है कि वह दमघोटू जीवन जीने हेतु बाध्य हो जाती है। दहेज़ न दे सकने के कारण लड़कियाँ कुँवारी रह जाती है और सारा जीवन समाज द्वारा प्रताड़ित होती हैं। उपन्यासकार ने इस उपन्यास के माध्यम से दहेज़ प्रथा का विरोध किया है और इसके साथ-साथ पुनर्विवाह का भी समर्थन किया है।

1.2.3 स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यास -

अहिन्दी भाषी और पहली महिला उपन्यासकार उषादेवी मित्रा जिन्होंने लगभग आधा दर्जन उपन्यास लिखकर अपना विशेष महत्व स्थापित किया है। इनका जन्म सन् 1897 ई० में हुआ। इनकी उपन्यास 'वचन का मोल' (1936 ई०) अन्य महिला उपन्यासकारों के उपन्यास की तुलना में उत्कृष्ट माना जाता है। स्त्री की समस्याओं और उलझनों का विश्वसनीय, मनोवैज्ञानिक अंकन इस उपन्यास में हो पाया है। इन्होंने अपने उपन्यास के माध्यम से सामाजिक मर्यादाओं से निरपेक्ष एकनिष्ठ प्रेम की वकालत और आधुनिकता का ढोंग करने वाले पुरुषों का नारी के प्रति तर्कहीन दृष्टिकोण तथा स्त्री को भोग की वस्तु समझने की प्रवृत्ति की आलोचना की है। इनकी उपन्यास 'नष्टनीड़' में बलात्कार की शिकार स्त्री की सामाजिक तथा मानसिक स्थिति का अंकन किया गया है और साथ ही सतीत्व की

रुढ़िवादी अवधारणा को ख़ारिज किया है। संक्षेप में कह सकते हैं की इस उपन्यास ने स्त्री सम्बन्धी संहिता जो पुरुष वर्ग द्वारा निर्मित है उसे चुनौती दी है। अत: यह उषादेवी मित्रा की सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है।

हिन्दी उपन्यास की पहली महिला उपन्यासकार उषादेवी मित्रा के बाद दूसरी उल्लेखनीय महिला उपन्यासकार कंचनलता सब्बरवाल ने तीन उपन्यासों की रचना की है, जो इस प्रकार है – 'मूक प्रश्न' (1944 ई०), 'भोली भूल' (1946 ई०) और 'संकल्प' (1946 ई०) आदि। 'मूक प्रश्न' उपन्यास में स्त्री के लिए रूप सौन्दर्य की तुलना में चारित्रिक सौन्दर्य का महत्व प्रतिपादित किया गया है। पति द्वारा त्याग दिए जाने पर उपन्यास की मुख्य पात्र सावित्री में परंपरागत नारी संहिता के प्रति विद्रोह भाव पैदा हो जाता है। पति के पश्चाताप करने पर भी सावित्री उसे माफ़ नहीं करती है और अपनी सारी जिन्दगी जन सेवा हेतु न्यौछावर कर देती है। 'भोली भूल' उपन्यास में वेश्याओं के प्रति गहरी सहानुभूति व्यक्त हुई है। इस काल की अन्य महिला उपन्यासकार हुईं वासंतीरानी सेन, श्रीमती शीलो, प्रभावती भट्नागर आदि। वासंतीरानी सेन कृत 'दिलारा' (1941 ई०) में हिन्दू-मुस्लिम एकता विषयक समस्या का चित्रण किया गया है। गौण रूप से जमींदारों द्वारा स्त्रियों के अपहरण और उनके विक्रय के प्रसंग भी प्रस्तुत किए गए है, लेखिका के विषयों से सम्बन्धित विचार प्रगतिशील है।

श्रीमती शीलो द्वारा रचित 'ग्रेजुएट लड़की' (1942 ई०) उपन्यास का केंद्र विषय दहेज़ प्रथा से उपजने वाली समस्याएं हैं, लेकिन इस उपन्यास में दहेज़ प्रथा के विरोध के साथ-साथ परंपरागत नारी संहिता का भी समर्थन किया गया है। प्रभावती भट्नागर द्वारा रचित 'पराजय' (1946 ई०) में कंचनलता सब्बरवाल की तरह कुरूप लेकिन चारित्रिक गुणों से संपन्न स्त्री की समस्याओं का चित्रण किया गया है।

प्रेमचंद युग मेंअन्य लेखिकाओं ने उपन्यासों की रचना की जिनमें रुक्मणी देवी कृत 'मेम और साहब' (1919 ई०) और 'कुन्ती सुंदरी' (1922 ई०), विमला देवी चौधरानी कृत 'कामिनी' (1923 ई०), रत्नावती देवी शर्मा कृत 'सुमति' (1923 ई०), शैलकुमारी देवी कृत 'सुंदरी' (1924 ई०),

गिरिजा देवी कृत 'कमला कुसुम' (1925 ई०), कुमारी तेजरानी दीक्षित कृत 'हृदय का काँटा' (1928 ई०), श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर कृत 'मधुवन' (1933 ई०), प्रभावती कृत 'पराजय' (1934 ई०), जगदम्बा देवी कृत 'हीरे की अँगूठी' (1934 ई०), उषा देवी मित्रा कृत 'वचन का मोल' (1936 ई०), कुटुम प्यारी देवी सक्सेना कृत 'हृदय की ताप' (1936 ई०) आदि उल्लेखनीय उपन्यास माना जाता है।

प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों में तत्कालीन समाज का प्रभाव देखा जा सकता है। इस काल के कई उपन्यासकार भारतीय नारी संहिता का समर्थन करते हैं, लेकिन कई उपन्यासकारों ने इस परंपरा का विरोध भी किया है। उपन्यास 'जी जी जी' में हिन्दू परिवार और समाज में स्त्री पर होने वाले अत्याचारों का विस्तारपूर्वक अंकन मिलता है। शोषित व पीड़ित नारी के प्रति गहरी सहानुभूति के बावजूद लेखक भारतीय नारी संहिता के प्रति आस्थावान नजर आते हैं। इस अंतर्विरोध के कारण उग्र जी का नारी विषयक दृष्टिकोण विरोधाभास-सा लगता है। इस तरह हम देख सकते हैं कि स्त्री की स्थिति को लेकर इतने संवेदनशील व्यक्ति एक तरफ उनकी मुक्ति की बात करता है तो दूसरी तरफ भारतीय परंपरा के अंतर्गत स्त्रियों को जकड़ने की बात करता है। वे स्त्री विषय पर लिख तो रहे थे लेकिन स्त्री चेतना के वास्तविक मूल्यों को परिभाषित नहीं कर रहे थे। प्रेमचंद के 'सेवासदन' उपन्यास से वेश्या समस्याओं को सफल रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार उपन्यासकारों के संवेदनशील रचनाओं को देखते हुए कहा जा सकता है कि वेश्या समाज के प्रति बढ़ती सहानुभूति को नारी मुक्ति आन्दोलन की शुरुआत माना जा सकता है। प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों में सबसे उत्कृष्ट उपन्यास लिखने वालों में प्रेमचंद का नाम आता है। उनके द्वारा रचा गया उपन्यास 'गोदान' एक महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसका अपना एक विशिष्ट स्थान है और आज तक यह उपन्यास हिन्दी में श्रेष्ठ उपन्यास की गरिमा बनाए हुआ है।

अत: कहा जा सकता है कि इस काल के उपन्यासकारों ने नारी विषयक कोई भी समस्या छोड़ी ही नहीं है। विधवा समस्या, कन्या-विक्रय समस्या, अनमेल विवाह, बहु विवाह, अंतर्जातीय

और अंतर्राष्ट्रीय विवाह आदि का चित्रण समकालीन उपन्यासों में हुआ है। महिला लेखिकाओं द्वारा लिखे गए अधिकांश उपन्यासों में हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियों जैसे विधवाओं की दयनीय स्थिति, पातिव्रत्य और सतीत्व की महत्व, वेश्यावृत्ति अपनाने की बाध्यता, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त स्त्रियों के आचरण में कमी, लड़की का विवाह पश्चात् की अपमानजनक स्थिति आदि का चित्रण किया गया है। हिन्दू समाज में नारी की विषम परिस्थितियों को सजीव रूप से व्यक्त करने के साथ-साथ इन लेखिकाओं की दृष्टि पुरुष रचनाकारों की दृष्टि से अलग नहीं है। विधवा का पुनर्विवाह करना या करवाना समकालीन समाज में पाप के बराबर था। कुछ उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में विधवा का पुनर्विवाह दिखाकर बहुत ही हिम्मत का काम किया है। ये उपन्यास निम्नलिखित हैं – 'संगम', 'मास्टर साहब', 'अमर अभिलाषा', 'इंदिरा बी.ए.', 'हीरे की अँगूठी', 'पतिता की साधना', 'मुन्नी की डायरी' आदि।

1.3 प्रेमचंदोत्तर युग व स्त्री रचनाकार:-

प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास का कथा फलक काफी विस्तृत रहा है। इन उपन्यासों में अधिकतर महानगरीय जीवन में जी रही स्त्रियों की जटिल मानसिक द्वंद्व और दाम्पत्य जीवन समस्या से उपजने वाली अन्य समस्या का चित्रण किया गया है तथा जीवन के कई पहलुओं को संवेदना के साथ प्रस्तुत किया गया है। इन उपन्यासों का टेकनीक की दृष्टि से भी विकास हुआ है एवं कई शैलियों को समन्वित कर उपन्यास लिखा जा रहा है। स्त्री के संघर्ष, जिजीवषा, आकांक्षा, सुख-दुःख, एवं नवीन परिवर्तित जीवन को उपन्यासों में उठाया गया है। नारी की मुक्ति की कामना कई उपन्यासों में किया गया है लेकिन समयानुसार नारी के परिवर्तित होते जीवन को भी उपन्यासकारों ने नई दृष्टि से देखने का प्रयास किया और स्त्री-विमर्श विषय को अपना केंद्र बनाया। स्त्री का परिवर्तनशील परिवेश, समस्याओं, जीवन मूल्यों के अनुरूप स्त्री का पारम्परिक रूप से सीमित दायरा भी बदला है, जिसे उपन्यासकारों ने स्त्री-विमर्श का स्वर दिया।

1.3.1 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री-चेतना -

यशपाल कृत 'दिव्या' उपन्यास में ब्राह्मणकुल में जन्मी एक स्त्री की कहानी है जो समाज द्वारा निर्मित नारी संहिता का उल्लंघन करती है जिसके फलस्वरूप उस पर कई अत्याचार होते हैं। बलात्कार होने के पश्चात् वह गर्भवती हो जाती है वैसे भी कुँवारी माँ के लिए समाज में कोई स्थान नहीं होता है, ऐसे में उसका शोषण कई तरह से होता है। समाज द्वारा स्वीकृत न किए जाने पर वह आत्महत्या का नाकाम प्रयास करती है और देह व्यापारियों के हाथों पड़ जाती है। दास व्यवसायी प्रतुल दिव्या को भूधर शर्मा को बेच देता है और फिर उसे कोई पुरोहित चक्रधर धाय के रूप में खरीद लेता है। पुरोहित के पत्नी को दूध नहीं उतरता इसलिए दिव्या उसके बच्चे को दूध पिलाने का काम करती है, लेकिन समस्या यह है कि उसका भी एक बच्चा है जिसे माँ के दूध की जरुरत होती है। ऐसी स्थिति में दिव्या यदि पुरोहित के बच्चे को दूध पिलाती है तो खुद का बच्चा भूखा रह जाता है और अपने बच्चे को पिलाती है तो मालिक का बच्चा भूखा रह जाता है। पुरोहित पत्नी उसके बच्चे को ख़त्म कर देना चाहती है यह जानकर दिव्या उस घर से चिलचिलाती गर्मी की भरी दोपहर में पुत्र को लेकर घर से भाग निकलती है। भूखी-प्यासी थकी दिव्या बौद्ध विहार में शरण की कामना लिए पहुँचती है, लेकिन वहाँ भी उससे कई प्रश्न किये जाते है। स्थविर के पास जाने का मौका मिलता है किन्तु वे भी और प्रश्न पूछने लगते हैं, वह कहता है कि तुम माँ के रूप में शरण माँग रही हो मोहमाया से मुक्त नहीं हो, इसलिए शरण नहीं मिलेगी। उसके सन्यासी बन जाने की कामना करने पर भी उसे अधिकार नहीं है निर्णय लेने का। अंत में वह आम्रपाली का नाम लेते हुए कहती है कि तथागत बुद्ध ने आम्रपाली को शरण दी थी और आप मुझे यों भूखा-प्यासा असुरक्षित क्यों छोड़ रहे हैं। स्थविर निर्विकार उत्तर देते हैं वेश्या स्वतंत्र नारी है।

विडम्बना यह है कि नारी को यदि स्वतंत्र होना है तो वेश्या बनने के सिवा कोई रास्ता नहीं हैं, तभी वह जी सकेगी वर्ना उसकी लगाम पिता, पति और पुत्र के ही हाथ में है। उसका न कोई अपना व्यक्तित्व है और न नाम। एक व्यक्ति में अथाह योग्यता होने के बावजूद 'दिव्या' को समाज

सम्मानपूर्वक जीवन जीने की इजाज़त नहीं देता और अंतत: वह वेश्या जीवन अपनाने को विवश हो जाती है। यही भारतीय नारी की नियति मानी जाती थी लेकिन यशपाल की दिव्या यही नहीं रूकती और वह अपने जाति के लोगों का तिरस्कार करती है और अन्य कुल के युवक से प्रेम करती है जो स्त्री-पुरुष के नैसर्गिक संबंध में विश्वास करता है।

यशपाल का एक अन्य उपन्यास 'मनुष्य के रूप' (1949 ई०) में नारी के प्रति हो रहे शोषण का ऐसा चित्रण किया गया है मानों घटनाएँ हमारे सामने ही घटित हो रही है। पुरुष प्रधान समाज ने हमेशा नारी को भोग की वस्तु माना है, उसके प्रति हर स्तर के असंवेदनात्मक रवैये का लेखक ने मार्मिक ढंग से चित्रण प्रस्तुत किया है। उपन्यास में दिखाया गया है कि – 'स्त्री मात्र एक देह है' जो कि पितृसत्तात्मक समाज का मानना है इसी आधार पर नारी की विवशता को दिखाया गया है और उसके भटकन के साथ-साथ मुखौटे लगाये भोगवादी व्यक्तियों का चित्रण किया गया है। शशिप्रभा शास्त्री का जन्म 1923 ई० में हुआ था। इनके प्रकाशित उपन्यास हैं – 'अमतलास' (1968 ई०), नावें (1974 ई०), 'सीढियाँ' (1976 ई०), 'परछाइयों के पीछे' (1979 ई०), 'कर्करेखा' (1983 ई०), 'छोटे महायुद्ध' (1988 ई०), 'मीनारे' (1992 ई०), 'हर दिन इतिहास' (1995 ई०) आदि। अमतलास में एक ऐसी उपेक्षित नारी के जीवन का चित्रण किया गया है जो परंपरागत भारतीय पत्नी की भूमिका बड़ी ईमानदारी के साथ निभाती है, फिर भी पति खुश नहीं हो पाता और एक दिन पति का निधन हो जाता है जिसके बाद भी पत्नी को पति के प्रति निष्ठावान दिखाया गया है। इस उपन्यास द्वारा लेखिका परंपरागत और अप्रासंगिक होरहे मूल्यों का समर्थन करती है।

'परछाइयों के पीछे' में एक पढ़ी-लिखी और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर स्त्री की विवशता का चित्रण किया गया है जो जीने के तमाम शर्तों को स्वीकार करती है फिर भी वह सुखी नहीं रह पाती। मानसिक रूप से वह स्त्री परंपरागत नारी चरित्र संहिता से ग्रसित है। पुरुष का स्त्री के चरित्र पर शक करना और उससे शारीरिक और मानसिक यातना पाने के बावजूद वह इस स्थिति में जीने को अपनी नियति मानती है। 1970 ई० में प्रकाशित 'नदी और सीपियाँ' उपन्यास गुलशेर खां शानी द्वारा

रचित उपन्यास है। यह पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है जिसमें नवविवाहिता लड़की का मूल्यांकन उसके अक्षतयोनी होने की कसौटी पर किया जाता है और यदि वह उस कसौटी पर खड़ी नहीं उतरती है उसको प्रताड़ित किया जाता है। विवाह की उम्र में वृद्धि के कारण उत्पन्न यह समस्या आधुनिक दाम्पत्य जीवन का एक यथार्थ है, जिसके साथ सामंजस्य स्थापित करने में भारतीय पुरुष मानसिकता असमर्थ रही है।

गिरिराज किशोर कृत 'जुगलबंदी' (1973 ई०) में भी स्त्री विषयक समस्याओं का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में दिखाया गया है की किस प्रकार सामन्ती व्यवस्था नारी को केवल भोग की वस्तु मात्र मानता है और उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व के बारे में नहीं सोचता। उपन्यास में सभी स्त्री पात्रों का जीवन एक-सा व्यतीत होता है। सभी शिक्षा और ज्ञान से वंचित है तथा घर की चार दिवारी में बंद होकर पुरुष के अत्याचार, शोषण को अपनी नियति के रूप में स्वीकार करती है। उपन्यास की एक पात्र सोना इस स्थिति का विद्रोह करती है और उससे निकलने के लिए सफलतापूर्वक संघर्ष करती है। अन्य एक उपन्यास 'तीसरी सत्ता' (1982 ई०) का विषय दाम्पत्य जीवन का संघर्ष है। आज के परिप्रेक्ष्य में नारी स्वतंत्र एवं आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होती है बावजूद इसके वह पुरानी सामाजिक मान्यताओं एवं रूढ़ियों से मुक्त नहीं हो पायी है। पति उसे अपना वस्तु समझता है, उसके चरित्र पर शंका करता है और उसको मानसिक प्रताड़ना देता है। फलत: वह स्त्री जो पेशे से डॉक्टर है, नौकरी छोड़ परंपरागत नारी संहिता को पालन करने का निर्णय लेती है।उपर्युक्त उपन्यासों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि लेखक स्वयं पुरुष मानसिकता से ग्रसित है या फिर उनके विचार में स्पष्टता नहीं है।

शरद सिंह के द्वारा लिखा गया उपन्यास 'पिछले पन्ने की औरतें' (2005) में जिन औरतों को पात्र के रूप में रखा गया है वे सदियों से सामाजिक उपेक्षा, और्थिक विपन्नता और दैहिक शोषण को अपनी नियति मानकर सहती आ रही हैं। वे बेड़नियों के नाम से भी जानी जाती हैं। अधिकांश लोगों के लिए ये औरतें 'बेड़नी' मात्र हैं, जिन्हें नाचने वाली के रूप में देखा जाता है, जिन्हें भोगा जा सकता

है और जिन्हें परम्पराओं की जंजीरों में जकड़ कर बंधुआ बनाए रखा जा सकता है, किंतु जिन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ने के प्रयत्न यदा-कदा ही उठते हैं। स्त्री-विमर्श पर आधारित इस उपन्यास में सदियों से दलित, पीड़ित, शोषित और उपेक्षित स्त्रियों की जीवन-दशाओं एवं उनसे जुड़ी समस्याओं को अत्यन्त मार्मिकता के साथ रेखांकित किया गया है।

मॉरीशस के हिन्दी लेखक अभिमन्यु अनत ने उपन्यास के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है। इनकी अधिकतर उपन्यास मॉरीशस के स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद की जीवन स्थितियों पर आधारित है। अनत द्वारा लिखे गए दो उपन्यास है - 'अपनी ही तलाश' (1979 ई०) और 'शेफाली' (1979 ई०)। शेफाली में एक संवेदनशील वेश्या की कथा है। दिलीप पांडेय कृत 'खुलती गिरहें' (2015) उपन्यास में पांच अलग-अलग स्त्री किरदार हैं जो अपनी धुन में दुनिया के सामने अपने होने के अहसास को मजबूत कराती हुई दिखाई देती हैं। उनकी जिंदगी की उधेड़बुन, उनकी जद्दोजहद, उनके अस्तित्व का संकरे पिंजरों की कैद से छूटकर बाहर निकलना और अपना आसमान तथा अपनी दिशा तय करना, सब कुछ उपन्यास में बहुत बारीकी से उभरता है। कुर्रतुलएन हैदर कृत 'अगले जन्म मोहे बिटिया न कीजो' (2009) मामूली नाचने-गानेवाली दो बहनों की कहानी है, जो बार-बार मर्दों के छलावों का शिकार होती हैं।

1.3.2 स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यास -

कृष्णा सोबती ने पाँच उपन्यासों की रचना की हैं जिनमें से 'सूरजमुखी अँधेरे में' (1942 ई०) और 'दिलो-दानिश' (1993 ई०) में स्त्री सम्बन्धी समस्याओं को उठाया गया है। 'सूरजमुखी अँधेरे में' उपन्यास में रत्तो एक बेबाक स्त्री की भूमिका में है जो परम्पारगत नारी संहिता से टकराती है, जूझती है और चुनौती देती है। दिलो-दानिश' कृष्णा सोबती की उत्कृष्ट उपन्यास मानी जाती है। अवैध संतान की समस्या को संवेदनशीलता के साथ चित्रित करना, इस उपन्यास का उद्देश्य है। एक तरफ हवेली की स्त्रियाँ है जो कुंठित मानसिकता से ग्रसित है। कुटुमप्यारी के स्वामी अन्य स्त्री मेहक बानो के पास

फराशतखाना जाते रहते हैं जहाँ उससे बच्चे भी हैं, जिसे न पत्नी का दर्जा मिलता है और न ही उनके बच्चों को पिता के संपत्ति का अधिकार मिलता है। उपन्यास में दोनों स्त्रियों के परिस्थितिगत मानसिक द्वंद्व को उभारने का प्रयास किया गया है।

वर्तमान जगत् में उपन्यासों में बड़ी शक्ति है। समाज में जो रूप विकसित होती है और उससे जो मार्ग निकलकर आ रहे हैं उसका प्रत्यक्ष चित्रण करना उपन्यास का काम है और साथ ही आवश्यकतानुसार उनमें सुधार अथवा निराकरण किया जाना भी। सन् 1944 ई० में जन्मी मेहरुन्निसा परवेज के द्वारा रचित उपन्यास इस प्रकार है – 'आँखों की दहलीज' (1969 ई०), 'उसका घर' (1972 ई०), 'कोरजा' (1977 ई०) और 'अकेला पलाश' (1981 ई०)।

लेखिका ने अपने सारे उपन्यासों की रचना मध्यप्रदेश के बस्तर क्षेत्र को पृष्ठभूमि में रखकर किया है। इनके सारे उपन्यासों में नारी लाचारी की जिन्दगी जीती है। मुस्लिम समाज और इसी समाज की कहानी को उपन्यासों में अंकन किया है और बताया गया है कि दोनों समाजों में पुरुष समाज द्वारा स्त्री का दोहन, शोषण किया जाता है। उपन्यासों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि स्त्री की पीड़ा में कोई धर्म फर्क नहीं करता, चाहे हिन्दू हो, मुस्लिम हो या फिर ईसाई हो। सभी धर्मों में स्त्री की स्थिति भिन्न नहीं है। 'उसका घर' उपन्यास में एक पीड़ित नारी कहती है कि औरत तो जूठा खाने की आदी होती है, चाहे खाने के मामले में हो या चाहे शारीरिक संबंध में हो। 'कोरजा' उपन्यास में स्त्री भिन्न-भिन्न प्रकार से पति या अन्य पुरुषों के उत्पीड़न और यौन शोषण की शिकार बनती है। इस उपन्यास में लेखिका ने मुस्लिम समाज की औरत की पीड़ा का चित्रण बखूबी से किया है। धार्मिक कट्टरता के कारण व्यक्ति का असहिष्णु और अमानवीय हो जाना चिंता का विषय है जिसे लेखिका ने संवेदनशीलता से व्यक्त किया है।

शिवानी द्वारा रचित उपन्यास हैं – 'चौदह फेरे', 'कृष्णकली' (1969 ई०), 'छिमा' (1971 ई०), 'विषकन्या' (1970 ई०), 'शमशान चम्पा' (1972 ई०), 'गैंडा, माणिक और रथ्या' (1977 ई०) और 'विवर्त' (1984 ई०), आदि। 'चौदह फेरे' उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने उपन्यास क्षेत्र

में विशिष्ट पहचान बनायी है। मन्नू भंडारी कृत 'आपका बंटी' प्रसिद्ध उपन्यास है जिसमें स्त्री-परुष संबंध व दाम्पत्य जीवन का चित्रण किया गया है। तलाक शुदा पति-पत्नी और उनके संतान को केंद्र में रखकर वास्तविकता का ऐसा चित्रण प्रस्तुत किया गया है जो अत्यंत संवेदनशील है। दाम्पत्य जीवन का विघटन संबंध और नए सिरे से संबंध बनाकर जीनेका आग्रह आधुनिक जीवन की सच्चाई है लेकिन इस स्थिति की जटिलता तब चुनौतीपूर्ण और त्रासद हो जाती है जब इनके बीच कोई संतान आ खड़ा होता है। मन्नू भंडारी ने इस आधुनिक जटिल स्थिति का गहरी संवेदनशीलता और तीखे यथार्थबोध के साथ अंकन किया है। सन् 1979 ई० में मन्नू भंडारी की द्वितीय उपन्यास 'महाभोज' प्रकाशित होता है जो समकालीन राजनीतिक परिवेश से सम्बद्ध है। इस उपन्यास में राजनीति में प्रविष्ट मूल्यहीनता, शैतानिकता और नैतिक उल्लंघन का अत्यंत यथार्थ और सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है। मन्नू भंडारी की रचनाशीलता प्रखर होने के कारण कहना यह उचित होगा कि महिला उपन्यासकार भी नारी विमर्श के बाहर जाकर समकालीन यथार्थ का अंकन गहरी संवेदनशीलता के साथ कर सकती हैं।

ममता कालिया कृत उपन्यास निम्नलिखित हैं – 'बेघर' (1971 ई०), 'प्रेम कहानी' (1980 ई०), 'एक पत्नी के नोट्स' (1997 ई०), 'नर-दर-नरक' (1975 ई०) आदि। 'एक पत्नी के नोट्स' में स्त्री-पुरुष संबंध के विविध रूपों का चित्रण करने का प्रयास किया गया है। बेघर में लेखिका ने नारी संहिता के एक बड़े ही क्रूर विरोधाभास को प्रस्तुत किया है। स्त्री को अपने भोग की वस्तु समझने वाला पुरुष इस बात को बर्दाश्त नहीं कर पाता कि विवाह के पूर्व कोई दूसरा उसे जूठा कर चुका है। जबकि पुरुषों को इस बात की छूट होती हैं। इस उपन्यास का केंद विषय है – यौनशुचिता, कौमार्य, और केवल पति से संबंध नारी संहिता के अनुल्लंघ्य नियम है और जो भी स्त्री जानेअनजाने में इस नियम का उल्लंघन करती है, उसे पुरुष समाज द्वारा बहिष्कार किया जाता है।

मृदुला गर्ग की लगभग सभी उपन्यासों के केंद्र में आधुनिक नारी की समस्या और अस्तित्व का संघर्ष रहा है। इनके द्वारा लिखे गए उपन्यास हैं – 'उसके हिस्से की धूप' (1975 ई०), 'वंशज'

(1976 ई०), ‘चितकोबरा’ (1979 ई०), ‘अनित्य’ (1980 ई०), ‘मैं और मैं’ (1984 ई०), ‘कठगुलाब’ (1996 ई०) आदि। ‘उसके हिस्से की धूप’ में एक ऐसी स्त्री के अंतर्द्वंद्वों, मनोभावों की कहानी है जो विवाह के पश्चात् पति के उदासीनता से उब जाती है और भावुकता में डूब कर विवाह के नए संबंध स्थापित करती है। अंत में उससे भी उबकर वापस पूर्व पति के पास आ जाती है। ‘कठगुलाब’ में पुरुष प्रधान समाज का नारी के प्रति दोहन/शोषण और उससे मुक्ति संघर्ष की कथा कही गयी है। इसमें लेखिका ने भारतीय नारी चेतना को विभिन्न बिन्दुओं से अवलोकन कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। अत : यह उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है।

इस काल की अन्य महिला उपन्यासकार मंजुल भगत द्वारा रचित उपन्यास इस प्रकार है – ‘टूटा हुआ इन्द्रधनुष’ (1976 ई०), ‘लेडीज क्लब’, ‘अनारों’ (1977 ई०), ‘बेगाने घर के’ (1978 ई०), ‘खातुल’ (1983 ई०), ‘तिरछी बौछार’ (1984 ई०), ‘गंजी’ (1995 ई०) आदि। ‘टूटा हुआ इन्द्रधनुष’ में परंपरागत नारी संहिता को अस्वीकार किया गया है जो आधुनिक नारीवाद की आवाज है। ‘लेडीज क्लब’ में महानगरों में रहने वाली स्त्रियों के आत्म प्रदर्शन, उनकी झूठी जिन्दगी और कृत्रिम जीवन को रेखांकित कर उनके अंतर्विरोधों को प्रस्तुत किया गया है।

राजी सेठ कृत ‘तत्सम’ (1983 ई०) उपन्यास में पुनर्विवाह की समस्या को केंद्र में रखकर लिखा गया है। आधुनिक काल में भी स्त्री का पुनर्विवाह हो सकना बहुत मुश्किल है। समाज अभी भी इस बात के लिए तैयार नहीं है। वैसे भी स्त्री का अपने पूर्व विवाह से भावनात्मक रूप से गहरा जुड़ाव होता है। स्त्री अपने पति के स्मृतियों को भुलाकर दूसरे संग जीवन बिताने हेतु असहज महसूस करती है। पुनर्विवाह की समस्या को उपन्यास में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। अत: उपन्यास में परंपरागत नैतिकता को लेकर संघर्ष उतना नहीं है जितना कि पति-पत्नी के भावनात्मक संबंध को लेकर है।उषा प्रियंवदा का उपन्यास ‘रुकोगी नहीं राधिका’ में नायिका राधिका अपनी अस्मिता के संरक्षण और विकास के लिए परिस्थितियों से जूझती है और सामाजिक मूल्यों का तिरस्कार करती है।

प्रभा खेतान कृत 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में एक ऐसे स्त्री के चरित्र को गढ़ा गया है जो पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों के वर्चस्व के विरुद्ध आवाज उठाती है और अपनी अलग पहचान बनाना चाहती है। औरत वेश्या बनकर शरीर बेचें, या घर बैठी-बैठी कुछ करती रहे यह तो पुरुषों को बर्दाश्त है, मगर उसकी दुनिया में घुसपैठ करके तांगा हाँके और आत्मनिर्भर बने यह आदमी कैसे सहेगा।

कुसुम खेमानी के द्वारा लिखित उपन्यास 'लावण्यदेवी' (2016) का कथा फलक अत्यन्त विस्तृत है क्योंकि इसमें एक ही कुटुम्ब की पाँच पीढ़ियों की गाथा समाहित है। इस उपन्यास की स्त्री पात्र अत्यंत सशक्त है जिसमें प्रभावती, ज्योतिर्मयी देवी, लावण्यदेवी और उनकी संतति की दास्तान के साथ-साथ पूरे युग में भाषा का भी बखान है। उपन्यास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि बंगाली परिवेश को लेकर लिखा गया उपन्यास है। बंगाली समाज की खास बात यह है कि वहाँ की स्त्रियाँ पुरुषों से कहीं से कमतर नहीं होतीं। समाज भी स्त्रियों को समान दर्जे का हक़दार मानता है। 'जडिय़ाबाई' (2017) उपन्यास में ऐसी मारवाड़ी स्त्री के उत्कर्ष की गाथा है, जो धनाढ्य परिवार की होने के बावजूद बचपन से ही प्राणी मात्र के लिए संवेदनशील और करुणामयी हैं, जडिय़ाबाई पंचशील के पाँचों सिद्धान्तों का अनुशीलन करती हैं। वे सर्वे भवन्तु सुखिनः के लिए अपना'तन-मन-धन' सब कुछ अर्पित कर देती हैं।

स्वतंत्रता पूर्व उपन्यासों के तीन उद्देश्य थे - नैतिक शिक्षा, सामाजिक समस्या का उद्घाटन, मनोरंजन एवं सुधार। इस काल के उपन्यासों में कथाशिल्प अप्रौढ़ एवं सीधा-सादा माना जाता है। उपन्यासकार अपने पूर्वनियोजित लक्ष्यपूर्ति के अनुसार कथा का गठन और विकास करता रहा है। भाषा में उर्दूमिश्रित खिचड़ी दिखायी देती है। बोलचाल की भाषा की प्रधानता रही है। 'परीक्षागुरु' और 'भाग्यवती' में जहाँ साधारण बोलचाल की भाषा प्रस्तुत की गई है वहाँ 'सौ अजान एक सुजान' में संस्कृतनिष्ठ भाषा मिलती है। उषादेवी मित्रा हिंदी की प्रथम उपन्यास लेखिका हैं। इनके उपन्यासों में नारी की कोमलता, भावुकता, लचीलापन, सरलता और सरसता व्यक्त हुई है। 'नष्टनीड़', 'जीवन की मुस्कान' और 'वचन का मोल' इनके अन्य उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में विभिन्न समस्याओं के भीतर

नारी का रूप वर्णित है। 'शाल्मली' नासिरा शर्मा द्वारा लिखा गया एक ऐसा उपन्यास है जिसमें नारी का एक अलग और नया ही रूप उभरा है। शाल्मली इसमें परम्परागत नायिका नहीं है, बल्कि वह अपनी मौजूदगी से यह अहसास जगाती है कि परिस्थितियों के साथ व्यक्ति का सरोकार चाहे जितना गहरा हो, पर उसे तोड़ दिये जाने के प्रति मौन स्वीकार नहीं होना चाहिए। 'शाल्मली' एक बड़ी अफसर की भूमिका में है, इसके बावजूद वह बेहद सामान्य जीवन जीती है। यही उसकी खूबी है कि वह नौकरशाह होते हुए भी, उस वर्ग से कटी हुई है और एक आम भारतीय नारी के यथार्थ को जीती है। लेकिन 'शाल्मली' दया और करुणा में डूबी अश्रू बहाने वाली उस नारी का प्रतीक भी नहीं है जिसे पुरुष सत्ता की गुलामी में सब कुछ खो देना पड़ता है। वह सामान्य होते हुए भी असाधारण है और चुनौती के तेवर रखती है।

अत: महिला उपन्यासकारों द्वारा रचित उपर्युक्त उपन्यासों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद पूर्व युग से प्रेमचंदोत्तर युग तक की यात्रा में महिलाओं का रचना संसार काफ़ी विस्तृत हुआ है। ये नारियाँ मध्यमवर्गीय पारिवारिक जीवन के अंतर्विरोधों को उपन्यासों के माध्यम से चित्रण करने में सफल हुई हैं और साथ ही पुरुषप्रधान समाज में खुद की पहचान बनाने हेतु जो संघर्ष रहा है वो सराहनीय है। मन्नूभंडारी, कृष्णा सोबती, मेहरुन्निसा परवेज, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, आदि ऐसे नाम हैं जिन्होंने निर्भीकता के साथ समाज में व्याप्त रूढ़ियों को उजागर करने का प्रयास किया। हिन्दी उपन्यासों में जो नारी चरित्र उभरकर आए हैं उनमें नारी के आत्म-बोध, आत्मनिर्भरता एवं आत्मविश्वास को विभिन्न परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। नारी किसी भी रूप में चित्रित हो, वह अपनी पहचान स्वयं बनाने में सक्षम है चाहे लेखिका के रूप में, चाहे डॉक्टर, प्राध्यापक या अधिकारी के रूप में। वे पारम्परिक रूढ़ियों को चुनौती देती हुई महत्त्वाकांक्षिणी के रूप में चित्रितहैं।

नए उपन्यासकारों के लेखनों में निम्नमध्यवर्गीय जीवन, समाज के दोहरे मानदंड एवं आर्थिक दबाव से उपजने वाली समस्याओं का चित्रण आदि को प्रमुखता से उठाया गया है। निरूपमा सोबती कृत 'पतझड़ की आवाजें' में नारियाँ आर्थिक दुर्दशा के साथ-साथ अपने आतंरिक भावनाओं और

महत्त्वाकांक्षाओं के लिए संघर्ष करती हैं। प्रेमचंद, जैनेन्द्र, अज्ञेय, अश्क, फणीश्वरनाथ रेणु, यशपाल, सुरेन्द्र वर्मा, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, अलका सरावगी, गिरिराज किशोर, कमलेश्वर आदि उपन्यासकारों ने विभिन्न दृष्टिकोण रखते हुए अपनी शैली में समाज के ज्वलंत समस्याओं का चित्रण किया। आधुनिक उपन्यासों में चित्रित नारी चरित्रों में वैयक्तिक रुचि, महत्त्वाकांक्षा, स्वतंत्र चेतना, अस्तित्व एवं अस्मिता की पहचान के साथ-साथ जीवन के दुःखों एवं संघर्षों को भी उकेरा गया है।

***

हिन्दी एवं नेपाली उपन्यासों में नारी-अस्मिता के निरंतर परिवर्तित होते सन्दर्भ

3.1 स्वतन्त्रता के पश्चात् का स्त्री लेखन

- 3.1.1 हिन्दी उपन्यास और स्त्री लेखन
- 3.1.2 नेपाली उपन्यास और स्त्री लेखन

3.2 भूमंडलीकरण व स्त्री लेखन

- 3.2.1 भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास
- 3.2.2 भूमंडलीकरण और नेपाली उपन्यास

3.3 इक्कीसवीं सदी का स्त्री लेखन

- 3.3.1 इक्कीसवीं सदी और हिन्दी उपन्यास
- 3.3.2 इक्कीसवीं सदी और नेपाली उपन्यास

विश्व में आज स्त्रियाँ राष्ट्रपति बनने से लेकर चाँद तक पहुँच गई हैं लेकिन वे अपने ऊपर होने वाले अमानवीय व्यवहार, शोषण, घरेलू हिंसा, बलात्कार आदि से पूर्ण रूप से छुटकारा नहीं पा सकी हैं। यह सम्पूर्ण मानव जाति के लिए दुर्भाग्य की बात है कि दुनिया की आधी आबादी अभी भी अपने आप को स्वतंत्र, सुरक्षित बराबरी के स्तर पर नहीं पातीं जबकि स्त्री को असीम शक्ति का श्रोत माना गया है। सबको सुरक्षा देनी वाली, दुःख हरने वाली दुर्गा , भगवती, काली, चंडी का ही एक रूप ख़ुद को सुरक्षित नहीं मानती। यही मनुष्यता की सबसे बड़ी हार है, लेकिन नारियाँ हारी नहीं है। स्त्रियाँ स्वयं को पुरुषवादी समाज द्वारा उसके अधिकारों से वंचित रखने वाली प्रवृत्ति को समझ गई है एवं अपने हिस्से के अधिकार को पाने के लिए वह लगातार संघर्ष कर रही है। हिंदी व नेपाली के उपन्यासकार नए-नए अध्यायों के लेखन हेतु प्रतिबद्ध है। साहित्य का समाज और उसके इतिहास के साथ सीधा सम्बन्ध रहा है। अत: इस अध्याय में नारी अस्मिता के निरंतर परिवर्तित होते आयामों को हिन्दी एवं नेपाली उपन्यासों के माध्यम से परिभाषित करने से पूर्व वैदिक काल, बौद्धकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ में शोधपरक अध्ययन किया जा रहा है।

वैदिक काल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति -

वैदिक काल में नारी की सामाजिक स्थिति को देखा जाए तो ज्ञात होता है कि तत्कालीन नारियाँ पुरुष की साथी हुआ करती थीं, उनके सहयोगी के रूप में जीवन-यापन करती थी न कि अनुगामिनी या परछाई बनकर। धार्मिक अनुष्ठानों में भी पत्नी का अपने पति के साथ उपस्थित होना अनिवार्य रहता था। अर्द्धनारीश्वर की जो परिकल्पना की गई है, वह बताता है कि स्त्री-पुरूष के मिलाप से ही मानव जीवन का विकास हो पाया है। अत: यह स्वत: स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री-पुरूष दोनों पूर्ण रूप से समान हैं एवं एक-दूसरे के परिपूरक हैं। जैसा कि वेदों में भी कहा गया है कि "पौराणिक देवों में एक कल्पना अर्धनारीश्वर की

भी है। परम शिव अथवा परमेश्वर ने शरीर के आधे-आधे दोनों भागों से शिव तथा सती की उत्पत्ति की। जब दोनों का उपस्थिति स्थल समान है तब दोनों में पार्थक्य की सम्भावना नहीं की जा सकती है।"[1]

वैदिक नारियाँ/देवियाँ की स्थिति प्रारंभ में इससे भिन्न मानी जाती थी। देवियाँ प्राय: प्राकृतिक संशाधनों की रक्षिता या अधिकारिणी होती थीं। अधिकतर देवियाँ प्राय: देवों की पत्नी होती थीं। इसलिए इन्हें स्तुति योग्य तथा पूज्यनीय समझा जाता था। पति के नाम से ही उनका नाम रखा जाता था। जैसे इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी, सूर्य देवता की पत्नी उषा, अग्नि की पत्नी अग्नायी और अश्विन की पत्नी अश्विनी आदि। वैदिक काल में देवियों की अपेक्षा देवों की संख्या अधिक होने के कारण उन्हें अधिक महत्व भी मिलता था। वही वेदों में देवियों की तुलना में ब्रह्मवादिनी स्त्रियों का अधिक महत्व था, उन्हें पुरुषों के समकक्ष माना जाता था। वे मन्त्रद्रष्टि और ऋषिका जैसे सम्मानित नामों से जानी जाती थीं। वेदकालीन नारियों में ऐसे कई विदुषियाँ हुई जिनका नाम इतिहास के पन्नों पर स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया है। इनमें से कुछ प्रसिद्ध ऋषिकाओं के नाम इस प्रकार हैं – मैत्रेयी, गार्गी, घोषा, अपाला, वाक् आदि। आदिकाल में कुछ स्त्रियाँ ऐसे भी हुई जिन्होंने अपने जीवन का पथ न सिर्फ स्वयं चुना बल्कि विवाह जैसे पारम्परिक बंधन में न बंधकर सहस्र वर्षों तक कठोर तपस्या कर अपने लक्ष्य तक पहुँची। उनके नाम इस प्रकार हैं – ब्राह्मणी, रत्नावती, शाश्वती आदि। जैसा कि वेदों में भी कहा गया है – 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् शिक्षा व्यक्ति को उदार बनाती है। संभवतः यही कारण था कि बाल विवाह, पर्दाप्रथा एवं सतीप्रथा जैसी कुरीतियाँ तत्कालीन समाज में प्रचलित नहीं थी।

आदि काव्य तक आते-आते वे स्त्रियाँ बंदिनी सीता में परिणत हो गई। छाया के समान राम का अनुसरण करने वाली करुणामयी सीता भी वास्तव में छाया नहीं थी। पति के हर दुःख-सुख में वन-वन भटकने के उपरांत अंत में पति द्वारा निर्वासित की जाती है। एक दिन वनवासिनी के रूप में जीवन जीने के

[1] बैनर्जी, डॉ. शिप्रा. (2012). ***संस्कृत वांग्मय में नारी: एक परिचयात्मक कोश***, नई दिल्ली : परिमल प्रकाशन. पृष्ठ 43.

दौरान वह राम को गर्वपूर्ण सन्देश भेजती है– "मेरी ओर से उस राजा से कहना कि मैं तो पहले ही अग्नि-परीक्षा देकर अपने आपको साध्वी प्रमाणित कर चुकी हूँ, मुझे निर्वासित कर उसने क्या अपने प्रख्यात कुल के अनुरूप कार्य किया है।"[2] पुरुष यदि स्वयं को स्त्री का पालनकर्ता, भर्ता और स्वामी कहलाता है तो उसकी रक्षा का दायित्व भी उसी का होता है। यदि वह उसमें असफल रहा तो पत्नी के समक्ष अपराधी है, दण्ड देने के अधिकारी नहीं। इस एक घटना ने स्त्री के स्थिति को ह्रास कर दिया, जिससे वेदकालीन गृहस्वामिनी का आसन डोल गया। पति-पत्नी समान पद पर नहीं रहे, पति-पत्नी का साथी, सहचर, समपर्याय का नहीं रहा, वह अधिकारी, स्वामी, दंडाधिकारी, विधाता एवं निर्णायक बन गया।

बौद्धकाल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति -

बौद्धकाल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति दो रूपों में हमारे समक्ष प्रचलित है। पहले रूप के अंतर्गत उन स्त्रियों की चर्चा की जा सकती है जो अंधकारमय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होती थीं। पति को संतुष्ट करना, उन्हें खुश रखना ही उनका प्रमुख लक्ष्य होता था। दूसरे रूप के अंतर्गत उन स्त्रियों की चर्चा की जा सकती है जो क्रांतिकारी थीं, जो स्त्री-स्वतंत्रता की पक्षधर थीं। भारतीय इतिहास में सर्वप्रथम बुद्ध ने नारियों को अपने संघ में रहने की अनुमति देकर क्रान्तिकारी कदम उठाया, जो नारियों के उद्धार का कारण बना। 'थेरीगाथा' वह दस्तावेज है जिसने सम्पूर्ण नारी जाति को नया मार्ग दिखाया। बौद्धकालीन स्त्रियों ने थेरीगाथा के माध्यम से अबला समझी जाने वाली स्त्रियों के क्रांतिकारी, अन्याय सहने से इंकार करने वाली, अपने अधिकार के प्रति जागरूक रूप को दर्शाया।

बौद्धकालीन स्त्रियों का व्यक्तित्व एक-दूसरे से अलग होते हुए भी वे चेतना से परिपूर्ण थे। यशोधरा के चेतना के बारे में महादेवी वर्मा कहती हैं - "त्यागी बुद्ध की करुण कहानी की आधार सती गोपा भी

[2] वर्मा, महादेवी. (2008). ***श्रृंखला की कड़ियाँ.*** इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ सं. 13.

केवल उनकी छाया नहीं जान पड़ती, वरन् उसका व्यक्तित्व बुद्ध से भिन्न और उज्जवल है। निराशा में, ग्लानि में और उपेक्षा में वह न आत्महत्या करती है, न वन-वन पति का अनुसरण।"[3]

वहीं अन्य स्त्री गौतमी सर्वप्रथम पाँच सौ भिक्षुणियों के साथ संघ में प्रवेश कर इतिहास रचती है। इस सन्दर्भ में डॉ. अंबेडकर कहते हैं - "महाप्रजापति गौतमी ही स्त्रियों की अग्रगण्य थी जो संघ में प्रवेश करना चाहती थी।"[4] अत: यह कहा जा सकता है की बौद्धकाल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति बहुत हद तक सही थी। बौद्ध धर्म के कारण स्त्रियों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त हुआ। पुरानी परम्पराओं के बोझ तले बिना दबे वे स्त्रियाँ अपने अंतर्मन की भावनाओं को व्यक्त कर सकती थीं। इस सन्दर्भ में थेरीगाथा में कई भिक्षुणियों के गीत संग्रहीत हैं जो अपने अनुभवों को गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती हैं। वे भिक्षुणियाँ हैं – सुमंगला, उब्बीरी, प्रकृति (चंडाल कन्या) आदि।

कालांतर में धीरे-धीरे स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आता गया। उनसे बहुत अधिक अपेक्षाएं रखी जाती थी। इसका उदाहरण हम स्वयं गौतम बुद्ध के विवाह के प्रसंग से जान सकते हैं। पिता के पूछने पर कि तुम्हें किस प्रकार की कन्या से विवाह करना है सिद्धार्थ का कहना था- "मेरी पत्नी साधारण स्त्री नहीं होगी। सर्वगुण संपन्न होने के साथ वह रूप, जन्म, वंश, गोत्र आदि की दृष्टि से शुद्ध एवं सुशिक्षित होनी चाहिए। रूप गर्विता न हो। त्याग भावना के साथ उसमें दान करने की भावना होनी चाहिए। उसमें अहंकार, छल, कपट, ईर्ष्या जैसे दुर्गुण नहीं होने चाहिए। धर्मपरायण, लज्जाशील तथा धर्मचारिणी होनी चाहिए। सास ससुर के प्रति श्रद्धाभाव रखने वाली होनी चाहिए। सबके सोने के बाद सोये तथा सबके जागने से पहले जग जाये।"[5] इन बातों से यह स्पष्ट होता है कि उस काल में भी विभिन्न प्रकार के गुणों से परिपूर्ण कन्या से विवाह करना उचित समझा जाता था। स्त्री को साधारण इन्सान नहीं बल्कि सर्वगुणसंपन्न

---

[3] वर्मा, महादेवी. (2008). ***श्रृंखला की कड़ियाँ.*** इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ सं. 12.
[4] मालती, डॉ. के एम. (2010). ***स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य***, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 11.
[5] रमन, आर.एस. (2012). ***भगवान बुद्ध.*** दिल्ली : निधि बुक सेंटर. पृष्ठ सं. 28.

होना होता था। अनेक अपेक्षाओं के बोझ तले दबी नारी के लिए और कोई रास्ता नहीं था, सिवाय उसे पालन करने के।

मध्यकाल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति -

इस काल में बाल-विवाह प्रथा जोर-शोर से आरम्भ हो रहा था या यह कहे कि उस समय यह एक सामान्य प्रचलन सी-थी। बाल-विवाह प्रथा का एक कारण यह भी था कि मुस्लिम शासक भारतीय लड़कियों से आकर्षित होकर उन्हें अपहरण कर लेते थे, लेकिन उनके कुरान में यह भी लिखा था कि विवाहित स्त्रियों को कोई अन्य पुरुष हाथ तक नहीं लगा सकता। जिसके फलस्वरूप तत्कालीन हिन्दू समाज में यह देखा गया कि उनके लड़कियों की शादी बहुत ही कम उम्र में कर दी जाने लगी और ये एक परंपरा के रूप में स्थापित होने लगी। उस समय लड़की जब दस-बारह साल की हो जाती थी तो वे विवाह योग्य समझी जाती थी। यदि किसी कारण विवाह होने में समय लगता तो ये उस परिवार के लिए अपमान का विषय होता था। "इसलिए माता-पिता पर अत्यावश्यक भार रहता कि वे यथासंभव शीघ्र उसके लिए वर ढूढ़ लें इसी कारण बाल-विवाह के रूप में भारतीय नारी जाति के विरुद्ध गहरा अपराध शुरू हुआ।"[6] धीरे-धीरे समय बदलता गया। वयस्क उम्र के लड़के-लड़कियों को एक-दूसरे को चुनकर विवाह करने का प्रचलन आरम्भ हुआ। जैसे राजपूतों में स्वयंवर की प्रथा सामान्य-सी थी। "राजपूत राजकुमारियों को यह अधिकार प्राप्त था कि वे उस व्यक्ति को अपने पति के रूप में चुनें जिसे वे अपने लिए सर्वाधिक उपर्युक्त समझे।"[7] सन् 1206-1707 ई० अवधि में हिन्दू परिवारों में पुत्री के जन्म को दुर्भाग्यपूर्ण माना जाता था उनका मानना था कि पुत्र निश्चित रूप में वंश-परम्परा को आगे बढ़ा सकता है और अपने पूर्वजों के आत्मा की शान्ति के लिए कार्य-विधियाँ कर सकता है। इसलिए उसका महत्व पुत्री के स्थान पर अत्यधिक माना

[6] गुप्ता, डॉ. कमला. (2008). ***मध्यकालीन उत्तर भारत में हिन्दू महिलाओं की सामाजिक स्थिति***. पटना : बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी. पृष्ठ सं. 18.
[7] वही. पृष्ठ सं. 25.

जाता था। पुत्री का जन्म होने से अच्छा है कि उसे कोई संतान ही न हो, ऐसी कामना की जाती थी। पुत्री का जन्म होना यानि पूर्व जन्म का पाप समझा जाता था।

वेदकालीन युग में स्त्रियों का पर्दे के पीछे रहने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। रामायण में भी यह उल्लेख है कि सार्वजनिक रूप से स्त्रियों का प्रकट होना गलत नहीं माना जाता था। महाभारत और उसके बाद के समय में स्त्रियों को अलग से पर्दे के पीछे रखने का प्रमाण मिलता है, लेकिन माना जाता है कि वास्तव में पर्दा प्रथा शुरू होने में विदेशी आक्रमणकारियों, विशेषत: मुगलों के आगमन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

मध्यकालीन भारत में स्त्रियों की शिक्षा की प्रगति शासक वर्ग और समृद्ध लोगों के द्वारा बाधित हुई। उनके शिक्षा में विशेष रूप में बाधा के रूप में बाल-विवाह और पर्दा-प्रथा जैसे नियम दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसा हमेशा से नहीं था। सामान्यत: शासक और उच्च वर्गों के लोग अपनी पुत्रियों और बहनों को प्रशिक्षित करते थे। अपने देख-रेख में उनके शिक्षा के स्तर का भी परीक्षण करते थे। जहाँ शासक और समृद्ध वर्गों के लोग अपने परिवार की स्त्रियों को प्रशिक्षण देते थे वहाँ सामान्य जनों के परिवारों की लड़कियाँ शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाती थी। धीरे-धीरे समाज में पर्दा-प्रथा का प्रचलन बढ़ने लगा, जिसके कारण उच्च वर्गों और सुसंस्कृत घरों की स्त्रियाँ बाहरी पुरुषों और घर के बुजुर्गों के सामने नहीं आ सकती थी। ऐसे सामाजिक कुरीतियों के कारण शिक्षित परिवार को भी अपने घर के स्त्रियों को शिक्षा देने से वंचित रहना पड़ता था।

स्त्रियों के शिक्षा ग्रहण करने की प्रक्रिया में बाल-विवाह दूसरी सबसे बड़ी बाधा थी। समाज अन्धविश्वास में उलझे हुए था जिससे उनका विवाह बारह वर्ष की आयु तक कर दिया जाता था। विवाह के बाद सामाजिक परम्पराएँ एवं कट्टरतापूर्ण पर्दा-प्रथा के कारण स्त्रियाँ घर से बाहर नहीं निकल सकती थी। ऐसे में शिक्षा प्राप्त करने का कोई साधन ही नहीं रह जाता था।

कबीर पर्दा-प्रथा जैसे सामाजिक कुरीतियों के घोर विरोधी थे एवं स्त्री-शिक्षा के समर्थक थे। वे स्त्रियों को परामर्श देते हैं कि उन्हें अपने गुरु से शिक्षा लेनी चाहिए – “जो कामिनी पर्दा रहे, सुने न गुरु मुख बात/सो तो होगी सूकरी, फिर उघारे गात।”[8]

दक्षिण भारत के भक्ति आन्दोलन का भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में अहम् योगदान देखा जा सकता है। वैष्णव भक्तों का समय लगभग सातवीं-आठवीं शताब्दी का रहा है। उस समय बारह आलवार भक्तों में केवल एक ही महिला भक्त थीं – आण्डाल। सामाजिक और आध्यात्मिक दृष्टि से आण्डाल की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। सक्षिप्त में कहा जाए तो आण्डाल स्त्री के स्वतंत्र बुद्धि एवं स्वतंत्र व्यक्तित्व की पक्षधर थीं। आण्डाल का यह मानना था कि स्त्री केवल पुरुषों की वासनापूर्ति का साधन नहीं है। अक्कमहादेवी भी दक्षिण प्रान्त के कर्नाटक से थीं जो विद्रोहिणी के रूप में भी जानी जाती हैं। स्त्री-स्वतंत्रता की जब भी बात किया जाता है तो अक्कमहादेवी को याद किया जाता है। उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों को नकारकर केशाम्बर धारण किया। अक्कमहादेवी विशेषकर पुरुष वर्चस्ववाद के विरुद्ध, पुरुष सत्ता से अक्सर टकराती हैं।

इस काल में कई विदुषियाँ ऐसी हुई जिनका नाम बड़े आदर के साथ और उदाहरण के तौर पर लिया जा सकता है। पृथ्वीराज रासों में ‘मदना’ नामक प्रसिद्ध ब्राह्मण अध्यापिका हुआ करती थीं जिसके द्वारा चलाई जाने वाली पाठशाला में कुमारी संयोगिता अध्ययन किया करती थी। पृथ्वीराज रासों में और एक शिक्षित स्त्री चंद्रिका की चर्चा मिलती है जो एक अच्छी नर्तिका, गायिका और शास्त्रीय विद्या में निपुण थी। इसी प्रकार कई स्त्रियाँ ऐसी भी हुई जिन्होंने साहित्य और ललित कलाओं के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जिनके नाम इस प्रकार हैं – दमयंती, राजकुमारी चाँद, मीरा, मृगावती, पद्मावती, चित्ररेखा, मधुमालती, रूपमती, माधववीदास, आनंदमयी और चंदावती आदि।

[8] गुप्ता, डॉ. कमला. (2008). ***मध्यकालीन उत्तर भारत में हिन्दू महिलाओं की सामाजिक स्थिति.*** पटना : बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी. पृष्ठ सं. 167.

आधुनिक काल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति -

आज की विद्रोहशील नारी व्यावहारिक जीवन में अधिक कठोर है, गृह में अधिक निर्मम और शुष्क, आर्थिक दृष्टि से अधिक स्वाधीन, सामाजिक जीवन में अधिक स्वच्छंद, परन्तु अपनी निर्धारित रेखाओं की संकीर्ण सीमा की वन्दिनी है।"[9] "स्त्री की दृष्टि में शक्ति ही अधिकारों का स्रोत होता है। उसका विश्वास है कि पुरुषों के अधिकार भी उनके शक्ति पर निर्भर रहता है। इसीलिए किसी भी सामाजिक संस्था के नष्ट हो जाने पर स्त्रियाँ ही विजेताओं के चरणों में पहले झुकती है।"[10] वे जो कुछ हैं, उसे सहज ही स्वीकार कर लेती हैं क्योंकि स्त्रियाँ त्याग और समर्पण को अपने चरित्र का हिस्सा मानती हैं, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वह कमजोर है। यहाँ स्त्री को समझने का प्रयास किया जाना आवश्यक है कि उसका स्वभाव क्यों ऐसा है? क्यों वह छोटी-छोटी चीजों में उलझी रहती है? वह क्यों विश्व के प्रगति में अपना भी उतना ही योगदान हो सकता है उसे मानने में हिचकती है? त्याग की देवी बने रहने में वह क्यों थकती नहीं? आखिर समर्पण ही उसके हिस्से में क्यों आतीं है? धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से उन्नत होने पर भी आर्थिक दृष्टि से क्यों पिछड़ कर रहती है? पुरुषों ने हमेशा स्त्री को सौंदर्य की प्रतिमा माना। वहीं पुरुषों को आकर्षित करना स्त्री का भी लक्ष्य रहा। स्त्री केवल एक प्रियसी नहीं थी, वह कभी पत्नी तो, कभी माता के रूप में पुरुष के सामने आयी। उसकी भूमिका लगातार परिवर्तित होते देखकर पुरुष ने यह अनुभव किया कि वह केवल स्त्री नहीं है बल्कि माँ के रूप में महान मनुष्य भी है।

स्वतंत्रता पूर्व का काल भारतीय नवजागरण के नाम से भी जाना जाता है। इस काल में कई उद्धारकर्ता हुए जिन्होंने नारी के सामाजिक स्थिति का उत्थान करने में अपना सर्वस्व त्याग दिया, अपना जीवन न्यौछावर कर दिया। तत्कालीन भारतीय समाज अन्धविश्वास, बाल-विवाह, सती प्रथा, जाति प्रथा

---

[9] गुप्ता, डॉ. कमला. (2008). ***मध्यकालीन उत्तर भारत में हिन्दू महिलाओं की सामाजिक स्थिति***. पटना : बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी. पृष्ठ सं. 15.

[10] खेतान, डॉ. प्रभा. (2004). ***स्त्री उपेक्षिता***. नई दिल्ली : हिंदी पॉकेट बुक्स. पृष्ठ सं. 306

जैसे रूढ़ियों में जकड़े हुए था। राजा राममोहन राय ने समाज को तथा स्त्रियों को शिक्षा के प्रति जागरूक कर सती-प्रथा जैसे अन्धविश्वास का निर्मूलन किया। राजा राममोहन राय के अतिरिक्त केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि ने नारी के उत्थान में अपना अमूल्य योगदान दिया। ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले के समर्पण, योगदान को कैसे भूला जा सकता है ? उन्होंने तत्कालीन समाज में स्त्री-शिक्षा, बाल-विवाह निषेध, विधवा पुनर्विवाह, अछूतों, अस्पृश्यों तथा विधवाओं के संतानों के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए। इनके अलावा रानी लक्ष्मी बाई, पंडिता रमाबाई, शारदादेवी, स्वामी विवेकानन्द, पेरियार, महात्मा गाँधी, डॉ. बी आर. अंबेडकर आदि ने स्त्री मुक्ति के लिए अनेक मुहीम चलाकर उनका उद्धार किया।

सन् 1888 में पंडिता रमाबाई ने 'द हाई कास्ट हिन्दू विमेन' नामक पुस्तक लिखीं, जिसमें पितृसत्तात्मक सोच की आलोचना की गई है। श्रीरामकृष्ण परमहंस की धर्मपत्नी शारदा देवी का अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व था। स्त्री पक्षधर शारदा देवी ने विधवा स्त्रियों, बच्चियों पर होने वाले अत्याचारों का विरोध करते हुए तथा पुरुषों के रूप में छिपे दरिंदों से सतर्क रहने के लिए स्त्रियों को यह उपदेश दिया था कि "पुरुष जाति का कभी विश्वास नहीं करना, यहाँ तक कि यदि भगवान भी पुरुष का रूप धारण कर तुम्हारे सामने आएँ तो उसका भी विश्वास न करना।"[11] स्त्री-पुरुष समानता के पक्षधर स्वामी विवेकानन्द ने स्त्री में शिक्षा के अभाव से होने वाले कारण को पता लगाया तथा उसका निराकरण किया। उनका कथन था कि "महिलाओं में शिक्षा का प्रसार ही उनकी उन्नति कर सकता है। ज्ञान ही महिलाओं को तथा देश को उनकी अवनति से बचा सकता है, दुर्दशा से ऊपर उठा सकता है।"[12] स्त्रियों के पक्ष में गाँधी जी का सबसे बड़ा योगदान यह माना जाता है कि उन्होंने सर्वप्रथम देश की महिलाओं को उनके अपने राजनितिक महत्व से परिचित करवाया तथा उन्हें जन-आन्दोलन का अभिन्न अंग बनने हेतु प्रेरित भी

[11] मालती, डॉ. के एम. (2010). ***स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य***, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 41.
[12] वही. पृष्ठ सं. 43.

किया। डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने 'हिन्दू कोड बिल' कानून पास करवाकर समस्त नारी जाति का उद्धार किया। बौद्ध धर्म में स्त्रियों की स्थिति को स्पष्ट करते हुए अंबेडकर ने समाज में प्रचलित भ्रांतियों को खंडन कर प्रमाणिक तथ्यों को उजागर किया।

इस प्रकार हम पाते हैं कि स्वतंत्रता से पूर्व स्त्री मुक्ति, स्त्री शिक्षा, स्त्री सशक्तिकरण पर जोर देते हुए हमारे पूर्वजों ने अथक प्रयास किया। इसके बाद हमारे साहित्यकारों ने साहित्य के अनेक विधाओं के माध्यम से इस परंपरा को आगे बढ़ाया। उपन्यास साहित्य की एक सशक्त विधा है जिसमें जीवन के लगभग सभी पहलुओं को समाहित कर प्रस्तुत की जा सकती है।

हिन्दी उपन्यासों में नारी-अस्मिता के निरंतर परिवर्तित होते सन्दर्भ -

स्वतंत्रता पूर्व उपन्यासों में स्त्री लेखन काफी कम हुए हैं। इन उपन्यासों में उपन्यासकारों ने स्त्री से सम्बन्धित समस्याओं को रेखांकित जरूर किया है, परन्तु ये उपन्यास अधिकतर आदर्शवादी होते थे। तत्कालीन उपन्यासकारों के नाम हैं – लाला श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट, मेहता लज्जारम शर्मा, ठाकुर जगमोहन सिंह, ब्रजनंदन सहाय, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि। स्वतंत्रता पूर्व उपन्यासों में स्त्री लेखन तो नहीं के बराबर है, किन्तु स्त्री सम्बन्धी विषयों को उपन्यासकारों ने गंभीरता के साथ प्रस्तुत किया है। उस समय समाज में स्त्री के प्रति जागरण की भावना फैल ही रही थी। यह भारतेन्दु युग की ही देन है जहाँ गद्य की परम्परा प्रारम्भ हुई और इन सभी विषयों को उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली।

मेहता लज्जारम शर्मा ने कई उपन्यास लिखे, जिसमें तत्कालीन स्त्री जीवन को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी', 'आदर्श दंपत्ति', 'सुशीला विधवा' आदि। उपन्यासकार ने बड़ी ही सूक्ष्मतापूर्ण स्त्री की मानसिक स्थिति को उद्घाटित किया है। 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' में दो बहने हैं। रमा पश्चिमी सभ्यता में पली-बढ़ी है तो लक्ष्मी भारतीय संस्कारों में बड़ी हुई है। दोनों बहनों के माध्यम से लेखक ने यहाँ पर भारतीय और पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति की तुलना

की है। साथ ही वे भारतीय संस्कार को प्राथमिकता देते हुए लक्ष्मी के जीवन को सुखद रूप में अंत कर देते हैं। 'आदर्श दंपत्ति' नामक उपन्यास में वे स्त्री के सामाजिक असुरक्षा को उजागर करने का प्रयास करते हैं। विधवा पुनर्विवाह जैसे सुधारात्मक कार्य को पालन करने के लिए आज का समाज भी पूर्ण रूप से तैयार नहीं हुआ है। इस बात को 'सुशीला विधवा' उपन्यास के माध्यम से स्वतन्त्रता पूर्व ही अभिव्यक्त करने का बीड़ा उपन्यासकार द्वारा उठाया गया है। 'बिगड़े का सुधार' और 'सती सुखदेवी' उपन्यास में भी भारतीय संस्कृति का पक्ष लेते हुए उपन्यासकार ने प्रमुख पात्र युवक बनमाली का अङ्ग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करना तथा अपने नैतिक कर्तव्य के विपरीत कार्य करने के पीछे पश्चिमी सभ्यता को दोषी माना है। अंत में उसका उद्धार अपने ही पतिव्रता पत्नी सुखदेवी द्वारा हो पाता है। उपन्यासकार बहुद हद तक भारतीय संस्कृति व जीवन दृष्टि से प्रभावित जान पड़ते हैं इसलिए अपने उपन्यासों के जरिए पश्चिमी सभ्यता को नकारते हुए वे हिन्दू संस्कृति का पक्ष लेते दिखते हैं। उन्होंने कई सामाजिक उपन्यासों की रचना की लेकिन पारम्परिक दृष्टि रखते हुए प्राचीन आदर्श को स्थापित करने का प्रयास भी किया। इसलिए उनके उपन्यासों में नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व को नहीं स्वीकारा गया है। वे स्त्री का विकास अधिकांशत: भारतीय संस्कृति, भारतीय आचार-पद्धति में ही देखते हैं। उनके उपन्यासों के अध्ययन से यह समझा जा सकता है कि वे भारतीय परम्परा एवं आदर्श को अधिक महत्व देते हैं।

स्वतन्त्रता पूर्व के अन्य एक उपन्यासकार ठाकुर जगमोहन सिंह कृत 'श्यामा स्वप्न' (1888) में अंतर्जातीय विवाह को केंद्र में रखकर इसका निदान करने का प्रयास किया गया है। भारतीय समाज अंतर्जातीय विवाह को ग्रहण करने में अपनी रूढ़िग्रस्त मानसिकता का प्रदर्शन किस प्रकार से करता है ? उसी का चित्रण 'श्यामा स्वप्न' उपन्यास में हुआ है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कृत 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' (1899) में प्रेम कहानी का चित्रण किया गया है। इसमें एक आदर्श पत्नी का रूप अंकित है। देवबाला अपने पति के चारित्रिक स्खलन और सारे दुर्व्यवहार को भूलकर उसे अपनाती है। देवबाला को

प्रस्तुत उपन्यास में एक आदर्श एवं संयमशीलहिन्दू स्त्री के रूप में दर्शाया गया है। हरिऔध का एक और उपन्यास 'अधखिला फूल' में भी एक हिन्दू विवाहिता स्त्री का आदर्श रूप प्रस्तुत किया गया है जिसके साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक अंधविश्वासों की भी आलोचना की गई है। देवहूती नाम की विवाहिता स्त्री अपने पतिव्रता स्वभाव और निष्ठा का परिचय देती है। दोनों उपन्यासों के विषयवस्तु से यह समझा जा सकता है कि लेखक हिन्दू धर्म तथा संस्कृति के प्रति गहरी आस्था रखते हैं।

स्वतन्त्रता से पूर्व एक ऐसे उपन्यासकार हुए जिन्होंने हिन्दी उपन्यास को मजबूत आधार प्रदान किया। उपन्यास को मनोरंजन की दुनिया से ऊपर उठाकर उन्होंने वास्तविकता के धरातल पर पहुँचाया तथा सत्य से परिचित करवाया। वे हैं प्रेमचंद। 1918 ई० से प्रेमचंद ने 'सेवसादन' के माध्यम से उपन्यास जगत् में अपना कदम रखा। वे 'भारतीय समाज में विधवा की नियति, अनमेल विवाह, दहेज और स्त्री-शिक्षा के महत्व को प्रतिपादन कर अपनी रचनात्मक-यात्रा शुरू करते हैं।'[13] प्रेमचंद से पूर्व जीतने भी स्त्री-संबंधी उपन्यास रचे गए उसमें स्त्री का आदर्श रूप ही दिखाया गया है। सनातन धर्म का समर्थन करते हुए कहीं न कहीं भारतीय समाज में पुरुष के वर्चस्व को ही महत्व दिया गया है। जहाँ स्त्री पति की दासी मानी जाती है तथा पूरे परिवार की इज्जत/प्रतिष्ठा उसी के हाथ में होता है, ऐसा बचपन से ही सिखाया जाता है। यह मूलत: सामंती दृष्टि ही है जो स्त्री को वास्तव में पराधीनता के बेड़ियों से जकड़ती है, लेकिन प्रेमचंद ने उन तमाम स्त्रियों से न सिर्फ संवाद किया बल्कि उनके समस्याओं के प्रति अपनी गहरी संवेदना प्रकट की। वेश्यावृत्ति को प्रेमचंद एक सामाजिक समस्या मानते थे। प्रेमचंद का मानना था कि स्त्री-शिक्षा के अभाव में वेश्यावृति पनपता है। प्रेमचंद का मानना था कि वेश्या भी सर्वप्रथम एक मनुष्य ही है। उसके प्रति मानवीय दृष्टि के कारण ही उन्होंने वेश्या को कभी भी घृणा का पात्र नहीं माना। 'सेवासदन' में पद्मसिंह एक सामाजिक अभियान के माध्यम से प्रेमचंद यह संदेश सबके सामने रखते हैं कि "हमने वेश्याओं को

[13] मधुरेश. (2014). ***उपन्यास का विकास*** . इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ सं. 32.

नगर से बाहर रखने का प्रस्ताव इसलिए नहीं किया कि हमें कोई अधिकार नहीं। यह उनके साथ घोर अन्याय होगा। यह हमारी कुवासनाएँ, हमारे सामाजिक अत्याचार, हमारी कुप्रथाएँ हैं जिन्होंने वेश्याओं का रूप धारण कर लिया है।"[14]

इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद वेश्याओं के प्रति न सिर्फ सहानुभूति रखते थे बल्कि उनके सम्मानपूर्वक जीने के अधिकार को समझाने का भी प्रयास करते थे। प्रेमचंद की एक और खास बात यह थी कि वे स्त्री-शिक्षा पर अधिक बल दिया करते थे क्योंकि उनके अनुसार शिक्षा के अभाव में ही स्त्रियाँ, विशेषकर अविवाहित स्त्रियाँ और युवा विधवाएँ आदि वेश्यावृत्ति में जाती हैं। अनमेल विवाह, दहेज़ प्रथा तथा उससे होने वाले शोषण भी शिक्षा के अभाव में उपजने वाली प्रमुख समस्या है। इस बात को 'सेवासदन' उपन्यास के माध्यम से प्रेमचंद अभिव्यक्त करते हैं। प्रेमचंद के अन्य एक उपन्यास 'निर्मला' में भी शिक्षा के अभाव में पंद्रह वर्ष की निर्मला की शादी उससे तीन गुना अधिक बड़े मुंशी तोताराम के साथ कर दी जाती है। पिता के गुजरने के बाद धन के अभाव में निर्मला का अनमेल विवाह होता है। दूसरी ओर पिता के जेल जाने के पश्चात् धन के अभाव के कारण सुमन वेश्यावृत्ति की स्थिति में पहुँच जाती है। दोनों पात्रों के परिस्थितियों की तुलना की जाए तो सुमन और निर्मला में बहुत कुछ साम्यता दिखाई देती है। शिक्षा के अभाव में दोनों को दु:ख का सामना करना पड़ता है। दोनों उपन्यासों में दहेज के दुष्परिणामों से उपजने वाली त्रासदी का भी चित्रण किया गया है।

नेपाली उपन्यासों में नारी-अस्मिता के निरंतर परिवर्तित होते सन्दर्भ -

इसके अंतर्गत नारी-चेतना सम्बन्धी ऐतिहासिक घटनाओं का संक्षिप्त परिचय देते हुए आदिकाल से लेकर इक्कीसवीं सदी की स्त्री-चेतना सम्बन्धी आन्दोलन पर चर्चा की गई है। उपन्यासों को तत्कालीन समाज की सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्थिति बहुत हद तक प्रभावित करती है इसलिए उपन्यासों में नारी

[14] मधुरेश. (2014). ***उपन्यास का विकास***. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ सं. 36.

के परिवर्तित होते सन्दर्भ की चर्चा करने से पूर्व नेपाल के इतिहास में नारी की स्थिति का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक हो जाता है। अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्द 'फेमिनिजम' का समानान्तर अर्थ नेपाली भाषा में नारीवाद या स्त्रीवाद नाम के रूप में लिया जाता है, लेकिन यह शब्द मूलत: पाश्चात्य साहित्य के राजनितिक आन्दोलन की ओर इशारा करती है। यह विचारधारा दुनिया की आधी आबादी स्त्रियों पर होने वाले शोषण, लैंगिक भेद का विरोध करती हैं। ये पितृसत्तात्मक व्यवस्था की समाप्ति एवं महिलाओं की स्वतंत्रता के पक्षधर है।

वैसे तो नेपाल में नारीवादी चिंतन परंपरा का श्रेय पश्चिमी देशों को जाता है, लेकिन नेपाल की धरती में पैदा हुई कई नारियों ने अपने अथक प्रयासों तथा बलिदान से इस चिंतन को आगे और पल्लवित किया। प्रधानमन्त्री शमशेर चन्द्र के समय में नालापानी नामक युद्ध हुआ था जिसमें असंख्य नारियों ने अपने मातृभूमि नेपाल की रक्षा में अपना अहम् योगदान दिया था। इतिहास गवाह है कि भृकुटी, गोमिनी आदि जैसे विदुषियों ने तत्कालीन समय में देश में आए संकट को दृढ़ता के साथ सामना किया था। "तत्कालीन शासनकाल में सतीप्रथा जैसे कुप्रथा के अंत हेतु संघर्ष कर योगमाया ने सामाजिक रूपांतरण की प्रतीक पात्र बनकर नारी एवं विधवा के पक्ष में प्रभावपूर्ण जागरण अभियान चलाया।"[15]

विश्व के इतिहास द्वारा प्रमाण मिलता है कि प्राचीन काल में स्त्रियों की स्थिति सबल और सक्षम थी। वैदिक हिंदू विचारकों का मानना था कि समाज में नारी का स्थान वैदिक काल में पुरुषों के समान था। स्मृतिकारों द्वारा बाद में पुरुष की तुलना में नारी की सामाजिक भूमिका को क्रमशःसीमित कर दिया गया। ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर लिच्छिवी युग में तत्कालीन राजनीति में नारी की सहभागिता की जानकारी प्राप्त होती है। "राजा मानदेव के (वि. सं. 386) चांगूनारायण के अभिलेखों में माँ राज्यवती के आज्ञाअनुसार राज्य संचालन करने का उल्लेख मिलता है। इससे प्राचीन काल में नारी के महत्वपूर्ण स्थान

[15] तिवारी, दीपक. (2014) ***नेपाली साहित्य में नारी लेखन.*** सिलगुढ़ी : नेपाली साहित्य प्रचार समिति. पृष्ठ सं. 14.

का पता चलता है।"[16] मध्यकालीन ऐतिहासिक स्रोतों एवं तत्कालीन घटनाओं (सतीप्रथा, दासप्रथा, बालविवाह, अनमेल विवाह) के कारण बहुत हद तक नारियों के स्थान क्रमशः कमतर होता हुआ प्रतीत होता है। लेकिन ऐसे कई अवरोधों को पार करते हुए देवलदेवी, नायकदेवी, राजलदेवी, लालमती, योगमती आदि ऐतिहासिक नारियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। आधुनिक काल में भी राजकीय स्तर की चंद्रप्रभावती, राजेंद्रलक्ष्मी, राजाराजेश्वरी, ललितत्रिपुरासुंदरी आदि की भूमिका भी उल्लेखनीय है। इसी प्रकार इंद्रेणी थापा एवं सावित्री देवी आदि के प्रेरणा से नालापानी एवं कांगड़ा युद्ध लड़ा गया था मूलभूत अधिकारों के खातिर इन वीरांगनाओं द्वारा राष्ट्र, राष्ट्रीयता एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंध के बारे में लिए गए निर्णय को इतिहास में स्वर्ण अक्षर से लिखा गया है। इसी प्रकार विश्व में भी अतिप्राचीन स्रोतों से यह पता चलता है कि तत्कालीन समाज में मातृसत्तात्मक व्यवस्था थी, जिसके कारण नारियों को उच्च सम्मान दिया गया था।

वैदिक साहित्य में विश्ववारा, शाश्वती, रोमाशा, ,गांधारी, गोदा, लोपामुद्रा जैसे नारियों ने ऋग्वेद की रचना को समझकर हिन्दी में मीराबाई जैसी नारी सृष्टा ने कृष्ण भक्ति आधारित भक्ति भजनों की रचना की, उसी के आधार पर नेपाली कविता के क्षेत्र में नारी लेखन का भी प्रारंभिक स्थिति माना जाता है। प्राथमिक एवं मध्यकालीन साहित्य में नेपाली नारी संस्थाओं ने भी भक्ति पर कविता रच कर उसके माध्यम से अपना लेख आरंभ किया। इस दृष्टि से नेपाली कविताओं में नारी लेखन भक्ति की कविताओं से शुरू होता है। नेपाली कविताओं में नारी लेखन की प्रारंभिक चरण को देखा जाए तो योगमाया, पवन कुमारी देवी, मंगला देवी जैसी कवियत्री ने ही भक्ति पर कविता एवं भजन लिखकर तत्कालीन सामाजिक अंधविश्वास का विरोध किया।

[16] ओझा, मीना ***नेपालको महिला आन्दोलनको इतिहास र वर्तमान अवस्था.***

नेपाल के इतिहास में योगमाया एक ऐसा नाम है, जो नेपाली सामाजिक क्रांति की प्रमुख अग्रणी मानी जाती हैं। समाज में प्रचलित कुसंस्कार एवं कुरीतियों के खिलाफ योगमाया तत्कालीन शासन से विद्रोह करती है। नारी के सम्मान से जीने के अधिकार की रक्षा हेतु स्वयं के प्राण तक का न्योछावर करती है। इन्होंने सामाजिक रूप से कमजोर तथा कथित दलित वर्ग, शोषित वर्ग एवं महिलाओं के खिलाफ होने वाले अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाया तथा धर्म तथा अंधविश्वास में जकड़े मान्यता का पुरजोर विरोध किया।

योगमाया न्योपाने का जन्म वि. सं. 1917 में भोजपुर जिला के एक गाँव में हुआ था। इनका विवाह पांच वर्ष की आयु में रामहरि कोइराला नमक व्यक्ति के साथ हुआ था तथा दो वर्ष के उपरांत बाल विधवा हो गयी थीं। उस समय दूसरा विवाह या पुनर्विवाह को अच्छा नहीं समझा जाता था, लेकिन सत्रह वर्ष की आयु में योगमाया ने दूसरा विवाह कर तत्कालीन समाज में प्रचलित कुरीतियों को चुनौती दी। परंतु तत्कालीन नेपाली समाज उनके इस कृत्य को नहीं सह पाया क्योंकि समाज में ऐसे नारियों को चरित्रहीन समझा जाता था एवं उनका अपमान किया जाता था। योगमाया के साथ भी ऐसा ही हुआ। उनके द्वारा किए गए दूसरे विवाह को तत्कालीन समाज में सहज रूप से नहीं स्वीकारा गया। उनका सामाजिक रूप से अपमान, तिरस्कार किया गया। जिसके कारण उन्हें अनेक त्रासदियों का सामना करना पड़ा। तत्कालीन समाज में स्त्रियों को पढ़ने का अधिकार नहीं था। उनके शिक्षा ग्रहण तथा विद्यालय जाने जैसे मूलभूत अधिकार को पाप समझा जाता था। इस अवधारणा को भी खंडन करते हुए योगमाया ने सर्वप्रथम एक साक्षर महिला के रूप में अपने आप को स्थापित किया। बाद में वे एक विख्यात आशुकवि के रूप में प्रचलित हुईं। उन्होंने अपनी कविताओं तथा भजनों के माध्यम से जन चेतना को जगाने का प्रयास किया। उनके रचनाओं में विशेषकर शासक वर्ग द्वारा किए जाने वाले अत्याचार एवं तत्कालीन समाज में महिला विरोधी धार्मिक नीति का विरोध होता था और ऐसा करने वाली वह अकेली इंसान थी।

दुनिया में समान अधिकार रखने वाले नारी-पुरुष, एक-दूसरे के परीपूरक और समपूरक माने जाते हैं। दोनों एक ही रथ के दो पहिए माने जाते हैं, एक पत्थर है तो दूसरा मिट्टी है, दोनों एक-दूसरे के सहारे ही मजबूत बनते हैं। दोनों का एक-दूसरे पर भरोसा है। बालकृष्ण स्त्री के समान अधिकार की अभिव्यक्ति इस प्रकार देते हैं – "नारी नरको जन्म दात्री हो/नर नारीको सहयात्री हो।"[17] जैसा कि विदित है नारी जगत् जननी है, घर और समाज का एक अभिन्न अंग है। प्रेम और करुणा की जो गहराई नारी में मिलता है वह पुरुष में प्राय: नहीं देखा जाता है। दार्शनिक नीत्शे इसके संबंध में कहते हैं कि बुद्ध और ईसा मसीह में नारीत्व के गुण प्रचुर मात्रा में होने का कारण ही उनके जीवन में नारी गुण का प्रभाव पड़ा जिससे वे प्रेम, दया और करूणा को संसार भर में प्रचार-प्रसार करने में सफल हुए।

स्त्रियों की सामाजिक स्थिति -

नेपाल की बात करें तो नेपाल आर्थिक रूप से कमजोर और अल्प विकसित देश है। इसके बावजूद सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आधार पर देखें तो नेपाल अपने पड़ोसी देशों की तुलना में स्त्रियों के प्रति कुछ हद तक व्यवहार अच्छा है। इसका यह अर्थ नहीं कि उनके ऊपर अत्याचार, घरेलु हिंसा, सामाजिक अत्याचार नहीं होते। अत: यह कहना अनुचित न होगा कि नेपाल में नारी के विकास तथा जागरण के कार्य को उतना चुनौतीपूर्णनहीं माना जाता जितना कि आर्थिक चुनौती को। नेपाल में आर्थिक चुनौती एक जटिल समस्या के रूप में हमारे सामने विद्यमान है। इसलिए हम कह सकते हैं कि आर्थिक रुप से कमजोर होने के कारण वहाँ की स्त्रियों का संघर्ष अन्य देशों से भिन्न हो जाता है। हाल में महिलाओं के ऊपर होने वाले सामाजिक विभेद के अंत के लिए सर्वप्रथम वि. सं. 1977 में सामाजिक मान्यता प्राप्त सतीप्रथा को गैरकानूनी घोषित किया गया। ऐसे आंदोलन में योगमाया, मंगला देवी, साधना प्रधान, सहाना प्रधान, तारा देवी जैसे प्रबुद्ध महिलाओं ने विशेष भूमिका निभाई। यह सत्य है कि विश्व के सभी

[17] तिवारी, दीपक. (2014) ***नेपाली साहित्य में नारी लेखन.*** सिलगुढ़ी : नेपाली साहित्य प्रचार समिति. पृष्ठ सं. 21.

देशों में स्त्री के विकास एवं जागृति का समान रुप नहीं है। विकासशील देशों के मुकाबले नेपाल में अभी भी महिला विकास और जागरण की अवस्था धीमे गति से चल रहा है। बावजूद निरंतर चलने की प्रक्रिया से संतोष किया जा सकता है।

3.1 स्वतन्त्रता के पश्चात् का स्त्री लेखन :-

हिन्दी उपन्यासों में स्त्री चेतना को ध्यान में रखते हुए जैनेन्द्र कुमार की रचनाओं से स्वतन्त्रता पश्चात् के स्त्री लेखन की पूर्वपीठिका का आरम्भ माना जा सकता है। जैनेन्द्र कुमार ने स्वतन्त्रता पूर्व भी कई उपन्यास रचे हैं एवं स्वतन्त्रता पश्चात् भी। सन् 1929 में 'परख' के साथ उपन्यास यात्रा आरंभ कर 1985 में 'दशार्क' से अपनी लेखनी को बिराम देते हैं। जैनेन्द्र एक ऐसे उपन्यासकार हुए जो स्त्री के मन:स्थिति का विश्लेषण करते हुए उपन्यास रचते हैं। एक युवती के जीवन में घटित द्वन्द्वों और आत्मसंघर्षों को केंद्र में रखकर भारतीय समाज के रूढ़िवादी सोच को उजागर करने का प्रयास किया है। जैनेन्द्र कुमार के लगभग सभी उपन्यासों में स्त्री के अंतसचेतना का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। जैनेन्द्र की नारी पात्र समाज में प्रचलित मूल्य परंपरा पर प्रश्न करते हैं। 'त्यागपत्र' की मृणाल के लिए समाज उससे सतीत्व की अपेक्षा कर रही थी, उसे एक आदर्श पत्नी के रूप में देखना चाह रही थी, लेकिन मृणाल अपने स्त्रीत्व को महत्व देना चाहती थी इसलिए बिना प्रतिवाद किए किसी के प्रति किसी भी प्रकार की कटुता व्यक्त नहीं करती।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' भी प्रेमचंद युग की महत्वपूर्ण समस्याओं को ही केंद्र में रखकर उपन्यास रचते हैं। 'चंद हसीनों के खतूत' (1927) उनका उपन्यास संसार प्रारम्भ होते हुए 'दिल्ली का दलाल' (1927), 'बधुवा की बेटी' (1928), 'शराबी' (1930), 'सरकार तुम्हारी आँखों में' (1930), 'कांटा' (1937), 'कढ़ी में कोयला' (1955), 'फागुन के दिन चार' (1960) आदि उपन्यास तक आकर यह यात्रा समाप्त होती है। उनके उपन्यास की विषयवस्तु थे – वेश्यावृत्ति, साम्प्रदायिक तथा स्त्री की नियति को

गहरी संवेदना के साथ अंकन। 'दिल्ली का दलाल' उपन्यास देह व्यापार जैसे समस्याओं से सम्बन्धित है। उपन्यासकार इस उपन्यास के माध्यम से यह कहना चाहते हैं कि लड़कियाँ अशिक्षित होने के कारण ही आज वे अंधविश्वास को ग्रहण कर रहे हैं तथा वेश्यावृति में जाने के लिए मजबूरी में कदम उठा रहे हैं। स्त्री किसी भी धर्म, जाति या संप्रदाय से क्यों न हो यदि वह देह व्यापार की शिकार होती है तो इस क्षेत्र में वही सबसे बड़ी दोषी व पापी मानी जाती है। 'दिल्ली का दलाल' में उपन्यासकार ने प्रखरता के साथ उन पाखंडों को कटघरे मे रखा है जिसे वे इस देह व्यापार के नरक में फँसे युवतियों का वास्तविक दोषी मानते हैं। "'दिल्ली का दलाल' में युवतियों की इस हालत के लिए जहाँ समाज के ढोंगी और पाखंडी नेता जिम्मेदार हैं, वहीं इन युवतियों के परिवार जनों की भूमिका भी कम निंदनीय नहीं है। लड़की को अशिक्षित और घर की चहारदीवारी में बंद रखकर और क्या आशा की जा सकती है ? उनका अज्ञान और अंधविश्वास ही उनका सबसे बड़ा शत्रु है और पुरुष वर्चस्व का हिमायती समाज इस स्थिति को ही अपने लिए लाभकारी मानकर इसे बनाए रखना चाहता है।"[18]

प्रेमचंद के समय मे ही स्त्री-शिक्षा की नींव पड़ी थी जिसने स्त्री की चेतना को जगाया। इसी काल में बौद्धिक दृष्टि से स्त्री-पुरुष के समानता का महत्व बढ़ा। इसलिए इस काल के उपन्यासों में भी नारी के स्वतंत्र चेतना की छवि स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इस काल के प्रमुख उपन्यासकार हैं – जयशंकर प्रसाद, शिवपुजन सहाय, विश्वम्भरनाथ कौशिक, जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी आदि जिन्होंने स्त्री-अस्मिता के विभिन्न आयामों को अपने उपन्यासों के माध्यमों से चित्रण प्रस्तुत किया है।

प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यास परम्परा में ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण जिस प्रकार से किया, उनकी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए हिन्दी में नागार्जुन ने ग्रामीण जीवन का चित्रण प्रस्तुत किया। 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में नारी के समस्याओं का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास की नायिका विधवा है।

[18] मधुरेश. (2014). ***उपन्यास का विकास*** .इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ सं. 95.

उसका नाम गौरी है। 'रतिनाथ की चाची' उर्फ गौरी को जीवन भर तिरस्कृत होकर जीवन जीना पड़ता है। निर्दोष होते हुए भी कई अवहेलना को सहना पड़ता है। विधवा हो जाने के कारण वह इस क्रूर समाज में असहाय महसूस करती है जिसका फायदा उसी का देवर जयनाथ उठाता है। उसका पूरा जीवन अपने को निर्दोष साबित करने में ही बीतता है और अंत में वह बीमार होकर मर जाती है। रतिनाथ ही एक ऐसा व्यक्ति होता है जो पूरे प्रकरण में अपने चाची को समझता है तथा उसकी सेवा करता है। इस उपन्यास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उपन्यासकार एक विधवा स्त्री के माध्यम से उसके जीवन की त्रासदी को न सिर्फ उजागर करते हैं बल्कि तत्कालीन समाज के रहन-सहन, रीति-रिवाज, छूआ-छूत तथा बहिष्कार करने जैसे अमानवीय प्रथा के पीछे छिपे स्वार्थ को भी उजागर करने का प्रयास करते हैं।

3.1.1 हिन्दी उपन्यास और स्त्री लेखन -

'वचन के मोल' उपन्यास की रचियता उषादेवी मित्रा हिन्दी की प्रथम महिला उपन्यासकार हैं। इस उपन्यास की कजरी तथा उपन्यास 'पिया' की नीलिमा नारी के प्रतिनिधि के रूप में प्रखर पात्र हैं जिन्होंने विषम परिस्थितियों में भी हार नहीं माना। इस काल की नारी से संबंधित प्रमुख समस्या थी वेश्या समस्या। इस समस्या पर भी तत्कालीन उपन्यासकारों का ध्यान गया है। 'जीवन की मुस्कान' उपन्यास की पूरबी एक संघर्षशील नारी है। वह अपने व्यक्तिगत समस्याओं के कारण वेश्या होने को मजबूर हो जाती है। उसका जन्म भी वेश्यालय में हुआ होता है लेकिन उसे अपने होने का महत्व बखूबी पता है। वह एक लड़के को पसंद करती है जिसपर एक सेठ द्वारा आपत्ति जताने पर वह इस प्रकार आक्रोश व्यक्त करती है – "देह मेरी अवश्य बिकी हुई है सेठ जी, दुनिया से यह बात छिपी नहीं है। परंतु मेरी आत्मा मेरी ही है मेरी रहेगी। उसे मैं नहीं बेच सकती"[19]

[19] गव्हाड़े, डॉ. भगवान. (2011). ***कमलेश्वर की उपन्यासों में नारी***. कानपुर: समता प्रकाशन. पृष्ठ सं.61.

पूरबी के व्यक्तित्व से यह प्रतीत होता है कि वह स्त्री होने का वास्तविक अर्थ समझती थी, उसमें स्त्री-चेतना नामक दीपक कहीं न कहीं जल रहा था जिसे किसी के दबाव में रहना मंजूर नहीं था। वह स्वतंत्र व्यक्तित्व की तरह जीवन जीने का चाह रखती थी। अतः यह कहने में कोई दुविधा नहीं होनी चाहिए कि वह स्त्री-चेतना की जीती-जागती प्रतीक थी।

उषा देवी मित्रा की पिया में कविता के कहने पर कि तुम शादी कर लो पिया, पिया कहती है – ".........वेश्या का जन्म कहीं बाजार में नहीं होता; हम स्त्रियों के अंतर ही में हुआ करता है काकू। बाजार में तो उसके व्यवसाय से हमारी भेंट होती है, वही व्यवसाय, जिसको हम जी खोल कर निंदा करते हैं – समालोचना करते हैं, परंतु हमारे मन में जन्म-जन्मांतर से जिस वेश्या का जन्म होता चला आ रहा है, उसको खबर भी रखते हैं हम।"[20]

स्वतन्त्रता के पश्चात् ऐसे उपन्यास लिखे जा रहे थे जिसमें नारी राजनीतिक गतिविधियों में भी हिस्सा ले रही थीं। साथ ही उनमें स्वतंत्र दृष्टि, विवाह के प्रति स्वतंत्र विचार आदि विकसित हो रही थी। स्वतन्त्रता के पश्चात् के स्त्री-लेखन में यही अंतर था कि वे स्वतन्त्रता और नारी अस्मिता की पहल कर रहे थे। इस समय उपन्यास में भी कई विधाओं का जन्म हो रहा था। यह स्त्री-उत्थान एवं स्वाधीनता का दौर था। इस समय की प्रमुख लेखिकाएँ हैं – उषा देवी मित्रा, कमला चौधरी, सत्यवती मालिक, शिवरानी देवी, महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि। इनके रचनाओं में स्त्रियों का व्यक्तित्व पहले की अपेक्षा अधिक सबल, परिपक्व एवं बुद्धिसम्पन्न है। प्रेम और त्याग का चित्रण इस काल में अत्यधिक होते थे। उषा देवी मित्रा द्वारा रचित कृति 'पथचारी' की बात करें तो इसकी पात्र बांसुरी नितीन की मृत्यु शय्या पर कहती हैं – "और उसके अंतराल में कभी झांककर देखने की चेष्टा की थी तुमने.......हां.... यदि देखने की

[20] माजि, दीपाविन्ता. (2017). ***हिन्दी उपन्यास और स्त्रीवाद***. दिल्ली : ईशा ज्ञानदीप. पृष्ठ सं. 72.

चेष्टा करते तो देख पाते। उसके अंतराल में बेकार देश की नारी अपने मातृत्व को किस प्रकार से बांहों में जकड़ी बैठी है।"[21]

स्वतन्त्रता के आस-पास उपन्यास साहित्य में नारी के यथार्थ दुर्दशा का चित्रण के साथ-साथ स्वतंत्र व्यक्तित्व का भी निर्माण हो सका है। वस्तुत: इसमें आधुनिक स्त्री की अस्मिता का संघर्ष तथा पुरानी स्त्री की अस्मिता का संघर्ष देखा गया है। इस काल के महिला उपन्यासकारों में जिसका संबंध स्वाधीनता संग्राम से था तथा जिसका संबंध सामान्य गृहणी से था। उनके लेखनी में भी अंतर स्पष्ट रूप से देखा गया है। स्वाधीनता संग्राम से संबंधित लेखिकाओं के रचनाओं में स्त्री को आधुनिक अस्मिता का पक्षधर दिखाया गया है एवं सामान्य गृहणी से संबंधित नारियों के रचनाओं में परंपरावादी स्त्री व्यक्तित्व को गढ़ा गया है।

चित्रा मुद्गल द्वारा रचित उपन्यास 'आँवा' उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने समाज के उन पुरुषों की अनियंत्रित और कुदृष्टि को उजागर करने का जोखिम उठाया है। पुरुष वर्ग में केवल अपरिचित लोग नहीं बल्कि नाते-रिश्तेदार भी सम्मिलित हैं जिसके मन में केवल काम पिपासा भरा है तथा जो कुँवारी लड़कियों के जिश्म की तलाश में हरपल रहते हैं। जिन स्त्री चरित्रों को लेकर उपन्यास अपनी शाखाएँ मजबूत करती हुई नजर आती हैं। उनमें नमिता, स्मिता, मजदूर बस्ती की किशोरी बाई, उनकी बेटी सुनन्दा, हैदराबाद में रहने वाली निलम्मा आदि हैं। इन पात्रों के माध्यम से उपन्यास को तार्किक दृष्टिकोण प्रदान करने में सहायता मिली है। इस उपन्यास के संदर्भ में आलोचक विजय बहादुर सिंह अपने पुस्तक उपन्यास : समय और संवेदना में कहते हैं – "सामाजिक सच्चाईयों के भयावह यथार्थ और आकड़े इस बात के गवाह है कि संस्कृति (?) के राज्य में सबसे ज्यादा दलित और उत्पीड़ित स्त्री ही है और कभी वह धरती में समा जाने को मजबूर हुई तो कभी सभ्यता के निर्लज्ज दरबारों में नंगी की जाती

[21] माजि, दीपाविन्ता. (2017). ***हिन्दी उपन्यास और स्त्रीवाद***. दिल्ली : ईशा ज्ञानदीप. पृष्ठ सं. 70.

रही है। यह सिलसिला अभी खत्म नहीं हो सका है। कूड़े-कचरे या घास-फूस की तरह जला देना, गए गुजरे सामान की तरह औने-पौने दाम बेच देना, कौमार्य, शील, पतिव्रत और सतीत्व के तरह-तरह के मोहपाशों में छद्म महिमा मंडन कर उसकी नैसर्गिक नागरिकता को बरगलाना अभी भी जारी है।"[22]

उपन्यास में सुनंदा एक अविवाहित माँ है। वह किसी भी परिस्थिति में हार नहीं मानती, इस उपन्यास में उसका संघर्ष बहुत अधिक है। सुनंदा अपने प्रेमी सुहैल से विवाह पूर्व ही गर्भवती हो जाती है परंतु सुहैल उसे अपनाने से पहले धर्म परिवर्तन करने की बात करता है जो सुनंदा को ग्राह्य नहीं है। सुनंदा के लिए यह अपमान है, उसके प्यार का अपमान है। अंतत: वह बिना विवाह कर एक प्यारी सी बेटी को जन्म देती है। ये सब महिलाएँ एक-दूसरे को हिम्मत देते हुए अपने-अपने हिस्से का संघर्ष करती हैं। उपन्यास में निलम्मा एक विधवा स्त्री है जो अपने जीवन के तमाम संघर्षों एवं चुनौतियों को मात देते हुए आगे बढ़ती है। उपन्यास के अंत में नमिता जब संजय कनोई का कोख में पलता हुआ गर्भ गिरवाती है तो वह जाने के लिए एक ही रास्ता चुनती है वह है किशोरी बाई की खोली।

स्त्री-चेतना का जीवंत उदाहरण हमें चित्रा मुद्गल के इस उपन्यास में प्रखर रूप से देखने को मिलता है। नमिता अपने स्वाभिमान की रक्षा हेतु वापस संजय कनोई या कामगार अघाड़ी के कार्यकर्ता पवार के घर नहीं लौटती, बल्कि वह सुनंदा जैसे आत्मचेतस एवं निर्दयी महिला के घर जाती है जहाँ उसकी माँ सुनंदा के बेटी के साथ रहती है। नमिता को यह एहसास है कि संजय कनोई के घर में उसके स्वाभिमान का गला घोट चुका है। अत: वह अपने लिए तो कतई उस घर में दोबारा रहने के लिए नहीं जाएगी। उपन्यासकार ने इस उपन्यास में अंजना वासवानी (बाबा ज्वेलर्स की मालकिन) जैसे महिला के मानसिकता पर एतराज जताया है जो पुरुष वर्चस्व के आड़ में की जाने वाली घृणित कार्यों का समर्थन करती है। स्त्री को नव-बाजारवाद में महँगी वस्तु की तरह बिकाऊ बनाने वाला उत्तर पूंजीवाद या फिर

[22] सिंह, विजय बहादुर (2007). ***उपन्यास : समय और संवेदना***. नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 80.

पुराने सामंतवाद लेखिका का रवैया इन दोनों के प्रति बेहद शख्त और असहमतिपूर्ण है। इन जगहों या सभ्यता के ठिकानों पर स्त्री की शायद ही कोई स्वाधीनता बचती हो।

यह उपन्यास एक ऐसी बहस खड़ी करता है जो स्त्री जीवन के स्वाभिमान और स्वाधीनता के प्रश्नों से जुड़ी है। पुरुष प्रधान समाज ने स्त्रियों को हमेशा अपना जागीर माना है। इस उपन्यास के बहाने पुरुषवादी मानसिकता पर न सिर्फ प्रहार हो पाया है बल्कि इसके माध्यम से उपन्यासकार एक बेहतर समाज की मांग करता है जिसमें स्त्री-पुरुष के बीच बराबरी हो।

'अर्धनारीश्वर' उपन्यास विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखा गया उपन्यास है। इस उपन्यास का विषय मुख्य रूप से बलात्कार से संबंधित है। बलात्कार से पीड़ित नारियों की वास्तविक कथाओं पर आधारित यह उपन्यास अत्यंत मार्मिक है। विशेष रूप से उन नारियों की कहानी है जो मुक्ति के लिए छटपटाती है। अर्धनारीश्वर का वास्तविक अर्थ है - नर और नारी की समान सहभागिता। अर्थात् दोनों को अपने-अपने दुर्बलताओं को स्वीकार कर एक-दूसरे की ताकत बनकर समाज के संघर्षों का सामना करना चाहिए। यह उपन्यास नारी को सशक्तिकरण, सबलीकरण तथा स्वयं के अस्तित्व की पहचान कराना सिखाती है। उपन्यासकार सम्पूर्ण समाज तथा समाज के मानसिकता पर व्यंग्य करते हुए नारी की स्थिति पर प्रकाश डालने का प्रयास करते हैं।

कृष्णा सोबती एक सफल एवं प्रभावी उपन्यासकार हैं। उनके संदर्भ में बलराज सिंह लिखते हैं – "नए उपन्यासकारों में कृष्णा सोबती का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं है। लेखिकाओं में सबसे अधिक चर्चित और विवादास्पद व्यक्तित्व उन्हीं का है। अपनी रचनाओं में जिस साहस, निर्भीकता और स्पष्टवादिता का परिचय दिया है वह प्रशंसनीय है।"[23] लेखिका ने अपने जीवन काल में बहुत ही कम उपन्यास लिखे हैं लेकिन एक-एक उपन्यास एक-एक जीवन के समान अभिव्यक्त होने में सफल हुआ है।

[23] किर्ते, डॉ. सविता चोखोबा. (2013). ***हिंदी उपन्यासों का मूल्यपरक विवेचन***. कानपुर: विनय प्रकाशन. पृष्ठ सं. 100.

'वे', 'डार से बिछुड़ी', 'तीन पहाड़', 'मित्रो मरजानी', 'सूरजमुखी अंधेरे के' एवं 'दिलो दानिश' जैसे उपन्यास लिखकर न सिर्फ अपनी प्रतिभा का परिचय देती हैं, बल्कि अपने शब्दों के माध्यम से दर्द, वास्तविकता, प्रेम आदि भाव को औरों के साथ भी जोड़ देती हैं।

कृष्णा सोबती द्वारा लिखा गया उपन्यास 'सूरजमुखी अंधेरी की' में एक ऐसी लड़की का चरित्र गढ़ा गया है जिसके साथ बचपन में बलात्कार हुआ होता है। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार द्वारा समाज के जड़ मानसिकता एवं रूढ़िगत परम्पराओं में जकड़ी हुई युवा स्त्री के दर्द तथा छटपटाहट को उभारने का प्रयास किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में स्त्री-स्वाधीनता और नारी मुक्ति के प्रश्न को अपनी धरती और मिट्टी से जोड़कर देखा है और समूचे सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उसकी अनिवार्यता को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

राजेन्द्र यादव की नजरों में कृष्णा सोबती एक परफ़ैक्शनिस्ट हैं। उनका कहना है कि वे एक-एक शब्द, वाक्य, कॉमा, फुलस्टाप पर बहुत परिश्रम करती हैं। "ऊपर से देखने में उनकी हर रचना के बीच चाहे जितना अंतर और अंतराल लगे, लेकिन ज़रा गहराई में जाकर देखने पर मुझे लगता है कि उनके पास एक निश्चित थीम है जो हर रचना में विकसित हुई है, आगे बढ़ी है।"[24] कृष्णा सोबती स्वयं स्वतंत्र व्यक्तित्व जीती थीं तथा बेझिझक अपनी बाते सबके सामने रखती थीं। उनके पात्रों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि वे न तो 'डार से बिछुड़ी' की पाशो जैसी थीं और न ही जिंदगीनामा की शाहनी जैसी, जो सब कुछ चुपचाप बर्दाश्त कर जाए, वे मन्नों या जया जैसी भी नहीं थीं जो सपनों और भावनाओं में खोयी रहे तथा आत्महत्या करने में ही अपना समाधान माने। वे तो मित्रों की भाँति निर्भीक व बेबाक थीं जो संस्कारी नारी (त्यागमयी नारी) नामक बेड़ियों को तोड़ना चाहती थीं। "मुझे मित्रों हिन्दी की अकेली ऐसी कथा-नारी लगती है जो सदियों से नारी पर लादे गए संस्कारों-सम्बन्धों, सुंदर-सुंदर उपमाओं को

[24] यादव, राजेन्द्र. (2014). ***आदमी के निगाह में औरत***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 127.

ललकारती, मुँह चिढ़ाती और उन्हें झुठलाते हुई अपनी मूलभूत जरूरत और जबान के साथ हमारे सामने आ खड़ी हुई हो, छिन्नमस्ता काली की तरह और मानों हम उसकी तेज को बर्दाश्त नहीं कर पाते..."[25]

हिंदी उपन्यास अपने घटनाप्रधान आरंभिक बिंदु से चलकर प्रेमचंद के समाधानपरक कथा धारा से होते हुए जैनेंद्र और अज्ञेय के विश्लेषण के कसौटी से उतरकर आज जिस व्यंजकता की ओर बढ़ा है। उसमें 'राग दरबारी' का राजनैतिक व्यंग्य, 'आपका बंटी' में अवचेतन और चेतन का संघर्ष दिखाते हुए 'कठगुलाब' तक पहुँचा है। कठगुलाब एक प्रतीक है जो ठोस बीज से उत्पन्न होकर तुरंत बिखर जाने वाले पंखुड़ियों का एक पीला फूल है। जो बीज रूप में सुरक्षित रहकर भी पुस्तक के रूप में आरक्षित है। यह उपन्यास के नारी और पुरुष के एकालाप पर आधारित है।

उपन्यास की तीनों नारियाँ कई प्रकार से एक-दूसरे से जुड़ी हुई है और जिन परिस्थितियों का सामना करते हैं वे भी प्राय एक जैसे हैं किंतु तीनों नारियों की प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न है। किसी भी उपन्यास में चरित्रों का सीमित संख्या में होना लेखक या लेखिका को यह अवसर प्रदान करता है कि वह उस चरित्र विशेष को अधिक रंगों के वर्णक्रम में दर्शकों के सामने ला सके। इसलिए मृदुला गर्ग का यह उपन्यास मुख्यतः चरित्र प्रधान भी है और परिस्थितियों के व्यापक चित्रण में सफल भी है।

इस उपन्यास में मनोविज्ञान का प्रयोग केवल इतना है कि तीनों नारियों के व्यक्तित्व को इसके द्वारा अलग-अलग प्रदर्शित किया जा सका है। स्मिता एक ऐसा चरित्र है जो प्रथमत: अपने आप को पुरुष के अहमवादी प्रयोग का उपकरण बनाने की स्वीकृति देती है, किंतु शीघ्र ही अपनी स्थिति के प्रति जागरूक होकर पुरुष के बालात् घेरे से बाहर निकलने की सामर्थ्य भी रखती है। वह शीघ्र समझ जाती है कि जार्वेश अपने आप को कितना भी आधुनिक, निर्मुक्त और कुंठाविहीन पुरुष के रूप में दिखाना चाहे वास्तव में वह है वही पुरुषप्रधान मन:स्थिति का प्रतिनिधि। स्मिता एक जागरूक, सुरुचिपूर्ण, अध्ययनशील,

[25] यादव, राजेन्द्र. (2014). ***आदमी के निगाह में औरत***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 129.

उद्देश्यपूर्वक जीवन जीने के लिए लालायित स्त्री है। इसलिए वह पराधीनता स्वीकार करने के लिए न उत्सुक है और न ही उपयुक्त। उसकी जीजिविषा भी कभी-कभी क्षण अवश्य पड़ जाती है, किंतु अंत तक वह संज्ञाहीन नहीं होती। विरोधों, कठिनाइयों का सामना करते हुए भी अंत तक वह सामाजिक रचना के यज्ञ में असीमा के साथ मिलकर अपना रचनात्मक योगदान करती रहती है। कई स्थानों पर जब वह परिस्थितियों से परेशान होकर लड़ते-लड़ते थक जाती है तो अपने आप को बचाते हुए वह केवल ऊपरी स्तर पर तैरने की क्षमता भी रखती है। जार्वेश जब यह स्थापित करने की चेष्टा करता है कि स्मिता मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दुर्बल है तब भी वह अपने आंतरिक परिवेश की सच्ची प्रतिक्रिया को दबाकर जार्वेश के घेरे को व्यर्थ कर देती है।

स्मिता और नमिता दोनों बहनों में एक अंतर है। नमिता एक सरल पारिवारिक स्त्री है। जीवन की बैलगाड़ी है। सीधे-सीधे रास्ते पर चलने की इच्छा ही उसके जीवन का एकमात्र आधार है। स्मिता को वह अपना दायित्व समझती है, लेकिन परिस्थितियों के बवंडर में इतनी कठिनाइयाँ आती हैं कि वह अपने संबंधों को समझने में असमर्थ रह जाती है। इसलिए इस परिवार से छिटककर स्मिता किसी संस्था से जुड़ने लगती है कि नमिता चाहते हुए भी उसे रोक नहीं पाती है।

उपन्यासकार राजेन्द्र यादव के प्रमुख उपन्यास हैं 'प्रेत बोलते हैं', 'कुलटा' 'उखड़े हुए लोग' और 'अनदेखे अनजाने पुल' आदि उपन्यास व्यक्तिपरक हैं। उपन्यासकार ने व्यक्ति के बनते-बिगड़ते सम्बन्धों का सुन्दर व यथार्थ चित्रण किया है। एक व्यक्ति समाज के नियमों के चलते उसमें कैद होकर किस प्रकार रह जाता है, जिससे उसकी इच्छाओं और कामना का दमन हो जाता है। समाज के नियमों को तोड़कर व्यक्ति जब अपने बारे में सोचने लगता है, तो वह अपने आसपास की दुनिया भुलाकर अपनी दुनिया में मस्त होने लगता है तब कहीं कुछ बिगड़ता-बनता दिखाई देता है। इसी का चित्रण राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में हुआ है। 'उखड़े हुए लोग' के शरद और जया प्रेम विवाह करने हेतु घर से भाग जाते हैं जो

कि समाज में उपेक्षित है। शरद अपने घर से निकलने की सूचना उमा दीदी को इस प्रकार देता है – "दीदी, हमें गर्व है कि हम समाज को हवाई आदर्शों और जबानी बहस-मुबाहिसों से नहीं, सक्रिय रूप से बदलने निकले हैं।"[26] जिससे यह प्रतीत होता है कि लेखक यहाँ पर एक ऐसे प्रेम का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जो एक-दूसरे को अपने-अपने शर्तों पर जीने की अनुमति देता है। देशबंधु नामक नेता भैया के यहाँ आश्रय लेकर किसी तरह साथ रहने के बाद इस प्रेमी जोड़े को अंततः समाज में उखड़ा हुआ जीवन बिताने के लिए बाध्य होना पड़ता है। देशबंधु का चरित्र समाज के सामने एक उदार, संत एवं देश प्रेमी के रूप में रहता है लेकिन वास्तव में ऐसा कुछ नहीं होता। बल्कि उसके झूठे चरित्र के कारण ही जया और शरद का काफी शोषण होता है।

उषा प्रियवंदा द्वारा रचित 'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास की नायिका विदेश जाकर जड़ता के बोझ तले दब जाती है। अपने में कुछ न बदलने की अनुभूति उसके मन पर हावी रह्ता है। राधिका एक स्वतंत्र व्यक्तित्व वाली आधुनिक स्त्री है। वह आधुनिक होकर भी परंपरागत नारी संस्कारों से मुक्त नहीं हो है। पितृ संरक्षण को केंद्र में रखकर प्रस्तुत उपन्यास को रचा गया है। वास्तव में राधिका पिता जैसा प्यार ढूढ़ती है जो अंत में अलगाव व अकेलेपन की शिकार होती है। समयागति में बहता हुआ युवामन एक तरफ़ आधुनिक संस्कारों के प्रति उन्मुख है, तो वही दूसरी और अपने परिवेशगत संस्कारों में इतना जकड़ा हुआ है कि उससे उभर नहीं सका है। दिन-प्रतिदिन कुंठित होता जा रहा है। पिता का विरोध कर वह डैन से संबंध जोड़ती है किन्तु डैन उसका साथ निभा नहीं पाता। वह अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहता हैकि राधिका तुम मुझमें अपना पिता ढूंढ रही थी, वही पिता जिसे दुःख देने के लिए तुम मेरे साथ चली आई थी। पर मैं तुम्हारे पिता की जगह स्थापित होना नहीं चाहता। मैं तो स्वतंत्र व्यक्ति हूँ। मैं तुममें अपना खोया

[26] मधुरेश. (2016). ***हिन्दी उपन्यास का विकास***. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ सं. 184.

यौवन ढूंढ रहा था। अपनी पत्नी को छोड़कर चले जाने की कड़वाहट भूलना चाहता था। पर शायद हम दोनों ही सफल नहीं हुए।

ममता कालिया कृत 'बेघर' उपन्यास में आधुनिकता और संस्कारबद्धता के बीच उत्पन्न तनाव को उजागर किया गया है। इसमें युवा मानस की संभोग संबंधी मान्यताओं को भी उभारा गया है। उपन्यास का नायक परमजीत है और वह निम्न मध्यवर्गीय समाज से आता है। बचपन से ही लड़कियों के प्रति उसकी दृष्टि परंपरागत व रूढ़िग्रस्त रही है। अत: यह उपन्यास युवा मानस की परंपरागत विचारों व संस्कारों को उभारता है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य जगत् में मन्नू भण्डारी लिखित 'आपका बंटी' (1971) उत्कृष्ट उपन्यास माना जाता है। माता-पिता के बीच तलाक की नौबत आने पर बेटे बंटी की मनःस्थिति का लेखिका ने यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। अजय और शकुन का तलाक हो जाता है। उनका इकलौता पुत्र बंटी शकुन के पास रहता है। अजय दूसरा विवाह कर लेता है। शकुन भी डॉ. जोशी से विवाह कर लेती है जिसके चलते बेटे बंटी पर किसी का भी ध्यान नहीं जाता जिससे उसका भविष्य अंधेरे में खो जाता है। नये घर में किस प्रकार बंटी खुद को उपेक्षित महसूस करता हुआ हर पल प्रश्नों से घिरा रहता है, इसका मन्नू भण्डारी ने वास्तविकता के साथ यथार्थ चित्र उभारा है। 'आपका बंटी' आधुनिक युग में बदलते पारिवारिक सम्बन्धों और तलाक के कारण बच्चों पर पड़ते मानसिक प्रभाव का सार्थक और यथार्थ चित्रण है। स्त्री अस्मिता की खोज के लिए इस उपन्यास में वैवाहिक सम्बन्धों के खोखलेपन को दर्शाया गया है। इसके अतिरिक्त मन्नू भण्डारी ने 'महाभोज' नामक उपन्यास की रचना की है जो भारतीय राजनीति से संबंधित है। अपने प्रतिभा तथा दूरदृष्टि का परिचय देते हुए इस उपन्यास को भी लेखिका ने अत्यन्त यथार्थ रूप में

प्रस्तुत किया है। "आपका बंटी स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में, बदले हुए स्त्री-पुरुष संबंधों के परिप्रेक्ष्य में, संबंध-विच्छेद की त्रासदी को बच्चे की दृष्टि से देखने का प्रयास है।"[27]

स्त्री अस्मिता की खोज ही साठोत्तरी उपन्यासों की प्रमुख विशेषता रही है। इन उपन्यासों में व्यक्ति के अस्तित्व को अधिक महत्व दिया गया है तथा उसके समस्याओं को अधिक सूक्ष्म रूप में चित्रण किया गया है। कहानी आंदोलन के दौरान कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा और चंद्रकिरण सौनरेकशा आदि लेखिकाओं की पहचान को केवल स्त्री लेखन नहीं बल्कि उनके समकालीन लेखकों राजेंद्र यादव, मोहन राकेश और कमलेश्वर आदि के लेखन जैसा समझना आवश्यक हो जाता है। उनके लेखन को स्त्री लेखन में सीमित कर नहीं परोसा-समझा जा सकता है। उदारीकरण के बाद जिस प्रकार राजनीति में नए विमर्शों के दौर शुरू हुए हैं उसी प्रकार साहित्य में भी नए-नए विमर्शों ने भी जन्म लिया है जिसे हमारे महिला साहित्यकारों ने अपने कृतियों के माध्यम से चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा, शशिप्रभा शास्त्री, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, मंजुल भगत, आदि महिला उपन्यासकारों के संख्या से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि स्त्री न सिर्फ खुद जागृत हुई है बल्कि समस्त नारी जाति के लिए प्रेरणा भी बनीं हैं।

3.1.2 नेपाली उपन्यास और स्त्री लेखन -

नेपाली साहित्य के उपन्यासों में महिला उपन्यासकारों ने पितृसत्ता सोच से उपजे अत्याचारों से मुक्ति के लिए मातृत्व चेतना, वर्गीय चरित्र का प्रतिनिधित्व किया तथा नारीवादी चेतना का स्वर मुखरित किया है। यौन अत्याचार, घरेलू हिंसा और बलात्कार के विरुद्ध आवाजउठाते हुए प्रगतिवादी नारी उपन्यासकारों ने इस क्षेत्र में कलम चलाया है। इसके अतिरिक्त समकालीन नारी उपन्यासकारों ने परंपरागत रूढ़िवादी

[27] मधुरेश. (2014) ***हिंदी उपन्यास का विकास***. नयी दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ सं. 200.

मान्यता के विरुद्ध स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना करते हुए न्याय में, धर्म में, आर्थिक पक्ष में और राजनीति में समानता का अभिमत रखकर निर्भीकता के साथ साहित्य की रचना की।

समकालीन नारी उपन्यासकारों ने विश्व को पुनः देख-परख कर नारी जीवन को लैंगिक चेतना, यौनिक प्रश्न और समलैंगिक संदर्भ आधारित अस्मिता के साथ जोड़कर रचनाएँ की। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद नारियों में यह चेतना आयी कि उनकी लैंगिक भूमिका क्या है? नारी साहित्यकारों ने लैंगिक चेतना में अभिप्रेरित होकर नारी अस्मिता और अस्तित्व के अनेक विषय को आत्मसात कर स्पष्ट धारणा प्रस्तुत की है। पहले के समय में नारी उपन्यासकारों द्वारा यौन समस्याओं, यौन शोषण एवं यौनिक इच्छाओं को प्रतीक के रूप में ही अपने रचनाओं में स्थान दिया जाता था, लेकिन आज के समय में ऐसे विषय जैसे - नारी के जीवन में अतृप्त इच्छाओं, आकांक्षाओं को स्पष्टता के साथ लिखा जा रहा है। इस क्षेत्र में कलम चलाने वाले समकालीन नारी साहित्यकारों की कला सहज और सुंदर है। पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होने के बावजूद नारी लेखन की पृष्ठभूमि, पात्र, परिस्थिति और रंग आदि नेपाली समाज पर आधारित है।

'अनुराधा' विजय मल्ल द्वारा रचित उपन्यास है जिसमें वे अपनी कविता में संग्रहित संघर्षमें और भी तीव्र भावनाओं को समाहित कर अनुराधा में पुनर्जीवित करते हैं। अनुराधा अचेत एवं मानसिक रोग से पीड़ित रहती है। लेखक स्वयं अनुराधा के पति के रूप में आत्मचिंतन करते हैं और अतीत के पलों को याद करते हुए अनुराधा के कथन को याद करते हैं। वह कहती है – "मेरे प्रति माँ के मन की गहराई में ईर्ष्या तथा प्रतिद्वन्द्विता थी क्योंकि मैं अपने पिता के साथ हमेशा घूमने जाती थी और मैं अपने पिताजी की लाडली थी। पिताजी के लाड-प्यार को देखकर उनके मन में मेरे प्रति अत्यंत विद्वेष की भावना जागृत हो रही थी।"

'अनुराधा' उपन्यास में एक ऐसे स्त्री का चरित्र गढ़ा गया है जो कन्वेंट स्कूल में प्रशिक्षण लेती है, वह स्वच्छंद प्रवृत्ति की बहिर्मुखी अनुभूतिप्रिय, नैतिकता और विश्वास को प्राथमिकता देने वाली होती है।

अनुराधा अपने बारे में विश्लेषण करते हुए कहती है कि जीवन के प्रथम चरण में जब मैं अपने शारीरिक रूप को देखती थी तो मैं स्वयं ही उसे देखकर मुग्ध होती थी। मुझमें घमंड आने लगा था, मैंने अपनी सीमाएं लांघने की कोशिश की। घमंड मेरे स्वभाव में प्राकृतिक रूप से बस गया, यह मेरे जीवन का एक अंश बन गया। आत्माभिमान एवं आत्मारति के भाव से मैं कठोर हो चुकी थी। वह स्वयं को यह विश्वास दिलाने का प्रयास करती थी कि "मैं सहज ही उपलब्ध नहीं हो सकती हूँ। मेरे रूप में मादकता जरूर है लेकिन बाहरी सौंदर्य ही सब कुछ नहीं। मेरे मन में भी इच्छा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुराधा के मन के भीतर एक और मन है, जो खुश रहना चाहता है एवं अटेंशन पाना चाहता है, लेकिन उसके बाहरी सौंदर्य के प्रति जिस प्रकार पुरुषों में रति भावना थी वह उसका भी विरोध करती है। अनुराधा के इस प्रकार के विचार हमें यह सोचने पर जोर देती है कि एक स्त्री का दायरा देह से ऊपर होता है। वह प्यार चाहती है, इज्जत चाहती है, आत्मसम्मान के साथ जीना चाहती है। वह अपने शारीरिक रूप को नुमाइश के रूप में प्रदर्शन नहीं करना चाहती।

अनुराधा को अपनी माँ की बीमारी के बारे में खत मिलता है। वह तुरंत घर पहुँचती है, लेकिन वहाँ उसके साथ छलावा होता है। माँ, दीदी, जीजाजी तथा परिवार के सभी लोग मिलकर उसकी शादी रत्नमान के साथ तय कर देते हैं। इन सबसे दुखी होकर एवं गुस्से में वह कहती है - आखिर मेरे स्वीकृति लेने की किसी ने क्यों परवाह नहीं की ? क्या मेरा आत्मसम्मान नहीं है? मेरे अभिमान को जो भयानक आघात लगा है। एक स्त्री होने के नाते संपूर्ण मानव के स्वतंत्रता के ऊपर यह कितना बड़ा आघात था। एक स्त्री के इच्छा के विरुद्ध उसके साथ बलात्कार हुआ, उसके अस्तित्व को जबरदस्ती कुचला गया, प्राणहीन मिट्टी के समान उसको माना गया। उपरोक्त पंक्तियों को देखा जाए तो यहाँ पर अनुराधा के विद्रोहिणी रूप को दिखाने का प्रयास किया गया है।

'चम्पा' उपन्यास लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा के द्वारा लिखा गया एक मात्र उपन्यास है। जो वि. सं. 2004 वर्ष में लिखा गया माना जाता है। यह एक सामाजिक उपन्यास है तथा इसमें तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। 'चम्पा' उपन्यास मूलत: राणाकाल के सामाजिक परिवेश को आधार बनाकर लिखा गया है। यहाँ तत्कालीन राणाकाल के नारियों द्वारा भोगे गए अत्याचार, व्यवस्था, पारिवारिक-द्वन्द्वात्मक स्थिति व तनाव का चित्रण किया गया है। समय और परिवेश के आधार पर रचित इस उपन्यासों के पात्रों में तत्कालीन समाज में प्रचलित परंपरागत भूमिकाओं का वर्णन दिखता है। इसमें नारी और पुरुष पात्रों के काम का निर्धारण भी परंपरागत मान्यता के आधार पर किया गया है। यह मान्यता है कि पुरुषों द्वारा बड़े-बड़े काम यूँ ही किया जा सकता है, वहीं नारी के बस की बात नहीं होती। इस सन्दर्भ में हम पाते हैं कि चम्पा के मायके वालो का भी स्त्री और पुरुष के आधार पर काम बंटा हुआ है। वही उपन्यास में चम्पा और उसकी जेठानी द्वारा पढ़ाई के बारे में किसी भी प्रकार का संकेत नहीं दिया गया है बल्कि उनके द्वारा घर के छोटे-मोटे काम करना दिखाया गया है। वही रमाकांत और उसके बड़े भाई पुरुष रूप में जन्म लेने के कारण स्कूल और कॉलेज में पढ़ने के अधिकारी हो जाते हैं। इस संदर्भ में उपन्यासकार ने लैंगिक आधार पर स्त्री और पुरुष के बीच के अंतर को उल्लेख करते हुए उसकी निंदा की है। इससे यह प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में प्रचलित नारी और पुरुष के कार्य एवं भूमिका में अंतर स्पष्ट होता है। उपन्यासकार ने उपन्यास के पात्रों के माध्यम से परंपरागत लैंगिक भूमिका उजागर करने का प्रयास किया है।

'रूपमती' एक आदर्शवादी उपन्यास है। उपन्यासकार रुद्रराज पाण्डेय ने इस उपन्यास में सभी पात्रों के लिए आदर्श जीवन को गढ़ा है, लेकिन इसमें स्त्री की सीमा को निर्धारित कर प्रस्तुत किया गया है। स्त्रियों का आदर्श जीवन से तात्पर्य है – अपने पति को प्रसन्न करना, ससुराल वाले को खुश रखना। इसके लिए चाहे उसको कुछ भी करना पड़े। नीचे उद्धृत पंक्तियों के द्वारा आदर्श जीवन के परंपरा को देखा

जा सकता है – हविलाल (रूपमती का पति) – “के मयले नभएको कुरा भने त, रूपा? आज तिम्रो रूपराशि देखेर कति मान्छे डाहले भुतुक्क भएर मारिरहेछन्। तिम्रो शीलस्वभाव देखेर कति आइमाईहरु ईर्ष्याले जलिरहेछन।” इसके जवाब में रूपमती कहती है कि “कोहि मरे मरुन्, रीस गरे गरुन्। हजुरलाई प्रसन्न राख्न पाए मलाई पुग्यो।”[1] (अर्थात् कोई मरे या जिए, या फिर ईर्ष्या करें। आपको खुश रखना ही मेरा लक्ष्य है।)

स्त्री जाति के लिए उपन्यास में जिस प्रकार के विचार व्यक्त हुई है। वह कहीं न कहीं पुरुषवादी मानसिकता की ओर इंगित करता है जो सदैव स्त्री को एक वस्तु की तरह समझता है, लेकिन यहाँ पर ध्यान देने की जरुरत है कि लेखक ने तत्कालीन समाज को ध्यान में रखकर उपन्यास की रचना की है। इसका अर्थ यह है कि तत्कालीन समाज ऐसे मानसिकता एवं अंधविश्वासों से ग्रस्त था। रूपमती अपने पति को रिझाने का मौका जाया नहीं करना चाहती क्योंकि उसे कहीं न कहीं यह डर है कि बच्चा न होने के कारण उसका पति दूसरा विवाह कर सकता है। चूँकि समाज में हमेशा से एक स्त्री की सम्पूर्णता उसकी मातृत्व से आँका जाता रहा है, रूपमती को इस बात का अंदेशा है इसलिए वह कहती है – “मुझे केवल अपने शीलस्वभाव एवं सौन्दर्य का सहारा है। अत: इससे पतिदेव प्रसन्न होते हैं तो ठीक है नहीं तो मेरा भाग्य ही ऐसा है मानकर अपने मन को समझाने के अलावा मेरे पास कोई रास्ता नहीं है।”[28]

लैनसिंह बाङदेल कृत ‘माइतघर’ उपन्यास में भी एक शादीशुदा स्त्री (सानी) भी इसी आडम्बर की शिकार होती है। सानी का पति जब दूसरा विवाह करता है तो वह अपने मायके चली आती है। सानी अपने पीड़ा को इस प्रकार व्यक्त करती है - “पोइले सौता हालेछ। सौता हालेपछि स्वास्नीमानिसको जीवन कस्तो हुन्छ? पोइले सौता हालेपछि आइमाई को जीवनमा दूध पनि विष हुन्छ, औषधि पनि मृत्यु हुन्छ।” इसके बदले में उसे सान्तवना कुछ इस प्रकार मिलती है – “तेरो कर्ममा कस्तो लेखेको रहेछ नि !

[28] राई, इन्द्रबहादुर (२०३१). ***नेपाली उपन्यासको आधारहरु***. ललितपुर: साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 15.

तैँले पोइलाई रिझाउन सकिनस्, पोइबाट अवहेलना पाइछस्....।"[29] (तेरे भाग्य में क्या लिखा गया है! तू अपने पति को खुश नहीं रख सकी इसलिए आज तुझे ये अवहेलना सहना पड़ रहा है।) फिर भी सानी अपने ससुराल वापस न जाने के लिए लगातार प्रतिकार करती रहती है और एक दिन अपने आत्मसम्मान के खातिर मायके से तो चली जाती है लेकिन ससुराल भी नहीं लौटती।

इस मानसिकता के पीछे का कारण सिमोन द बोउवार के शब्दों द्वारा समझा जा सकता है – "आर्थिक जीवन में पुरुष विशिष्ट स्थान में है। उनकी सामाजिकता, विवाह से मिला हुआ सम्मान, पुरुषों का सहारा – ये सारी बातें मिलकर स्त्री के मन में बस एक ही उद्देश्य को बढ़ावा देती हैं कि वह कैसे अपने पति को खुश रखे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्त्री अपना चुनाव अपने स्वभाव के अनुकूल नहीं करती, बल्कि पुरुष द्वारा परिभाषित और प्रदत्त जीवन को स्वीकारती है।"[30]

आधुनिक नेपाली साहित्य में पारिजात नाम की एक लेखिका दार्जिलिंग में जन्म लेकर नेपाल को अपना कर्मभूमि बनाती हैं। उन्होंने कई कविताओं, उपन्यासों एवं अन्य विधाओं की रचना की। भाव-स्वरूप विषयवस्तु एवं भाषाशैली आधारित कविता लिखकर जीवन के विविध पक्षों को मार्मिक प्रस्तुति देकर नारी संवेदना एवं सरोकार को प्रकट करने में वे सफल होती हैं।

समसामयिक नेपाली साहित्य में परंपरावादी नारीवाद, सुधारवादी नारीवाद, प्रगतिशील नारीवाद एवं उग्र नारीवाद आदि प्रकार के नारीवाद का चलन रहा है। परम्परावादी नारीवादी के अंतर्गत घर-परिवार और समाज में नारी के प्रति होने वाले भेदभाव को परंपरावादी शैली में चित्रित किया जाता है। कभी-कभी ऐसे साहित्य में विचार की स्पष्टता दिखाई देती है एवं आवाज भी सुनाई देती है। सुधारवादी नारीवादी साहित्य में नारी की समस्याओं की तरफ कम अग्रसर एवं सीमित धारणा को लेकर रचा जाता है। प्रगतिशील नारीवादी साहित्य में स्त्री तथा पुरुष के बीच में समानता का वकालत किया जाता है। इनके

[29] बाङदेल, लैनसिंह. (२००६). ***माइतघर***. काठमांडो : रत्न पुस्तक भण्डार. पृष्ठ सं. 65.
[30] खेतान, डॉ. प्रभा. (2004). ***स्त्री उपेक्षिता***. नई दिल्ली : हिंदी पॉकेट बुक्स. पृष्ठ सं. 72.

बीच में लैंगिक विभेद के संपूर्ण बाधाओं को समाप्त करने के बाद महिला सशक्तिकरण के अभियान को चलाया जाता है। उग्र नारीवाद के अंदर आक्रोश मुख्य रूप से समाहित होते हैं एवं नारी की सत्ता को सर्वोच्च माना जाता है।

3.2 भूमंडलीकरण व स्त्री लेखन:-

हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-चेतना का फलक काफी विस्तृत है। इसमें मूलत: दो धाराएं हैं - एक धारा पुरुष कथा साहित्य का है एवं दूसरा स्त्री कथा साहित्य का। पुरुष उपन्यासकारों ने शुरुआत में तिलस्मी, ऐयारी तथा मनोरंजनपूर्वक उपन्यास से होते हुए आदर्शवादी उपन्यास लिखे। बाद में यथार्थ की धरातल में उतरते हुए स्त्री-चेतना, स्त्री-अस्मिता को अपने लेखनी में स्थान दिया। लेकिन स्त्रियाँ अब स्वयं आवाज बनना चाहती है, स्वयं के बारे में स्वयं लिखना चाहती है। निर्धारित सीमा में बंधकर नहीं बल्कि खुले गगन में पंख फैलाये वह उस यथार्थ को दुनिया के सामने लाना चाहती है जिसे उसके मनुष्य होने के अधिकार से वंचित रखा गया था। स्वतन्त्रता पश्चात् के उपन्यासकारों ने स्त्री चेतना की नींव रखी एवं साठोत्तरी उपन्यासकारों ने उस नींव को और मजबूती प्रदान किया। रूढ़िवादी परंपरा के नाम पर स्त्री ने जो भोगा उसका एक-एक अंश समाज के साथ बाँटने में खासकर महिला उपन्यासकार ने अपनी सक्रिय भूमिका निभाया। अपने जीवन, अपनी इच्छाएं, मन, मस्तिष्क, अपने अधिकार को प्राथमिकता देते हुए उपन्यासकारों ने अपने पात्रों के माध्यम से अपनी उपस्थिती हिन्दी साहित्य जगत् में प्रखरता से दर्ज कराया।

भूमंडलीकरण के दौरान दुनिया भर में कई बदलाव देखने को मिले। चित्रा मुद्गल इस सन्दर्भ में कहती हैं कि "सही नेतृत्व के अभाव में उपभोक्तावादी संस्कृति ने भूमंडलीकरण और उदारवाद की आड़ में बाजारों के विस्तार के लिए भारतीय जीवनदर्शन-अर्धनारीश्वर को हाशिए से मुक्त कराने की बजाए उसे

कुछ और नंगे अंधेरों में ढकेलने की फॉर्मूलाबद्ध कोशिश की है।"[31] पश्चिम के नारीवाद सिद्धांत का कई दृष्टिकोण से भूमंडलीकरण के कारण हुए बदलाव का विरोध किया गया। उनका मानना था कि उपभोक्तावाद ने औरत के लिए एक खुबसूरत जेल का आविष्कार किया है, जिससे सत्तर के दशक की नारीवादी स्त्रियाँ मुक्ति चाहती थीं। सिमोन द बउआर का भी इस सन्दर्भ में कहना था कि "चेहरे पर एक हल्की सी झुर्री , लिपस्टिक का होठों पर जरा-सा छितरा जाना, उसका सारा दिन ख़राब करने को काफी है, स्त्री को यदि मुक्ति चाहिए तो पहले गहने-कपड़ों से, प्रसाधन से मुक्ति लो। ये तो बेड़ियाँ हैं जिन्हें अबतक अज्ञानतावश वह पहनती रही और वस्तुरूप में स्वयं को पेश करती रही।"[32]

3.2.1 भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास-

भूमंडलीकरण केदौर में सर्वाधिक उपन्यासकार देखने को मिलते हैं जिन्होंने स्त्री चेतना व स्त्री अस्मिता से संबंधित मुद्दों को अपने लेखन में प्राथमिकता से स्थान दिया। जिनमें प्रमुख हैं - जगदीश चंद्र, पंकज बिष्ट, गोविंद मिश्र, ममता कालिया, सुरेन्द्र वर्मा, मृदुला गर्ग, राजी सेठ, प्रभा खेतान, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा आदि।

जगदीश चंद्र माथुर की उपन्यास यात्रा 'यादों का पहाड़' (1966) उपन्यास से प्रारम्भ होकर अंतिम उपन्यास 'टुंडा लाट' (1978) तक विस्तृत होता है। इनके महत्वपूर्ण उपन्यास 'धरती धन न अपना'(1972) दलितों और हरिजनों के जीवन पर आधारित है। उनके स्त्री पात्रों – ज्ञानों, बंतो, निहाली, प्रीतो और प्रसिन्नी आदि के माध्यम से लेखक ने दलित जीवन के मार्मिक यथार्थ का चित्रण किया है। उपन्यास में काली और ज्ञानो के प्रेम प्रसंग को लेखक ने गहरी संवेदना से प्रस्तुत किया है।पंकज बिष्ट द्वारा लिखित उपन्यास 'उस चिड़िया का नाम' (1989) है जिसमें कुमाऊनी समाज के एक स्त्री रमा के

---

[31] मंडलोई, लीलाधर. (अक्तूबर 2017) ***नया ज्ञानोदय***. अंक 176. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. पृष्ठ सं. 36.
[32] खेतान, प्रभा. (2004). ***बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ.*** नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 229.

अंतर्विरोधों तथा उसके स्थिति और नियति का चित्रण किया गया है। यह रमा और हरीश दो भाई-बहन की कहानी है जो अपने पिता के दाह संस्कार से जुड़े घटनाओं को जीते हैं।

गोविंद मिश्र एक यथार्थवादी लेखक हैं। इनके द्वारा कृत 'तुम्हारी रोशनी में'(1985) भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में नारी चेतना के प्रश्न को गंभीरतापूर्वक उठाया गया है। सुवर्णा नामक स्त्री की कहानी इस उपन्यास में कही गई है।

सुरेन्द्र वर्मा द्वारा लिखा गया उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' विशेष रूप से नारी संबंधी उपन्यास है। नारी के अस्तित्व को पुनर्स्थापित करने का प्रयास इस उपन्यास में हो पाया है। आज के परिप्रेक्ष्य में देखे तो आज नारी प्रत्येक क्षेत्र में कार्यरत है बावजूद समाज से उसे बढ़ावा मिलने के स्थान पर उसे अपमानजनक ताना दिया जाता है। उसके काम के साथ कई चीजें जोड़कर देखी जाती है। वह कितनी भी प्रतिभाशाली क्यों न हो उसके काम को केवल परंपरागत दृष्टिकोण से आँका जाता है। उसके द्वारा लिए गए निर्णय को हमेशा परिवार के इज्जत के साथ जोड़ा जाता है। इसीलिए प्राय: यह कहा जाता है कि परिवार जैसी संस्थाएँ स्त्री की मुक्ति में शायद सबसे बड़ी बाधा के रूप में समाज में है क्योंकि परिवार नाम की संस्था पुरुषसत्तात्मक अवधारणा से गहराई से जुड़ी है। अत: एक कामकाजी महिला की भूमिका दोहरे रूप से चुनौतीपूर्णजीवन जीती हैं। इस उपन्यास में भारतीय ग्रामीण, शहरी, महानगर आदि के परिवेश को चित्रित किया गया है। उपन्यास की नायिका वर्षा के मानसिक अंतर्द्वंद्व, उलझन, चिंता, कुंठा, अवसाद, एकाकीपन एवं भटकन को चित्रित किया गया है जिसके आधार पर इस उपन्यास को मनोविश्लेषणवादी उपन्यास कहा जाता है। "इस उपन्यास में उत्तर आधुनिकता की प्रवृत्ति अंतर्निहित है इसलिए 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास को उत्तर आधुनिकतावादी विचारधारा का उपन्यास माना गया है।"[33]

[33] किर्ते, डॉ. सविता चोखोबा. (2013). ***हिंदी उपन्यासों का मूल्यपरक विवेचन***. कानपुर: विनय प्रकाशन. पृष्ठ सं. 74.

उपन्यास की प्रमुख पात्र वर्षा के माध्यम से उपन्यासकार ने एक ऐसा चरित्र गढ़ा है जो अपने आस-पास के सारे रूढ़िग्रस्त बेड़ियों को तोड़ने का हिम्मत रखती है। वर्षा के परिवार में वही एक मात्र सदस्य ऐसी है जो पुरानी परंपरा में चलने को तैयार नहीं है। वह अपने सपने साकार करने का जज़्बा रखती है और नए विचार, नए सपने देखने के लिए भी प्रेरित है। वर्षा का असली नाम यशोदा शर्मा रहता है जिसे बदलकर उसने वर्षा वशिष्ठ किया था। पिता के पूछेने पर वह कहती है कि "अब हर तीसरे चौथे के नाम में शर्मा लगा होता है। मेरे क्लास में ही सात शर्मा हैं।.... और यशोदा? घिसा पिटा, दक़ियानूसी नाम। उन्होंने किया क्या था ? सिवा कृष्ण को पालने के ?"[34] अर्थात् वर्षा का नाम बदलने के पीछे का कारण सबसे अलग लगने के लिए नहीं बल्कि पुरानी चीजों को ढोकर चलने में असहमति दर्ज करना था। वह आज की नारी है, उसे अपने नाम का ऐसा अर्थ चाहिए जो किसी और को भी प्रेरित करें। किसी स्त्री का अपने पिता के सामने अपने बातों को निर्भिकता के साथ रखने के पीछे उसका दृढ़ संकल्प दिखता है, लक्ष्य दिखता है जिसे वह पाना चाहती है।

नब्बे के दशक की खास बात यह भी थी कि स्त्री उपन्यासकारों ने नए-नए विषयों को अपने उपन्यास का विषय ही नहीं चुना बल्कि बिना किसी दबाव के परवाह करते हुए दकियानूसी परम्पराओं का खंडन भी किया। इस सिलसिले में प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, गीतांजलि श्री, अलका सरावगी आदि उभर कर आती हैं। चित्रा मुद्गल कृत 'एक जमीन अपनी' (1990) की एक पात्र स्त्री के अधिकारों के लिए संघर्षरत रहती है। लेखिका अपने संवेदनशीलता का परिचय उपन्यास की स्त्री पात्र के जरिए इस प्रकार देती है – "पुरुष से स्वतंत्र होना है तो पहले उन्हें सिंदूर को पोंछना होगा। बिछुए त्यागने होंगे ! दासत्व के प्रतीक चिह्न ! .... मैं पत्नी नहीं, सहचरी बनना चाहती हूँ। पत्नी शब्द में मुझे दासीत्व की

[34] किर्ते, डॉ. सविता चोखोबा. (2013). ***हिंदी उपन्यासों का मूल्यपरक विवेचन***. कानपुर : विनय प्रकाशन. पृष्ठ सं. 76.

बू आती है..... इस शब्द ने हमारे समाज में अपनी गरिमा खो दी हैं।"[35] स्त्री जीवन को उद्घाटित करना उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है। स्व के प्रति सजगता तथा अपने अधिकार व अस्तित्व की चेतना को प्रस्तुत उपन्यास में देखा जा सकता है।

सुरेन्द्र वर्मा ने 'मुझे चाँद चाहिए' के माध्यम से पाठकों के समक्ष स्त्री चेतना को बढ़ावा देने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में भी स्त्री पात्र वर्षा के लिए कला ही उसके जीवन का सर्वप्रथम ध्येय है। वह विवाह को अधिक महत्व नहीं देती है। विवाह के ख्याल से उसके मन में कई बन्दिशों का ख़्याल आ जाता है इसलिए वह हर्षवर्धन से आए रिश्ते को मना कर देती है। वह कहती है –"अगर मैंने ब्याह कर भी लिया, तो भी मैं रिपोर्टरी कभी नहीं छोडूंगी – वर्षा ने तय कर लिया था। मैं रंगमंच के बिना नहीं जी सकती।"[36]

मैत्रेयी पुष्पा ने 1990 ई. में उपन्यास लेखन का आरम्भ किया। इनके द्वारा लिखा गया पहला उपन्यास है – 'स्मृति दंश'। इसके बाद 'बेतवा बहती रही' (1993 ई.) उपन्यास लिखकर अपने कथा संसार को विस्तृत रूप देती है। लेकिन उपन्यासकार के रूप में इन्हें 'इदन्नम' (1994 ई.) से ख्याति प्राप्त हुआ ऐसा माना जाता है। बुन्देलखंडी परिवेश आधारित रचा गया यह उपन्यास उसके समाज तथा समस्याओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है। उपन्यास की नायिका मन्दाकिनी अपने तथा ग्रामीणों पर होने वाले छल, शोषण के विरूद्ध बुलंदी के साथ खड़ी होती है। उपन्यास की अन्य स्त्री पात्र परंपरागत नियति को जबरन ढोते हुए चित्रित हुई है जिनमें नायिका की माँ और भाभी भी सम्मिलित हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने अन्य उपन्यास रचे – 'चाक' (1997 ई.), 'झुला नट' (1999 ई.), 'अल्मा कबूतरी' (2000 ई.) आदि। 'अल्मा कबूतरी' में ऐसे पात्रों का चरित्र गढ़ा गया है कि जिनके पास न अपनी जमीन है और न ही कोई काम। देश के जनजातियों की समस्याओं तथा उनके साथ होने वाले छल-कपट, धोखा, अत्याचार एवं

[35] राय, गोपाल. (2002). ***हिंदी उपन्यास का इतिहास***. नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 390.

[36] किर्ते, डॉ. सविता चोखोबा. (2013). ***हिंदी उपन्यासों का मूल्यपरक विवेचन***. कानपुर : विनय प्रकाशन. पृष्ठ सं. 76.

शोषण का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हो पाया है। लेखिका जनजातियों के अधिकारों के प्रति चिंता व्यक्त करती है। स्वतंत्र भारत में उन्हें अभी भी वे सारी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हो सका है जिसके वे हक़दार हैं।

मैत्रेयी पुष्पा हिंदी जगत् की सफल उपन्यासकार हैं। उन्होंने लगभग बारह उपन्यासों की रचना की है। 'अगन पाखी' उनके द्वारा लिखा गया एक ऐसा उपन्यास है जिसकी नायिका भुवन का विवाह जानबूझ कर मानसिक रूप से कमजोर व्यक्ति के साथ कर दिया जाता है। जिसके कारण उसे अनेकों समस्याओं से जूझना पड़ता है और एक दिन भुवन अपने जेठ द्वारा मृत घोषित की जाती है। जिसके बाद वह एक दिन जीवित होकर कचहरी में हाजिर हो जाती है। अपने पति के हक़ के लिए अपना हलफनामा पेश करती है। भुवन का हार न मानने वाला व्यक्तित्व ही इस उपन्यास का आकर्षण है। डॉ. नामवर सिंह ने इस उपन्यास को एक साथ तीनों- स्त्री-विमर्श, सम्पत्ति-विमर्श और सती-विमर्श का उपन्यास कहा है। मैत्रेयी पुष्पा अपने उपन्यासों में स्त्री प्रश्न को उठाते हुए तत्कालीन कटु यथार्थ के गलियारों से अक्सर जा टकराती हैं।

अत: संक्षेप में हम कहा जा सकता है कि लेखिका ने समाज में व्याप्त विभिन्न विषयों व क्षेत्रों की समस्याओं को अपने उपन्यास का विषय बनाया तथा लेखन कार्य किया। किसी लेखिका द्वारा इस प्रकार के अनेक समस्याओं के प्रति चेतनशील होकर लेखन कार्य करना अपने आप में एक विद्रोह है। अपने पात्रों के जरिए सभ्य माने जाने वाले असभ्य और ढोंगी समाज का नग्न चित्रण कर मैत्रेयी पुष्पा आज महिला उपन्यासकारों में अपनी एक अलग पहचान बनाती हुई नजर आती हैं।

स्त्री चेतना के दृष्टिकोण से 'मुझे चाँद चाहिए' (1993) एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास की नायिका वर्षा एक अविवाहित माँ बनती है। उसके इस परिस्थितियों में कोई उसका साथ नहीं देता है फिर भी वह अपने निर्णय में अड़ी रहती है। वह अपने जीवन को अपने तरीके से जीना चाहती है। नवीनता

के प्रतीक के रूप में उसका चरित्र गढ़ा गया है। वह जागृत नारी है, वह अपने अधिकारों के लिए, अपने सपनों के लिए जागृत है। इस उपन्यास को उत्तर आधुनिकता के संदर्भ में भी देखा जा सकता है क्योंकि वर्षा से संबंधित सभी लोगों का शारीरिक सम्बन्धों के प्रति एक अलग एवं स्वच्छंद दृष्टिकोण देखा गया है। आधुनिकता के कारण एक स्त्री में अपने अधिकार के प्रति किस प्रकार आत्मविश्वास पैदा होता है यह निम्नलिखित वाक्यों से समझा जा सकता है – "शादी के पहले किसी पुरुष को देखना या उसके बारे में सोचना पाप माना जाता था... लेकिन आधुनिक युगमें या एक फैशन और जरुरत के तौर पर देखकर इस अनुभव को महसूस कर रहे हैं। यही कारण है कि वर्षा को ग्लानि नहीं होती। महानगरीय जीवन में इस तरह का अनुभव एक आम बात है और साथ में बिन ब्याही माँ बनने का निर्णय।"[37]

वर्षा के इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें ऐसे शक्ति का सृजन हो रहा है जो नारी उत्थान, नारी अस्मिता और नारी अस्तित्व को बोध कराने में प्रेरणा दे रही है। मधुरेश प्रस्तुत उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र वर्षा के सम्बन्ध में कहते हैं "वर्षा की उपलब्धि नए जीवन-मूल्यों की दृष्टि से उतनी नहीं है, जितनी अपने निजी विकास और समृद्धि की दृष्टि से है।"[38]

भूमंडलीकरण के दौर में स्त्रियों की सबसे बड़ी चुनौती यही रही कि अपने स्वतंत्र अस्मिता को किस तरह सही दिशा प्रदान किया जाए क्योंकि इस दौर में स्त्री अपने व्यक्तिगत समस्याओं से जूझ रही थी। उसे अपने स्व निर्णय को सही साबित करने हेतु पग-पग पर परीक्षा देना पड़ रहा था। स्वतंत्रता के नाम पर बाजारवाद ने स्त्री को उपभोग की वस्तु बनाना शुरू कर दिया था जिसके कारण स्त्रियाँ पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ी हुई थीं।

'एक जमीन अपनी' के बारे में गोपाल राय अपने पुस्तक में लिखते हैं कि "इसका केन्द्रीय कथ्य बम्बई के महानगरीय परिवेश में विज्ञापन-जगत् के ग्लैमर, मूल्यहीन प्रतियोगिता, तिकड़म, देह-व्यापार के

[37] शिंदे, डॉ. जयश्री. (2012). ***हिन्दी उपन्यास और विमर्श : अद्यतन दृष्टि***. वाराणसी : ए. बी. एस. पब्लिकेशन. पृष्ठ सं. 40.
[38] मधुरेश. (2016). ***हिन्दी उपन्यास का विकास***. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ सं. 223.

बीच प्रस्तुत नारी विमर्श है।"[39] इस दृष्टि से इस उपन्यास की विषयवस्तु में भूमंडलीकरण के दौरान होने वाले परिवर्तन का प्रभाव देखा जा सकता है। चित्रा मुद्गल ने 'आंवा' (2000) नामक एक और उपन्यास लिखा। इसमें मध्यमवर्गीय लड़की के जीवन संघर्ष की कहानी है। उपन्यास की नायिका नमिता के साथ शारीरिक शोषण होता है, बलात्कार होता है एवं वह अनचाहा गर्भ धारण भी करती है जिससे वह हार नहीं मानती और न ही टूटती है बल्कि आत्मनिर्भर होने के लिए खुद को तैयार करती है। नमिता के अतिरिक्त उपन्यास में और भी स्त्री पात्र हैं (स्मिता, गौतमी और ममता) जिन्होंने परम्परागत नारी संहिता के जंजीरों को तोड़ते हुए नारी शक्ति का प्रदर्शन किया।

'कंकाल उपन्यास में जयशंकर प्रसाद ने यह स्वीकार किया है कि "पुरुष नारी को उतनी ही शिक्षा देता है, जितनी उसके स्वार्थ में बाधक न हो।"[40] भूमंडलीकरण का प्रवाह विश्व में बहुत ही जल्द विकसित हुआ है। यदि हम देखें तो बीसवीं सदी में भूमंडलीकरण की घटना प्रमुख मानी जाती है। इसने साहित्य तथा समाज को बहुत हद तक प्रभावित किया है। इससे बाजारीकरण को बढ़ावा मिला, जिससे करोड़ों लोग इस ओर आकर्षित तथा प्रभावित हुए। "भूमंडलीकरण ने बड़े नाटकीय तरीके से विश्व भर की आय में इजाफ़ा किया है। मगर उतने ही नाटकीय तरीके से अमीर-गरीब का आपसी भेद भी बढ़ा है। पिछले पाँच दशकों में दुनिया भर की आय 7 गुना बढ़ी है। 1960 से 1991 के दौरान भूमंडलीय जनसंख्या में 20 प्रतिशत लोगों की आय 70 से 85 प्रतिशत बढ़ी है।"[41]

साहित्य की दुनिया में अक्सर यह सोचा तथा समझा जाता है कि परिवार की समस्याओं के विषय में लिखे जाने वाले लेखन ही (इर्द-गिर्द ही) स्त्री-लेखन कहलाता है। परन्तु यह पूर्णरूप से सत्य नहीं है। स्त्री लेखन अब व्यापक रूप में हमारे सामने है – सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक चेतना

[39] राय, गोपाल. (2002). ***हिंदी उपन्यास का इतिहास***. नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 390.
[40] यादव, राजेंद्र. (2014). ***आदमी के निगाह में औरत***. नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 16.
[41] खेतान, प्रभा. (2004). ***बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ.*** नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 11.

सम्बन्धी विषयों पर लेखन का कार्य किया जा रहा है। डॉ. के. एम. मालती के अनुसार “आज की हिंदी लेखिकाएँ सामाजिक-राजनैतिक परिदृश्य को सामने रखते हुए उपभोक्तावादी एवं भौतिकवादी संस्कृति का पर्दाफाश करने में सक्षम निकली हैं।”

‘छिन्नमस्ता’ की प्रिया अम्मा की तरह नहीं होना चाहती और न ही भाभी की तरह घूट-घूट कर जीना चाहती है। वह कहती है – “मैं अपने जीवन को आँसुओं में नहीं बहा सकती” वह अपने जिंदगी को बहुत ही अच्छे ढंग से जीने की चाहत रखती है। चूँकि प्रिया का जन्म अपशकुन माना जाता है इसलिए उसे माँ ने कभी गोद में नहीं लिया, उसका सारा पालन-पोषण दाईमा ने ही किया। बचपन से भाई-बहन द्वारा प्रिया का मजाक उड़ाया जाता था। प्रिया उपेक्षित होने के कारण उसके भाई-बहन उसे बछड़ा व मिलिट्री घोड़ा आदि नामों से संबोधन करते थे। बाल्यवस्था में प्रिया से उसका चचेरा भाई बलात्कार करता है लेकिन इस घटना को प्रिया अपने घरवालों को कह नहीं पाती। “राजेन्द्र यादव ने प्रिया के संदर्भ में हंस पत्रिका में लिखा है – बीसवीं शताब्दी के अंत में छिन्नमस्ता की प्रिया, मुझे चांद चाहिए की वर्षा जिस तरह सजग आत्म चेतना तक पहुँचती है साथ ही आत्म निर्णय अर्जित करती हैं। यह नायिकाएं पूंजीवादी समाज, संस्कारों और आर्थिक विषमता से संघर्ष करके अपने व्यक्तित्व का निर्माण करती है।”

नब्बे के दशक में प्रमुख महिला उपन्यासकार के रूप में नासिरा शर्मा का नाम आता है। नासिरा शर्मा प्रगतिशील लेखिका के रूप में जानी जाती हैं। उनके द्वारा लिखे गए उपन्यासों के नाम हैं – ‘सात नदिया एक समंदर’, ‘शाल्मली’, ‘ठीकरे की मंगनी’, ‘जिंदा मुहावरे’, ‘अक्षय वट’ तथा ‘कुइयांजान’ आदि। शाल्मली में पति-पत्नी के बीच में तनावपूर्ण स्थिति का वर्णन दिखाया गया है। इस तनाव का प्रमुख कारण पति का पत्नी के ऊपर सम्पूर्ण रूप से अधिकार मानने वाली मानसिकता को माना जाता है। पुरुष या नारी को जब एकाधिकार दिया जाता है तो वहाँ पर आत्मसम्मान की गुंजाइश नहीं रहती। पुरुष

और स्त्री को अक्सर Taken for granted ही समझता है, वह चाहता है कि केवल उसके सुख-दुख के लिए उसने विवाह किया है। जिसके कारण वह पत्नी की उपेक्षा कर बैठता है।

शाल्मली और उसके पति नरेश के व्यक्तित्व में टकराव रहने का यही कारण है। शाल्मली एक सरकारी दफ़्तर में अधिकारी है तो नरेश शाखा पदाधिकारी है। नरेश इस बात को नहीं पचा पाता है कि उसकी पत्नी उससे उच्च पद में नियुक्त है। वह पत्नी पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए उसे प्रताड़ित भी करता है। वह इस बीमारी से ग्रस्त है कि उसके पुरुषत्व से ही पत्नी को वश में किया जा सकता है। धीरे-धीरे उसमें क्रूरता तथा संकीर्ण सोच समाहित होने लगता है तथा उसका व्यक्तित्व उसी रूप में तैयार होता है। लेखिका प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से यह सन्देश देना चाहती है कि पुरुष वर्ग पितृसत्तात्मक सोच के कारण अहम् की भावना लिए अपना और अपने आस-पास के लोगों को नुकसान पहुँचाते हैं।

अलका सरावगी कृत 'कलि-कथा वाया बाइपास' (1998) की रचना की जिसका केन्द्रीय विषय मारवाड़ी परिवार की पाँच पीढ़ियों की संघर्ष भरी कहानी है। बाज़ारवाद की भोगवादी मानसिकता से ग्रस्त मारवाड़ी समाज की नयी पीढ़ी की असंवेदनशीलता भी उपन्यास में उजागर हुई है। गीतांजलि श्री रचित उपन्यास 'माई' (2004) उपन्यास का एक अंश जिसमें घर की महिला सदस्य एक टांग पर खड़े होकर सभी सदस्यों के खातिर समप्रिपत होती है। वह अपने स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं दे पाती "बचपन से ही उसकी निरीहता ने हमें घायल कर रखा था। धीरे-धीरे हम उसे सबसे बचाने लगे - दादी से, बाबू से, दादा से. बस उसी से, उसे ना बचा पाते। उसकी रीढ़ की हड्डी ही जब जवाब दे चुकी थी, डॉक्टर तक ने जवाब दे डाला। कि अब दर्द होगा ही होगा। हम तो शुरु से ही जानते थे उसकी रीढ़ की हड्डी के बारे में। "वह तो बाद में…."[42]

[42] गीतांजलि, श्री. (2004) '***माई***'. नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ. सं. 14.

3.2.2 भूमंडलीकरण और नेपाली उपन्यास -

भूमंडलीकरण का दौर जब आया तो एक तरफ इसने महिलाओं को अपने सपने पूरे करने का अवसर प्रदान किया तो दूसरी ओर स्त्रियाँ आसानी से औपनिवेशिक मानसिकता की शिकार बनीं। 'औरत ही औरत की दुश्मन होती हैं' यह वाक्य कई बार सुना गया है या कहा जाए कि सुनते-सुनते इस पर विश्वास भी होने लगा है। इस मानसिकता के पीछे पितृसत्तात्मक सोच समाहित है जो बड़े ही चालाकी से स्त्रियों को आपस में उलझाकर उनका ज़रूरी मुद्दों से ध्यान भटकाता आया है। इसे संचालित करने में कई संस्थाओं का हाथ रहा है। जैसा कि प्रो. रोहिणी अग्रवाल कहती हैं "पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पाँच संस्थाएँ मुख्य रूप से काम करती हैं – परिवार, विवाह, धर्म, कानून और मीडिया। ये पाँचों संस्थाएँ मिलकर स्त्री को गुलाम बनाती है। परिवार संस्था कहती है कि स्त्री का दोयम दर्जा है, प्रधान है पुरुष। स्त्री की सार्थकता है माँ बनने में, भाई की बहन, पिता के पुत्री बनने में। इन सारे रूपों में वह किसी न किसी पुरुष के अधीन है और परिवार में चाहिए तर्पण के लिए बेटे। इसलिए स्त्रियों का स्थान गौण है। बेटियों की भ्रूण हत्या इसी परिवार संस्था की देन है। विवाह संस्था स्त्री को पत्नी के रूप में गुलाम बनाती है। धर्म का पालन अनिवार्य है तो यह अनिवार्यता स्त्री ही क्यों अपेक्षित है?"[43]

भूमंडलीकरण के युग में बहुत-से उपन्यास ऐसे लिखे गए जो पूर्व में लिखे गए उपन्यासों से भिन्न थे तथा कम-से-कम किसी मानसिकता से ग्रसित नहीं थे। इसी क्रम में वानिरा गिरी कृत उपन्यास 'कारागार' (वि. सं. 2035) में यह बात स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि स्त्री यदि आर्थिक रूप से चेतनशील है और वह किसी के ऊपर निर्भर नहीं है। समाज में उसका दर्जा ऊँचा ही रहता है। प्रस्तुत उपन्यास में तो परिवार में ही इसका उदाहरण देखने को मिल जाता है। एक महिला पात्र (कान्छी काकी) जो रिश्ते में तो छोटी है किन्तु उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी होने के कारण उसे विशेष दर्जा प्राप्त है।

[43] शर्मा, डॉ. हर्षबाला. (2011). ***इक्कीसवीं सदी : औपनिवेशक मानसिकता और भाषा***. गाज़ियाबाद : अंतिका प्रकाशन. पृष्ठ सं. 50.

"दर्जाले ठूला भए पनि दुवै काकीहरू कान्छी काकीको सामु भिजेको मुसाजस्ता हुन्थे। कारण, कान्छा काकाको आयस्रोत अरू काकाहरूको भन्दा बढ़ी थियो।"[44] (अर्थात् उम्र और रिश्ते में बड़े होने के बावजूद छोटी चाची के सामने अन्य दो चाचियाँ भीगी बिल्ली सह होती थीं क्योंकि छोटे चाचा अन्य दो चाचाओं से अधिक कमा लेते थे।)

आज का युग स्त्रियों के लिए कई नई चुनौतियाँ लेकर उपस्थित हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वर्तमान युग प्रागैतिहासिक काल से भी ज्यादा पिछड़ा हुआ है तथा स्त्री के प्रति हिंसक रवैया अपना रहा है। उन्हें स्त्री के अस्तित्व तथा व्यक्तित्व के विकास पर संदेह है। इसलिए कन्या भ्रूण हत्या के प्रति आक्रामक रहकर स्त्री जाति का अस्तित्व ही समाप्त करना चाहते हैं।

हम जिस समाज में रहते हैं वहाँ दो नौजवान (महिला-पुरुष) का विवाह पूर्व एक साथ रहना अपराध माना जाता है। समाज में इस प्रकार के संबंध को लोग बहुत ही गंदी नजर से देखते हैं और चरित्र पर उंगली उठाने लगते हैं। ख़ासकर स्त्री के चरित्र पर। समाज के ऐसे असंवेदनात्मक रवैये से दुखी होकर 'कारागार' उपन्यास की नायिका कहती हैं – "मैं भी एक स्त्री हूँ, अस्तित्व विहीन नहीं हूँ, अपने आत्म सम्मान के साथ जीने के लिए मैं भरपूर मेहनत कर रही हूँ। मैं वो सड़क नहीं हूँ जिसमें कि केवल इन्सान चलता है, मैं इनार भी नहीं हूँ और न ही मैं पलंग हूँ जहाँ इन्सान थका-हारा सोने आता है। मैं सड़क, इनार तथा पलंग के अलावा भी बहुत कुछ हूँ तथा इसी कुछ को पहचानकर ही वह मुझसे आत्मीय रूप से जुड़े हैं।"[45]

भूमंडलीकरण के युग में भी समाज में विधवा नारी के प्रति दृष्टिकोण बदल नहीं पाया है। उन नारियों को पुनः साधारण जीवन जीने हेतु कई संघर्षों का सामना करना पड़ता है। पुनर्विवाह जैसे अधिकार को प्रायः उसके चरित्र से जोड़कर देखा जाता है। नयादेवी द्वारा रचित उपन्यास 'युगसन्धि' में राधा नाम

---

[44] गिरी, वानीरा. (२०३५). ***कारागार.*** ललितपुर: साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 9

[45] वही. पृष्ठ सं. 35.

की स्त्री को जब पुनर्विवाह का प्रस्ताव आता है तो काकी इस प्रस्ताव को स्वीकारने को कहती है तथा समझाती है कि – "राधा यदि तुम मेरा कहना मानोगी तो सुनो! जिंदगी बहुत लम्बी है, जिसे अकेले जी पाना अत्यंत कठिन है। तू अपने काकी को जीवन भर देखती आयी है कि किस प्रकार मैंने अकेले एक वर्ष के बालक का लालन-पालन कर संघर्ष किया है। मेरा यह अकेले का संघर्ष वास्तव में हमारे समाज के एकपक्षीय निर्णय का ही परिणाम है।"[46]

सुस्मिता नेपाल कृत उपन्यास 'एकान्त पनि रुन्छ' में एक बेटी द्वारा अपने अधिकार के लिए प्रश्न करती हुई नज़र आती है – "ए बाबा, म छोरी हैन र?/दाईलाई अंश मलाई केही छैन र?/सबै छोरा माइतीमा अटाए/म छोरीलाई नौ डाड़ा कटाए/हे माया, म छोरीलाई नौ डाड़ा कटाए।"[47] वहीं पद्मावती सिंह अपने उपन्यासों में स्त्री और पुरुष के बीच के भेदभाव जैसी स्थिति को अंत कर मानवीय सम्बन्ध स्थापित करने की ओर अग्रसर है।

बहुभाषी तथा बहुधर्मी नेपाली समाज में लोग अपनी इच्छा तथा सुविधा अनुसार विभिन्न भाषा और विभिन्न धर्म को ग्रहण करते हैं। एक-दूसरे की भाषा, धर्म का सम्मान भी करते हैं। एक-दूसरे की संस्कृति को आत्मसात कर उसी रंग में रम जाने की भी प्रवृत्ति देखी जाती है। नेपाली महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में उक्त प्रकार की मिश्रित संस्कृति का चित्रण देखा गया है। विशेषकर पश्चिमी देशों की जीवनशैली एवं चाल-चलन के प्रभाव को नेपाली उपन्यास के पात्रों में अधिकतर देखा गया है जैसे वैलेंटाइन डे मनाना (लामो अंतराल पछि), हनीमून मनाना (अंत्यहीन अंत्य), जन्मदिन के अवसर पर केक काटना और मोमबत्ती बुझाना (अंत्यहीन पीडा), ईसाईयों और हिंदूओं का एक ही स्थान पर जमा होकर क्रिसमस मनाना (आँसु), चर्च में शादी करना तथा विवाह के पश्चात् सिंदूर लगाना आदि मिश्रित संस्कृति का उदाहरण स्वत: देखा जा सकता है।

---

[46] देवी, नया. (2002). ***युगसन्धि.*** तेजपुर : श्री जयनारायण लुइटेल. पृष्ठ सं. 45.

[47] लुइटेल, लीला. (२०६८). ***नेपाली महिला उपन्यासकार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 186.

अधिकांश महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में नारी स्वतंत्रता एवं समानता का समर्थन करते हुए नारीवादी अवधारणा को स्थापित किया है। उनका मानना है कि एक व्यक्ति के साथ विवाह करने के पश्चात् किसी भी स्थिति में उस संबंध को जीवन भर ढोने जैसे आदर्शवादी विचारधारा का खंडन भी किया है।

भूमंडलीकरण के पश्चात् लिखे गएमहिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में यह भी देखा गया है कि वे महिलाओं को प्राय: सलाह देती नज़र आती है कि किसी स्त्री को आत्मनिर्भर तथा पूर्ण रूप से स्वालम्बी होने के बाद ही विवाह करना चाहिए साथ ही अंतर्जातीय विवाह को भी प्रश्रय दिया गया है।

3.3 इक्कीसवी सदी का स्त्री लेखन :-

सदी कोई भी हो लेकिन स्त्रियों की स्थिति लगभग एक जैसी ही रहती है लेकिन इक्कीसवी सदी में कुछ उपन्यास ऐसे भी लिखे गए जिसने स्त्री चेतना को, स्त्री की समस्याओं को यथार्थ रूप में चित्रण किया तथा समाज के विकास में अपना योगदान दिया। उपन्यास एक ऐसी विधा है जो समाज के प्रत्येक लोगों से सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम रहता है एवं समाज के हर पहलू को नजदीक से देखता-परखता है। इक्कीसवी सदी के हिंदी उपन्यासों में विगत दो दशकों में जिस प्रकार की सृजनशील रचना लिखी गयीं उसका आधार है - उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, चंद्रकांता, ममता कालिया, नासिरा शर्मा आदि। इसी प्रकार नई पीढ़ी के प्रतिनिधि हस्ताक्षर के रूप में गीतांजलि श्री, अलका सरावगी, महुआ मांझी और मनीषा कुलश्रेष्ठ जैसी लेखिकाएँ हैं जिन्होंने किसी परिधि में बंध कर रहने को अस्वीकार किया और स्त्री के स्वतंत्र चेतना को स्थायित्व प्रदान करने का भरसक प्रयास किया। कृष्णा सोबती और उषा प्रियंवदा आज उम्र के जिस दौर में हैं उसी के अनुरूप लेखन कार्य भी करते हैं कृष्णा सोबती अपनी चिंताओं का प्रसार करते हुए क्रमशः बुजुर्ग और कैंसर पीड़ित स्त्री के मनोविज्ञान, सुरक्षा और भय को चित्रित करती हैं। उनके 'समय सरगम' में ऐसी पात्र का चित्रण किया गया है जो मृत्यु का साक्षात्कार ही

नहीं करती बल्कि मृत्यु को पछाड़ती हुई अपना जीवन अपने शर्तो पर जीने का हिम्मत भी रखती हैं। उषा प्रियंवदा कृत 'भया कबीरा उदास' में लेखिका ने नए अंदाज में तनावग्रस्त जीवन से उपजने वाले शारीरिक रोग (ब्रेस्ट कैंसर) से पीड़ित स्त्री के मनोभावों को अपने कलम से लिपिबद्ध किया है।

आज इक्कीसवीं सदी में भी भ्रूण हत्या एक बड़ी समस्या के रूप में बनी हुई है जबकि लड़कियाँ किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कम नहीं है। नारी में अदम्य साहस, त्याग, सेवा, समर्पण सब कुछ है फिर भी वह लाचार मानी जाती है, आखिर क्यों ? समय के साथ नारी में बदलाव तो आया है परंतु पुरुषों में नहीं। "नारी को नारी का शत्रु मानने का ही इतना गलाफाड़ प्रचार होता है, जबकि कसौटी महायुद्ध हों, या कि अदालती मुकदमेबाज़ी या फिर (हर देश के) साहित्य में पिता-पुत्र संबंधों की अभिव्यक्ति जितनी तल्ख-कड़वी और मारक टकराहटें वहाँ हमें अनादिकाल से पुरुषों के बीच में होती दीखती हैं, और किसी के बीच नहीं। फिर दो मनुष्य के बीच का टकराव जितना उनके व्यक्तित्व पर निर्भर नहीं करता, उतना करता है उनकी स्थिति पर। ......नारी को नारी से अलग करने भर से परिवारों में हिंसा और घृणा की प्रवृत्तियाँ नहीं मिटी हैं। मिटी है तो स्त्रियों की पराधीनता घटाने से।"[48] नेपाली उपन्यासों में इस दृष्टि से कई उपन्यास रचे गए हैं कि जहाँ नारी को नारी का दुश्मन माना गया है। चाहे सास-बहू में टकरार हो, या माँ-बेटी में, या फिर सौतन का एक-दूसरे से इर्ष्या करना हो। हृदयचन्द्र सिंह प्रधान कृत 'स्वास्नीमान्छे' में कमला और मोतीमाया के बीच द्वंद्व स्थापित होता है जिसका मूल कारण समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक व्यवस्था का है जो बहु-विवाह जैसी कुप्रथा को सामाजिक मान्यता देता है। कमला और मोतीमाया अपने-अपने भाग्य को कोसते हैं जबकि इन सभी परिस्थितियों के लिए प्रमोद और व्यवस्था दोषी है। 'शाल्मली' उपन्यास में भी शाल्मली की सास इस सम्बन्ध में कहती है कि "मैंने तो मर्द-औरत का मिला-जुला संसार देखा नहीं, जो

[48] पाण्डे, मृणाल (2017). ***परिधि पर स्त्री***. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन. पृष्ठ सं. 8.

देखा वह औरतों का देखा है। उन्हें मर्दों के आतंक से एक-दूसरे के प्रति कुढ़ते और घुलते देखा है। यह भी देखा, बहू, री ! कि औरत में ईर्ष्या नहीं होती, उसमें मर्द का हाथ होता है।"[49]

3.3.1 इक्कीसवी सदी और हिन्दी उपन्यास -

प्रभा खेतान द्वारा लिखा गया उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में एक ऐसी स्त्री की कहानी कही गई है जिसका शोषण बचपन से ही आरंभ होता है। प्रिया नामक स्त्री की संघर्ष यात्रा को प्रस्तुत उपन्यास में चित्रण किया गया है। प्रभा खेतान ने प्रिया नामक स्त्री पात्र को केंद्र में रखकर समस्त स्त्री जाति की व्यथा को अपने लेखनी के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। यह उपन्यास पुरुषप्रधान व्यवस्था के विरोध में एक विद्रोह है। उपन्यासकार द्वारा प्रिया के माध्यम से विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए नारी के यथार्थ रूप को एवं अस्मिता के लिए संघर्ष करती जुझारू स्त्री के रूप को दर्शाया गया है। विवाह के पश्चात् जीवन साथी के आने के बाद प्रिया का जीवन धीरे-धीरे परिवर्तित होने लगती है। उसका पति नरेंद्र पितृसत्तात्मक मानसिकता से ग्रसित है जिसके कारण वह हमेशा प्रिया के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाता है। करोड़पति होने के बावजूद उसका दिल बड़ा नहीं है। प्रिया के द्वारा किताबें खरीदने पर वह कहता है कि "इंटेलेक्चुअल बेकार पैसा खर्च करती हो, क्यों नहीं नेशनल लाइब्रेरी से लाकर पढ़ती। विवाह के पश्चात् प्रिया अपना लगभग जीवन दुख में ही व्यतीत करती है तथा आत्मसम्मान हेतु वह अपने इकलौते पुत्र संजीव से दूर रहकर अपना सारा ध्यान व्यापार पर लगा देती है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ कृत उपन्यास में उपेक्षित दादियों-नानियों की संवेदना की कहानी कही गयी है। बचपन में घटी घटनाओं के आलोक में वे दादी के प्रकृति, स्थिति और नियति को जानने के क्रम में उस पूरे परिवेश को खंगालती हैं, जो राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के नाम से इतिहास की पुस्तकों में दर्ज है।

[49] शर्मा, नासिरा. (2018). ***शाल्मली***. नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन. पृष्ठ सं. 93.

'माई' उपन्यास के रचियता गीतांजलि श्री अपने उपन्यास में अपने आसपास के चरित्र और घटनाओं को प्रधानता के साथ उभारती है।

अत: भूमंडलीकरणका युग एक ऐसा युग है जिसने दुनियाको बदलकर रख दिया है। संसार भर में मल्टीनेशनल कंपनियों का जाल बिछा हुआ है जिसके कारण बेरोजगारी और महंगाई की अस्थिरता हर जगह है। नब्बे प्रतिशत से भी अधिक जीवन को प्रमुखता से प्रभावित कर रहा है। बाजार और विज्ञापन ने हमें पूरी तरह से अपने काबू में कर लिया है। समाज की सोच में परिवर्तन हो रहा है लेकिन उसकी गति काफी धीमी है। जितनी तेजी से यह दुनिया बदल रही है, भौतिक आवश्यकताएँ बढ़ी है, नए-नए प्रयोग हो रहे हैं, उतनी तेजी से विचारों में परिवर्तन नहीं हो सका है।

साहित्यकार अपने समय का संवाहक होता है। आज के युग में रचनाकार चाहे स्त्री हो या पुरुष उसके अनुभव संसार का काफी विस्तार हुआ है इसलिए आजकल कई उपन्यासों की कथा विषय में विविधता देखने को मिल रही है। स्त्री उपन्यासकारों के सामने सबसे बड़ी चुनौती यही है कि वह जिस समाज में रहती है उसकी सोच अधिक प्रगतिशील नहीं है, मौकापरस्त है। जिस गति से उसकी सोच बदली है, उस गति से समाज तथा उसकी मानसिकता नहीं बदल पाया है।

स्त्री उपन्यासकार आज कई विषयों पर लिख रही हैं। मैत्रेयी पुष्पा से लेकर चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान, मन्नू भण्डारी, रमणिका गुप्ता, शरद सिंह, राजी सेठ आदि लेखिकाओं ने दलितों को अपने रचना का विषय बनाया। इसके अतिरिक्त आदिवासियों, राजनीतिक विषयों, तीसरा जेंडर, विदेशी संस्कृति, दलित साहित्य, प्रवासी साहित्य जैसे विषयों पर कई उपन्यास लिखे गए हैं। लिव-इन-रिलेशनशिप जिसे पश्चिम से आया माना जाता है लेकिन इसका इतिहास भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो आदिवासी समाज में विख्यात रहा है। हालांकि लिव-इन-रिलेशन भारत में सदियों से मौजूद है। ऐसा माना जाता है कि तीन जातियों – ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को छोड़कर बाकि सभी जातियों में भारत में लिव-इन-

रिलेशनशिप की प्रथा रही है, कहीं स्वेच्छा से तो कही शोषण से। मन्नू भण्डारी कृत 'महाभोज' (1979) उपन्यास स्त्री लेखन और लेखन की परम्परागत छवि को नकारती है। इसलिए इसे केवल स्त्री लेखन के परिधि के अंतर्गत लिखा गया उपन्यास नहीं माना जा सकता। प्रस्तुत उपन्यास में भारतीय राजनीति के अमानवीय चरित्र का चित्रण कर लेखिका ने आने वाले समय में भयावह संकट की ओर संकेत कर सचेत करने का प्रयास किया है। हिंदी साहित्य में महिला लेखन की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि समय के साथ परिवर्तनशील होते हुए भी उन्होंने अपने मूल्यों से समझौता नहीं किया। अधिकतर लेखिकाओं ने स्त्री की समस्या को भले ही अपने उपन्यास का केंद्र विषय बनाया हो लेकिन उन्होंने समानता का सन्देश दिया तथा वे समाज को प्रगतिशील बनाने के तरफ अग्रसर हुए।

मधु काँकरिया द्वारा रचित उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' (2010) में धर्म की आड़ में गुमनाम होते स्त्रियों के अस्तित्व को पहचान देने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में धार्मिक आडम्बरों तथा कुरितियों की शिकार हुई स्त्रियों की दासता का यथार्थ चित्रण हुआ है। पितृसत्तात्मक सोच का पुरजोर विरोध करते हुए स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व, स्वाभिमान एवं चेतना का पक्ष लेते हुए लेखिका कहती हैं कि "ज़िंदगी की इस नई वर्णमाला ने एक साथ कई क्षितिज खोले उसकी खुलती दुनिया के आकाश में कि लड़ाई सिर्फ़ भात और धर्म की ही नहीं, पुरुषों की इस दुनिया में उसे अपनी अस्मिता और सम्मान की लड़ाई भी लड़नी होगी।"[50] प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने स्त्री जाति की व्यथा को उजागर करते हुए धार्मिक आडम्बरों में फँसे स्त्रियों के साथ न्याय करने का भरसक प्रयास किया है।

मृणाल पाण्डे नारीवाद के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक 'परिधि पर स्त्री' में लिखती हैं कि नारीवाद पुरुषों का नहीं उनकी मानवीयता घटाने वाले उस छद्म मुखौटे का प्रतिकार करता रहा है, जो मर्दानगी के नाम पर गढ़ा गया है, और जिसके पीछे झूठी अहम्मन्यता और उत्पीड़क प्रवृत्ति के अलावा कुछ नहीं।

[50] काँकरिया, मधु. (2010) ***सेज पर संस्कृत.*** नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 151.

कुसुम खेमानी के स्त्री-विमर्श का फलक बिलकुल भिन्न है। उनके उपन्यासों में स्त्री का चरित्र उदात्त क़िस्म का होता है। धनाढ्य मारवाड़ी परिवार में जन्मी एक बच्ची की जड़िया बाई बनने की प्रक्रिया प्रस्तुत उपन्यास में हो चित्रण हो सका है। इसी उपन्यास में एक अतिथि का कथन कि "यह मारवाड़ी तो हो ही नहीं सकती, क्योंकि लड़कों से भी बढ़-चढ़कर खेलना और अन्याय के खिलाफ मारा-पीटी करना हमारे परिवार की लड़कियाँ तो सपने में भी नहीं सोच सकतीं। यह जरूर ही किसी बड़े पंजाबी घराने की सिर-चढ़ी औलाद होगी।"[51]

'श्रृंखला की कड़ियाँ' में महादेवी वर्मा ने स्त्री की सामाजिक दुर्दशा के इतिहास और वर्तमान, विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों, स्त्रियों की समस्याओं, हिंदू समाज में पत्नी की स्थिति, वेश्याओं की स्थिति, घर और बाहर के द्वंद्व में फंसी भारतीय स्त्री की यातना आदि का विश्लेषण तो किया गया ही है साथ ही उन्होंने स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता, उसकी शिक्षा तथा उसके जीवन में यथार्थ और आदर्श के द्वंद्व का भी विवेचन किया है।

3.3.2 इक्कीसवीं सदी और नेपाली उपन्यास -

आदिकाल से ही नारी के ऊपर हुए शोषण के कई उदाहरण हमारे सामने है। पितृसत्तात्मक समाज के दृष्टि में नारी का स्थान हमेशा से नगण्य रहा है। इस सम्बन्ध में सुषमा मोक्तान (गुरुङ) लिखती हैं - "पर स्त्रीमाथि नजर लगाउनु पाप हो भनिन्छ। अर्कातिर रामायणकालमा लङ्केश्वर रावणले नै सीतालाई हरण गरेका थिए। फलस्वरूप राम र रावणमाझ भीषण युद्ध भएको थियो। एकजना धोबीको कुरामा आएर पवित्रताकी मूर्ति सीतामाथि शङ्का गरी रामले अग्निपरीक्षा लिएका थिए। यो पनि एकप्रकारको शोषण होइन र !"[52] आज इक्कीसवीं सदी में भी स्त्रियाँ इन मानसिकता से मुक्त नहीं हो सकी है।

---

[51] खेमानी, कुसुम. (2016).***जड़िया बाई***. नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 14.
[52] पीयूष, अर्जुन. (2015). ***नारी आभा : समकालीन नारीलेखन अध्ययनविशेष***. दार्जीलिंङ : प्रेमफूल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 280.

'समलिङ्गी सम्बन्ध' (वि. सं. 2072) नेपाली महिला उपन्यासकार कल्पना खरेल द्वारा रचित पहला ऐसा उपन्यास है जिसका विषय समलैंगिक सम्बन्ध पर केन्द्रित है। प्रेम, यौन और जीवन को बिना अलग किए नहीं सोचा जा सकता। नेपाली समाज में जितनी उदारता पायी जाती है, प्रेम और यौन के सम्बन्ध में उतनी ही जटिलता भी पायी जाती है और तो और समलैंगिक सम्बन्ध जैसे विषय पर समाज का रवैया अत्यंत असंवेदनात्मक है। प्रस्तुत उपन्यास की दो पात्र जुनू और रिना एक-दूसरे को अति प्रिय है। दोनों साथ रहना चाहतीं हैं, लेकिन उनके परिवारवालों को यह स्वीकार्य नहीं। समाज के संस्कार, माता-पिता के इज्जत के खातिर जुनू को सबिन के साथ विवाह करना पड़ता है। वह अपने वैवाहिक जीवन में असंतुष्ट है, नाखुश है क्योंकि वह रिना से प्यार करती है और उसी के साथ जीवन बिताना चाहती है।

नेपाली उपन्यासकार प्रभा कैनी द्वारा लिखा गया उपन्यास 'अनावृत' (वि. सं. 2067) में नारी समस्या को केंद्र में रखकर विज्ञान, प्रविधि और हर क्षेत्र में पर्याप्त विकास के महत्व को दिखाया गया है। विश्व में अभी भी नेपाली नारियों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। इस कटु सत्य को प्रस्तुत उपन्यास में दिखाया गया है। "यस उपन्यासमा नेपाली समाजमा विधवा प्रति गरिने दुर्व्यवहार र बोक्सिका नाममा गरिने अमानवीय कार्य पनि चित्रित छ।"[53] (प्रस्तुत उपन्यास में नेपाली समाज में विधवा के प्रति होने वाले अत्याचार तथा डायन की संज्ञा देकर उस पर होने वाले अमानवीय व्यवहार का भी चित्रण किया गया है।) साथ ही यह भी शिक्षा दी गई है कि जब तक महिलाएँ आर्थिक रूप से सबल नहीं होतीं तब तक उनके ऊपर होने वाले सामाजिक शोषण कम नहीं होंगे। उपन्यास में इस दृष्टि को भी दर्शाया गया है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण ही नारियों को दुःख भोगना पड़ रहा है। प्रभा कैनी कृत उपन्यास

[53] लुइटेल, डॉ. खगेंद्रप्रसाद. (2069). ***नेपाली उपन्यासको इतिहास***. काठमाण्डौ : नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान. पृ. सं. 297.

'अनावृत' में आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना स्त्रियों के लिए अत्यंत आवश्यक है, इस दृष्टिकोण का विशेष रूप से चित्रण किया गया है।

नेपाल की आर्थिक तथा शैक्षिक स्थिति कमजोर होने के कारण वहाँ के अधिकांश नागरिक नौकरी करने विदेशों में जाते हैं तथा किसी तरह वहाँ जीवन भर रहने की जद्दोजहद में लग जाते हैं जिसका सीधा प्रभाव नेपाली समाज के महिलाओं पर पड़ता है। विदेशों में अच्छी जिंदगी व्यतीत करने का लालच दिखाकर कुछ लोग गाँव के भोले-भाले परिवार को ठगकर उनके जवान लड़कियों का शोषण करते हैं। उनकी शादी प्राय: ऐसे व्यक्तियों के साथ कर दी जाती है जिसका विदेश में केवल नौकरी होना ही पर्याप्त है। वह क्या काम करता है? कैसा दिखता है? यह जाने बिना ही दो-तीन दिनों के भीतर ही लड़की वाले अपनी बेटी को सौप देते हैं। उनके माता-पिता को ऐसा लगता है कि उनके बच्ची बहुत भाग्यशाली है जो ऐसा वर मिल रहा है। 'अर्की आइमाई' की तारा के साथ भी कुछ ऐसा होता है विवाह किए बिना ही उसके गाँव वाले उसे सुवर्ण के साथ अमेरिका भेज देते हैं। तारा यह भी नहीं जान पाती कि उसके साथ क्या हो रहा है? अपने से दोगुने उम्र के व्यक्ति के साथ उसका यूँ जाना उसे स्वीकार्य नहीं। वह क्षुब्ध होकर सोच में पड़ जाती है - "सुवर्णजीको निधारमा रातो टिका टाँसिरहँदा उनको र मेरो आर्थिक दूरी त थियो नै उमेरको दूरी पनि कसैला होस रहेन।"[54] (अर्थात् माथे पर लाल टिका लगाने के दौरान वह सोचने लगती है कि मेरे और सुवर्ण जी के बीच आर्थिक अंतर तो था ही लेकिन किसी को यह आभास भी नहीं हुआ कि उम्र में भी काफ़ी अंतर है।)

उपन्यासकार गीता केशरी द्वारा रचित उपन्यास 'सौगात' (वि. सं. 2046) में भी ऐसे नारियों का चित्रण किया गया है जिन्हें धर्म, परम्परा एवं सामाजिक बाध्यता के कारण अनमेल विवाह का शिकार होना पड़ता है। गीता केशरी के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष समानता का मूल स्वर व्यंजित होता है। लीला

[54] कार्की, नीलम. (2013). ***अर्की आइमाई***. भक्तपुर : शब्दहार क्रियशंस. पृष्ठ सं. 14.

लुइटेल अपनी पुस्तक में लिखती हैं – "सामाजिक अंधविश्वास, रुढ़िग्रस्त धार्मिक तथा पारम्परिक मान्यता, पक्षपातपूर्ण कानुनी नियमहरूबाट नारीहरू तिरस्कृत र अपहेलित भएको युगीन सन्दर्भमा नारी स्वतंत्रता र अस्तित्वको रक्षाका पक्षमा यिनका उपन्यासहरूले आवाज उठाएका छन्।"[55]

पितृसत्तात्मक समाज में जब एक स्त्री जन्म लेती है तो जन्म से ही उसके काम के बारे में, भविष्य के बारे में पिता द्वारा निर्णय लिया जाता है। यदि किसी कारणवश घर में पिता नहीं है तो भाई द्वारा निर्णय लिया जाता है। बेटी, बहन, पत्नी, माँ की भूमिकाएँ निभाते-निभाते रिश्तों के भँवर में अपने आप को ही भूलने लगती है। यहाँ पर उसका 'होना' कोई विशेष महत्व नहीं रखता। संसार में आते ही उसके हिस्से का सारा काम उसे समझा दिया जाता है। यह बिना जाने कि उसकी खुद की क्या इच्छाएँ एवं लक्ष्य है, चूँकि एक स्त्री के रूप में उसने जन्म लिया है इसलिए यह कार्य करना उसका धर्म (कर्तव्य) बन जाता है। उसे स्वतंत्र इकाई मानने को अब भी समाज का बड़ा हिस्सा तैयार नहीं है। इसी मानसिकता की परिणति ही है कि आज एक पिता अपने दामाद को बेटी पालने जैसे शब्द का प्रयोग करता है। स्वयं तारा के पिता सुवर्ण (दामाद) से कहता है - "अब हजुरकै भरोसा छ हजुर । सानै छ, गल्ती गर्ली । शहरको रहनसहन था'छैन । भुलमा माफी दिनुहोला। के भनम् मारे पाप पाले पुण्य हजुर।"[56]

समाज में स्त्रियाँ यदि किसी तरह शिक्षा का अर्थ समझकर आगे बढ़ना चाहे तो उसमें भी परिवार/समाज किसी न किसी रूप में बाधा दे ही जाते हैं। इस समस्या को लेखिका 'युगसन्धि' उपन्यास के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत करती हैं। प्रस्तुत उपन्यास की लक्ष्मी खूब पढ़ना चाहती है, आगे बढ़ना चाहती है, उसके कई सपने हैं जो शिक्षा से ही मिल सकती है। लेकिन उसके पिता पढ़ाई पूरी होने से पूर्व ही उसकी शादी तय कर देते हैं और जब औपचारिकतावश विवाह के सम्बन्ध में उसका निर्णय जानना चाहा तो वह अत्यन्त दुखी होकर कहती है - "के भन्नु । आफ्नो मनको कुरा भन्ने स्वाधीनता मेरो

[55] लुइटेल, लीला. (2068). ***नेपाली महिला उपन्यासकार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन, पृष्ठ सं. 139.
[56] कार्की, नीलम. (2013). ***अर्की आइमाई***. भक्तपुर : शब्दहार क्रियशांस. पृष्ठ सं. 15.

भएको भए म पढ़ने थिएँ। छैन भनि तिमिहरूको जे खुसी त्यही गर।"[57] (क्या कहूँ यदि अपने इच्छानुसार निर्णय लेने का मुझे अधिकार होता तो आज मैं पढ़ाई कर रही होती और यदि अधिकार नहीं है तो आप लोगों को जो इच्छा हो वह करें।)

नया देवी द्वारा रचित उपन्यास 'कौशल्या' में बेटों द्वारा माँ की परवाह न करना, अंतर्द्वन्द्व में जीने हेतु बाध्य होती एक स्त्री का चित्रण किया गया है जो सिर्फ अपने बच्चों की भलाई चाहती है। अपने भरे-पूरे परिवार में भी वह बिलकुल अकेली होती है। उसका पति गजाधर हमेशा सामाजिक कार्यों में व्यस्त रहता है इसलिए कौशल्या को समय नहीं दे पाता है। वह लगातार प्रयास करती रहती हैं कि तीनों बेटे-बहुओं को एक साथ रखे। परन्तु परिस्थितियाँ ठीक इसके विपरीत होती हैं। वह वृद्ध महिला अपने पोती-पोतियों से मिलने के लिए हमेशा तड़पती रहती है लेकिन किसी पर दबाव नहीं बनाती, बल्कि कहती है – "हाम्रो सबैथोक छ हाम्रो चिन्ता नगर्नु कसैले। तिमीहरुलाई जस जसलाई हाम्रो आवश्यक छ आउनु बस्नु हामीसँग।"[58]

अत: प्रस्तुत अध्याय में वैदिक काल से लेकर, बौद्धकाल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल में असंख्य नारियों की सामाजिक स्थिति में निरंतर बदलाव देखने को मिला। उन्होंने अपने-अपने क्षेत्रों में, काल में प्रचलित रूढ़िवादी मान्यताओं का खंडन किया तथा यह सन्देश दिया कि स्त्रियों के लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं है। प्रेमचंद कृत 'सेवासदन' में दर्शाया गया है कि सामाजिक कुरीतियाँ किस प्रकार स्त्रियों के जीवन को वेश्यावृत्ति की ओर जाने हेतु विवश करती है। प्रेमचंद 'सेवासदन' में सुमन की बेबसी के आलोक में सम्पूर्ण स्त्री जाति को स्वालम्बी, महत्वाकांक्षी, साहसी की ओर उन्मुख कराते हुए पराधीनता की बेड़ियों से मुक्ति दिलाना चाहते हैं। 'आज बाज़ार बंद है' में भी नायक कोठे में मौजूद सभी स्त्रियों को ये अपमानित जीवन त्यागकर स्वालम्बी बनने की प्रेरणा देता है। सुमित के आ जाने के बाद

[57] देवी, नया. (2002). ***युगसन्धि***. तेजपुर :जय नारायण लुइटेल. पृष्ठ सं. 68.
[58] देवी, नया. (2006). ***कौशल्या***. तेजपुर : जय नारायण लुइटेल. पृष्ठ सं. 120.

पार्वती तथा अन्य स्त्रियों का जीवन धीरे-धीरे सामान्य औरतों की भांति हो रहा था। "अब कोठा नंबर आठ से हफ्ता जाना बंद हो गया था। यह बात चौंकाने वाली थी। परंपरा के खिलाफ यह कैसे हो गया ? अंधेरे से उजाले की ओर वेश्याओं के कदम बढ़ने लगे थे। सेक्स वर्कर्स के बीच चेतना आने लगी थी।"[59] हिंदी एवं नेपाली उपन्यासों के अध्ययन से यह कहा जा सकता है कि स्त्रियों की स्थिति समय के साथ परिवर्तित होते हुए आज उसका सन्दर्भ कई मायनों में हमारे समक्ष विद्यमान है। आदिकाल से आधुनिककाल तक आते-आते स्त्रियों ने अपने पूर्वजों के बलिदान को न सिर्फ समझा बल्कि अपने भविष्य के लिए भी चिंतित दिखीं। किसी भी देश व समाज की उन्नति वहाँ के स्त्री के स्थिति पर निर्भर रहता है इस बात को नहीं नकारा जा सकता। इसके लिए स्वयं स्त्री को बीड़ा उठाना होगा, उसे ही सामने आना होगा, शिक्षित होना होगा और संघर्ष करना होगा। ये सभी भाव तत्कालीन उपन्यासकारों के रचनाओं में परिलक्षित होती हैं। समाज को जागरूक करने का कार्य आज भी उपन्यासकारों द्वारा किया जा रहा है। स्त्री और पुरुष दोनों में समानता की भावना को विकसित करने से ही समाज की वास्तविक उन्नति होगी। कोई भी पक्ष एक-दूसरे से श्रेयस्कर नहीं हो सकता बल्कि बराबर होगा।

***

[59] नैमिशराय, मोहनदास. (2004). ***आज बाजार बन्द है.*** नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 136.

नेपाली उपन्यास साहित्य में स्त्री चेतना - आरम्भ से आधुनिक युग तक

2.1 सन् 1902 से सन् 1934 तक

2.1.1 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना

2.1.2 स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री-चेतना

2.2. सन् 1934 से सन् 1990 तक

2.2.1 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना

2.2.2. स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना

2.3 सन् 1990 से अद्यतन

2.3.1 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना

2.3.2. स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना

साहित्य के अनेक विधाओं में से उपन्यास भी एक विधा है। आधुनिक साहित्य में इसने अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाकर लोकप्रियता हासिल की है। इसके मुख्य कारण हैं – उपन्यास में रोचकता, वृहत जीवन का परिचय और सत्य का आभास। जिसके कारण जीवन और समाज को नज़दीकी से देखा जा सकता है तथा उसे विश्लेषित कर जीवन के प्रत्येक पहलू को चित्रण कर भावाव्यक्ति को सशक्त एवं सक्षम सिद्ध करने में मदद करता है। इसके स्वरुप को लेकर चाहे मतभेद क्यों न हो अंतत: साहित्य का उद्देश्य तो जीवन और समाज ही है। समाज के अंतर्विरोधों, व्यक्ति मन के अंतर्द्वंद्वों तथा वास्तविक जीवन के धरातल में पड़ने का बारम्बार प्रयास करते लोगों के प्रतिबिम्बन में उपन्यास का कल्पनालोक निर्मित होता है। इसलिए कहा जाता है कि उपन्यास जीवन और जगत् के प्रति एक विहंगम दृष्टि है जिसको समझने और चित्रण करने का प्रयत्न अत्यंत यथार्थत्मक होता है।

उपन्यास आतंरिक एवं बाह्य प्रवृत्तियों का चित्रण कर जीवन को मापता है, उसका मूल्य खोजता है और समाज के हाथ में थमाता है, उसे गति और दिशा प्रदान करता है। इस प्रकार वह प्रेरणा देता रहता है। कृष्ण चन्द्रसिंह प्रधान उपन्यास की परिभाषा देते हुए कहते हैं - "उपन्यास अपने मनोरंजनात्मक कथात्मकता के कारण औरों से रोचक, विस्तृत परिवेश के कारण और व्यापक, बंधनहीन स्वरुप के कारण हमेशा परिवर्तनशील, जीवन के निकटतम चित्रण के कारण यथार्थ, प्रयोगधर्मी सम्भावना के कारण हमेशा नवीन और मानसिक रहस्य का उद्घाटन कर सकने के कारण यह गहन एवं सूक्ष्म है।"[1]

विषयवस्तु के बिना कृति का निर्माण संभव नहीं है तथा यह कृतों को अस्तित्व प्रदान करता है। कृति में बाह्य प्रकाशन के सारभूत अंश व सारतत्व एवं आंतरिक तत्व को विषयवस्तु कहा जाता है। उपन्यास में मुख्यत: कथानक को विषयवस्तु के रूप में देखा जाता है। कथानक बहुत हद तक घटना, स्थिति, अवस्था एवं प्रसंगों को योजनाबद्ध तथा पाठकों का ध्यान आकर्षित करने में सक्षम है। एक उपन्यास में विभिन्न विषयवस्तु प्रस्तुत होने पर उनमें मुख्य रूप से सबसे अधिक महत्व किस

[1] प्रधान, कृष्ण चन्द्रसिंह. (वि. सं. 2037). ***नेपाली उपन्यास र उपन्यासकार***. पुलचोक : साझा प्रकाशन, पृष्ठ सं. 02.

विषय को दिया गया है उसके आधार पर उपन्यास का वर्गिकरण किया जाता है। उपन्यास का सृजन कई विषयवस्तु को केंद्र में रखकर की जाती है जैसे- समाज, इतिहास, मनोविज्ञान, राजनीति, संस्कृति, दर्शन, विचार, रहस्य, रोमांस समेत विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित विषय आदि। उपन्यास में प्रयुक्त विषयवस्तु एवं कथानक स्रोत के आधार पर नेपाली उपन्यास को मुख्यत: निम्नलिखित प्रकार में विभाजित किया जा सकता है – सामाजिक उपन्यास, राजनैतिक उपन्यास, सांस्कृतिक उपन्यास, धार्मिक-पौराणिक उपन्यास, दार्शनिक उपन्यास, वैचारिक उपन्यास, रहस्य-रोमांसमूलक उपन्यास, विविध विषयक उपन्यास आदि।

नेपाली उपन्यास का उद्भव और विकास -

नेपाली साहित्य के इतिहास में देखा जाए तो उपन्यास लेखन का प्रारम्भ अन्य विधाओं के समकक्ष शुरू होता है एवं इसकी विकास-प्रक्रिया काफी लंबी मानी जाती है। पुराण, महाभारत, नीति, उपदेशमूलक कथा, नाटक आदि विभिन्न ग्रन्थों के अनुवाद से ही नेपाली उपन्यास लेखन की पृष्ठभूमि तैयार होती है। नेपाली आख्यान का प्रारम्भ मुख्यत: संस्कृत साहित्य के आख्यानों से हुआ तत्पश्चात् अन्य स्रोत के रूप में हिन्दी, फ़ारसी, उर्दू, अरबी, बंगाली, अंग्रेजी से नेपाली उपन्यास का आधार बना। इसलिए नेपाली उपन्यास के पृष्ठभूमि के रूप में संस्कृत से अनूदित ग्रन्थों के रूपांतरण रूप को प्रमुखता से लिया जाता है।

संस्कृत साहित्य के महाभारत विराटपर्व, हितोपदेश, स्वस्थानी व्रतकथा, दशकुमारचरित, कादम्बरी आदि जैसे गद्य में लिखे गए प्रसिद्ध आख्यान व उपन्यास लेखन की पृष्ठभूमि निर्माण हुई है। प्रारम्भ से ही उपन्यास का रूप निर्मित होने से पूर्व इस प्रकार के आख्यानों की लंबी परंपरारही है। इसलिए ऐसे रचनाओं को एक प्रकार से आख्यान साहित्य के विकास के रूप में देखा जाना चाहिए। आख्यात्मक ढंग से लिखे गए ऐसी रचनाएँ उपन्यास लेखन का पूर्व प्रयास माना जाता है। कई कृतियाँ मुद्रण के अभाव में, हस्ताक्षर स्पष्ट न होने से, पाण्डुलिपि स्पष्ट न होने के कारण पुनर्लेखन किया गया

जिसके कारण एक ही कृति के कई रूप देखने को मिले। साहित्य के सभी विधाओं का प्राथमिक काल ही उसका पृष्ठभूमि होता है उसी प्रकार यह नेपाली उपन्यास में भी लागू होता है। नेपाली उपन्यास के प्राथमिक काल में मौलिक उपन्यासों की रचना तो नहीं हुई पर धार्मिक-पौराणिक तथा नैतिक-उपदेशक आदि ग्रन्थों का अनुवाद हुआ। शक्तिबल्लभ अर्ज्याल द्वारा रचित 'महाभारत विराटपर्व' वि. सं. 1827 से नेपाली आख्यान या उपन्यास लेखन का उत्थान माना जाता है।

नेपाली उपन्यास के विकास प्रक्रिया को निम्नलिखित नामकरणों के माध्यम से समझा जा सकता है -

- प्राथमिक काल (वि. सं. 1827-1945)
- माध्यमिक काल (वि. सं. 1945-1990)
- आधुनिक काल (वि. सं. 1991-अद्यतन)

उपरोक्त काल विभाजन के आधार पर नेपाली उपन्यास के इतिहास को समझा जा सकता है, लेकिन भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति को निश्चित कर देना भी पूर्ण तरीके से सही नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक ही चरण के उपन्यासकर भिन्न-भिन्न कालखण्ड में कई प्रवृत्तियों के उपन्यास लिख सकते हैं या एक ही उपन्यास में कई प्रवृत्तियों को स्थान देकर अपनी रचना कुशलता को अभिव्यक्त कर सकता है। कभी-कभी कई उपन्यास लिखने के पश्चात् भी उपन्यासकर किस प्रवृत्ति से सम्बन्धित है यह स्पष्ट नहीं हो पाता। आधुनिक नेपाली उपन्यास के अंतर्गत पहले, दूसरे और तीसरे चरण के उपन्यासों ने प्रारम्भ से ही अपनी पहचान बनाने में सफलता पायी है। इसी प्रकार हम चौथे चरण की ओर बढ़ते हैं तो इसमें स्पष्टता नहीं दिखती।

आधुनिक विधा के रूप में उपन्यास के उदय का इतिहास उतना प्राचीन नहीं है। नेपाली में विक्रम बीसौं शताब्दी से इसका प्रारम्भ उपन्यास का पूर्वाधार कथा साहित्य ही है जो वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि ग्रंथों में देखने को मिलता है। दशकुमारचरित, कादंबरी जैसे उपाख्यानों-प्रेमाख्यानों को

उपन्यास मानने वाले भी लोग है। वि. सं. 1827 से 1946 के समय के लोककथा परम्परा का आख्यान अथवा नेपाली उपन्यास लेखन का पूर्वाधार माना जा सकता है।

नेपाली में प्रारम्भकालीन आख्यानों, उपाख्यानों का उद्गम मुख्य रूप से दो स्रोतों में हुआ है- धार्मिक उपाख्यान और लोककथा। इसी से प्रेरित एवं प्रोत्साहित होकर बुजुर्गों का ध्यान इस ओर गया होगा। जनसमाज में भी इसका अनुकरण धीरे-धीरे किया जाता रहा होगा जिसके कारण ये परम्पराएँ चली। इसका आधार पुराण तथा संस्कृत साहित्य ही है। चाहे धार्मिक चेतना से प्रेरित पौराणिक उपाख्यान हो या मनोरंजन के दृष्टि असाधारण लोककथा हो, इसके मूल में प्राय: शिक्षाप्रद नीति-उपदेश, नैतिकता की बात ही अन्तर्निहित है। महाभारत के सभी पर्वों का नेपाली अनुवाद होने लगा जिसके फलस्वरूप वि. सं. 1827 में लिखित 'विराटपर्व' के अनुवादक शक्तिवल्लभ अज्यार्ल ने सर्वप्रथम नेपाली में गद्य परम्परा का आरम्भ किया। इसके बाद नेपाली में दूसरा आख्यानात्मक कृति है 'हितोपदेश मित्रलाभ' 1833 जो भानुदत्त के द्वारा लिखा गया है।

उपन्यास का मुख्य विषय जीवन है जो व्यक्तिगत और समाजिक दोनों है। व्यक्ति और समाज दोनों आपस में जुड़ी हुई है या कहें कि दोनों एक दूसरे के पूरक है। वर्त्तमान साहित्य की सबसे लोकप्रिय और नया विधा उपन्यास है क्योंकि यह मनोरंजन के साथ जीवन की बहुमुखी रूप को विस्तार से व्यक्त करने में सक्षम है। तत्कालीन यथार्थ को ध्यान में रखते हुए उपन्यासकार अपने बुद्धि, अनुभव और कल्पना शक्ति (जो दूरदर्शिता भी हो) के आधार पर ऐसे उपन्यास का सृजन करता है जो पाठक वर्ग के हृदय को उपन्यासों में घटित समस्याओं से परिचित करवाता है। 'उपन्यास' शब्द संस्कृत के तत्सम शब्द से लिया गया है जिसका निर्माण उप+नि+अस्+घअ से हुआ है। इसका शाब्दिक अर्थ है किसी वस्तु को निकट रखना।

नेपाली लेखकों के द्वारा दिए गए उपन्यास की परिभाषा :-

- कृष्णचन्द्र सिंह प्रधान– 'उपन्यास मानव जीवन के सम्पूर्णता की अभिव्यक्ति है।'[2]
- इन्द्रबहादुर राई – 'यथार्थसँग परिचयन, सत्यको सन्धान, मुल्यको संरक्षण, जीवन वैविध्यमाथी एकरूपता प्रदान, जीवन शिक्षण, व्यक्तित्वको पुनरान्वेषण एवं मानवताको प्राप्ति उपन्यासका प्रमुख दायित्व हुन्।'[3]
- नेपाली बृहद् शब्दकोश – "धेरै अध्याय वा खण्डहरूमा लेखिने लामो साहित्यिक कथा; चरित्रप्रधान गद्य महाकाव्य नै उपन्यास हो।"[4]

नेपाली उपन्यास का प्राथमिक काल -

वि. सं. 1827 से 1945 तक के अवधि को प्राथमिक काल के अंतर्गत रखा गया है। नेपाली उपन्यास की विकास प्रक्रिया का प्रारम्भ वि. सं. 1827 में शक्तिबल्लभ अर्ज्याल द्वारा कृत 'महाभारत विराट पर्व' से होता है जो कि संस्कृत भाषा से नेपाली भाषा में अनूदित है। इन 118 वर्ष के समयावधि में अनूदित आख्यानात्मक कृतियाँ रची गयीं जिनमें नीति, उपदेशमूलक, धार्मिक, वीरभावनामूलक और मनोरंजनात्मक देखने को मिलता है। इस प्रकार की कृतियों में कुछ मात्रा में औपन्यासिकता की झलकियाँ मिलने के कारण इस काल की उपन्यास को पृष्ठभूमि काल माना जा सकता है। प्राथमिक काल के उपन्यास शुद्ध उपन्यास के अंतर्गत नहीं आ पाते हैं लेकिन, ये उपन्यास नेपाली उपन्यास लेखन के पूर्वाधार के रूप में स्थापित है। इस क्रम में दूसरा आख्यानात्मक कृति 'हितोपदेश मित्रलाभ' है जो भानुदत्त द्वारा वि. सं. 1833 में प्रकाशित हुआ था। इस काल की अन्य कृतियों में शक्तिबल्लभ अर्ज्याल द्वारा अनुदित 'हास्यकदम्ब' (वि. सं. 1855) 'महाभारत विभिन्न पर्व' (वि. सं. 1882),

[2] दुङ्गेल, भोजराज एवं दाहाल, दुर्गाप्रसाद (2070) '***नेपाली कथा र उपन्यास***' काठमाडौं : एम.के. पब्लिसर्स, पृष्ठ सं. 194.
[3] वही, पृष्ठ सं. 194.
[4] वही पृष्ठ सं. 195.

ललित त्रिपुरसुन्दरी कृत 'राजधर्म' (वि. सं. 1888), भवानीदत्त पाण्डे अनुदित 'मुद्राराक्षस' (वि. सं. 1892) आदि है।

जैसा कि विदित है नेपाली उपन्यास की पृष्ठभूमि शक्तिबल्लभ अर्ज्याल कृत 'महाभारत विराटपर्व' वि. सं. 1827 से माना जाती है। इसके पश्चात् उपन्यास लेखन की पूर्वपीठिका के रूप में पृथ्वीनारायण सिंह कृत 'दिव्योपदेश' (वि. सं. 1831) तथा जङ्गबहादुर कृत 'बेलाइत यात्रा' (वि. सं. 1990) को लिया जा सकता है। 'दिव्योपदेश' में घटना, सहभागी एवं परिवेश आदि का वर्णन देखने को मिलता है साथ ही खास स्थान, समय एवं वातावरण को भी समाहित किया गया है।

जङ्गबहादुर कृत 'बेलाइत यात्रा' एक यात्रात्मक रूप में लिखा गया उपन्यास है। यह यात्रा साहित्य के रूप में नेपाली साहित्य में उल्लेखनीय है। वि. सं. 1906-07 के समय जङ्गबहादुर ने समुद्र के रास्ते होते हुए फ्रांस तथा उससे समीपस्थ राज्यों का भ्रमण किया था उसी का एक वर्णनात्मक रूप यह उपन्यास है। यह उपन्यास अत्यंत विस्तृत फ़लक में लिखा गया है जिसके कारण इसे उपन्यास लेखन का प्रारंभिक बिन्दु भी माना जाता है।

उपरोक्त दोनों कृति पूर्ण रूप से आख्यानात्मक कृति न होकर इनमें निबंधात्मक गुण प्राप्त होते हैं जिसके कारण नेपाली आख्यान व उपन्यास के इतिहास में इनका महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। वैसे देखा जाए तो नेपाली उपन्यास के प्राथमिक काल में वास्तविक उपन्यास नहीं लिखे गए किन्तु समय-समय पर कुछ कृतियों में कुछ तत्व ऐसे पाये गए, जिसे नेपाली उपन्यास का विकासक्रम माना जाता है। इस काल में कई धाराएँ पाये गए जिसमें प्रमुख रूप से अनुवाद रूपान्तरण की संख्या अधिक है। इसी काल में ऐतिहासिक धारा के अंतर्गत शक्तिबल्लभ अर्ज्याल की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है। उनके द्वारा रचित 'महाभारत विराटपर्व' एवं 'हास्यकदम्ब' उपलब्ध है। 'महाभारत विराटपर्व' में महाभारत के घटनाओं को सरल भाषा में गद्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'हास्यकदम्ब' भी संस्कृत से अनूदित कृति है। इसका मूल रूप नाटक होने के बावजूद इसका अनुवाद गद्य के रूप में हुआ है और यह वर्णनात्मक है। इसी प्रकार अन्य एक रचनाकार भानुदत्त कृत

'हितोपदेश मित्रलाभ' (वि. सं. 1833) नामक कृति उपलब्ध है। इस कृति का मुख्य उद्देश्य मानवों को नैतिक उपदेश प्रदान करना है। इसी कड़ी में सुंदरानन्द बाँडा कृत 'आध्यात्म रामायण' (वि. सं. 1890), 'त्रिरत्न सौन्दर्यगाथा' (वि. सं. 1890) उपलब्ध है। भावनीदत्त पाँडे ने 'मुद्राराक्षस' (वि. सं. 1892), 'हितोपदेश मित्रलाभ' (1892), 'महाभारत उद्योगपर्व', 'विराटपर्व' एवं 'शांतिपर्व' (1892), 'मार्कण्डय पुराण' (1892) आदि कृतियों का अनुवाद किया है।

अत: यह कहा जा सकता है कि इस काल में उपन्यास तो दूर मौलिक कृति की भी रचना नहीं हुई है एवं इसमें उपन्यास में होनी वाली विशेषताएँ नहीं पाई जाती है। किन्तु महाभारत विराटपर्व' मुद्राराक्षस, हितोपदेश और हास्यकदम्ब, आध्यात्म रामायण, त्रिरत्न सौन्दर्यगाथा जैसे कृतियों का अनुवाद नेपाली भाषा में होना इस काल की सबसे बड़ी उपलब्धि रही है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि उपरोक्त अनूदित गद्याख्यानों में मुद्राराक्षस, हितोपदेश और हास्यकदम्ब इन तीनों अनूदित नाटकों में उपन्यास के तत्व पाए गए हैं जो नेपाली साहित्य के उपन्यास विधा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्राथमिक काल के गद्याख्यानों की विशेषता यही थी कि ये धार्मिक ग्रंथ (पुराण, रामायण एवं महाभारत) थे, जो समाज को सही दिशा दिखाने का कार्य करता था। इसलिए नेपाली उपन्यास के प्राथमिक काल के उपन्यास लेखन को पृष्ठभूमि काल के रूप में लिया जाता है।

नेपाली उपन्यास का माध्यमिक काल -

नेपाली उपन्यास के इतिहास में वि. सं. 1946 से 1990 तक की अवधि को माध्यमिक काल माना जाता है। यह काल राणा शासन के भोग विलास का चरम काल रहा है। समय के साथ उनके षड्यंत्रपूर्ण विचारधारा को जब जनता ने जाना तो सत्तासीनों ने जनता को भी भोग-विलास मनोरंजन की तरफ आकृष्ट किया। यही कारण है कि तत्कालीन साहित्य में इस प्रवृत्ति का साहित्य लेखन अधिक रहा। इसी समय में शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से भारत के प्रसिद्ध शैक्षिक नगरी बनारस जाते थे जहाँ नेपालियों ने फारसी, अरबी, उर्दू, हिन्दी, बंगाली, अंग्रेजी आदि विभिन्न स्रोत के

आख्यानमूलक रचनाओं को नेपाली भाषा में अनुवाद करना शुरू किया। उनमें से शदाशिव शर्मा अधिकारी, गिरिशबल्लभ जोशी समेत कई और युवायें विभिन्न स्रोत के रहस्यात्मक, रोमांसमूलक, जासूसी, तिलस्मी, एयारी रचनाओं से प्रभावित हुए।

शिवदत्त शर्मा कृत 'वीर सिक्का' (वि. सं. 1946) से नेपाली उपन्यास का माध्यमिक काल का आरंभ माना जाता है। 'वीर सिक्का' अनूदित कृति होने के बावजूद इनमें कुछ मौलिकता परिलक्षित होती है। तत्कालीन प्रचलित धारा से हटकर 'वीर सिक्का' में रहस्यमूलक, जासूसी, तिलस्मी प्रवृत्तियुक्त आख्यान प्रस्तुत कर आगे की तरफ दिशा प्रदान किया गया है। यह वास्तव में उपन्यास न होकर गद्यों का संकलन है जिसमें मनोरंजक कथाएँ संकलित किया गया है। तथापि इसमें घटनाओं का आधिक्य, काल्पनिकता, कथाकथन, नवीन ढाँचा तथा अनेक मानवीय तथा मानवेतर अलौकिक सहभागी का प्रयोग होने के कारण इसने औपन्यासिक संरचना भी प्राप्त की है। इस काल के उपन्यासों में पायी जाने वाली विशेषता एवं प्रवृत्तियों को निम्नलिखित धाराओं में विभाजित किया गया है - श्रृंगारिक धारा, मनोरंजनात्मक धारा, रहस्य-रोमांसमूलक धारा, धार्मिक-पौराणिक धारा, नैतिक-औपदेशिक धारा, सामाजिक धारा, ऐतिहासिक धारा आदि।

नेपाली उपन्यास के विकास में पत्र-पत्रिकाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान देखा जाता है। विशेषकर नेपाली उपन्यास के माध्यमिक काल को गति प्रदान करने में तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं का योगदान रहा है। नेपाली उपन्यास के माध्यमिक काल में 'गोरखापत्र' (वि. सं. 1958) जो समाचारमूलक पत्रिका के रूप में थी, इसमें विभिन्न उपन्यासों का धारावाहिक रूप भी प्रकाशित होता था। इसमें प्रकाशित ऐतिहासिक उपन्यास हैं- 'नरदेव' (वि. सं. 1960-62), 'वीरमालोजी भोसले' (वि. सं. 1960-62), 'काला पहाड़' (वि. सं. 1969) तथा जासूसी उपन्यास – 'प्रेमकान्ता' एवं नैतिक-औपदेशिक उपन्यास – 'मायानाम्नी नदिका तीरको कायपुर' (वि. सं. 1970), 'कर्मको गति जानिनसक्नु छ' (वि. सं. 1971-72) आदि। इस कारण गोरखापत्र की भूमिका नेपाली उपन्यास के उत्थान में महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अतिरिक्त अन्य पत्रिकाएँ – 'उपन्यास तरङ्गिणी', 'सुंदरी

माधवी' (वि. सं. 1969), 'गोर्खाली' (वि. सं. 1972), 'चंद्रिका' (वि. सं. 1974), 'जन्मभूमि' (वि. सं. 1979) एवं 'राजभक्ति' (वि. सं. 1983) आदि का भी योगदान देखा जाता है।

प्राथमिक काल के उपरांत मध्यमिक काल में भी मूलत: अनुवाद रूपान्तरण का ही प्रभुत्व मिलता है। हाँ इस काल में प्रवृत्तियाँ अवश्य बदली है। इस काल का मुख्य विषय श्रृंगारिक, मनोरंजन, रहस्यमूलक एवं रोमांसयुक्त था। कुछ मौलिक उपन्यासों की रचना भी इस काल में हो पायी है जो नेपाली उपन्यास लेखन की नींव को मजबूती प्रदान करती है। इसके बाद रुद्रराज पाण्डे कृत 'रूपमती' (वि. सं. 1991) प्रकाशित होता है जो अनुवाद परंपरा से हटकर लिखा गया उपन्यास है। यह उपन्यास सामाजिक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी धारा का प्रतिनिधित्व करता है।

नेपाली उपन्यास का आधुनिक काल -

नेपाली साहित्य में उपन्यास विधा को देखा जाए तो इसका भी आरंभ अन्य विधाओं के जैसे वि. सं. 1990 से माना जाता है। नेपाली उपन्यास को आधुनिकता की ओर उन्मुख करने का श्रेय उपन्यासकर रुद्रराज पाण्डे को जाता है। रुद्रराज द्वारा रचित उपन्यास 'रूपमती' (वि. सं. 1991) द्वारा नेपाली आधुनिक उपन्यास का आरंभ माना जाता है। उपन्यासकार का प्रमुख योगदान यह माना जाता है कि रूपमती के माध्यम से नेपाली उपन्यास में चलित अतिरंजनात्मक तथा कल्पनायुक्त के बदले सामाजिक विषय को अपने उपन्यास का मुख्य विषय बनाना। उनके द्वारा इसी नवीन धारा तथा प्रवृत्ति का सूत्रपात करने के कारण उन्हें नेपाली का पहला आधुनिक उपन्यासकार कहा जाता है। इनके द्वारा रचित अन्य उपन्यास निम्नलिखित हैं – 'चम्पाकाजी' (वि. सं. 1993), 'प्रायश्चित' (वि. सं. 1995), 'प्रेम' (वि. सं. 2005), 'हेर-फेर' (वि. सं. 2049)।

आधुनिककालीन नेपाली उपन्यास को कई धाराओं में रखकर देखा गया है जिनमें आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी धारा, स्वच्छंदतावादी धारा, सामाजिक यथार्थवादी धारा, ऐतिहासिक

यथार्थवादी धारा, आलोचनात्मक यथार्थवादी धारा, मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी धारा, अस्तित्ववादी धारा एवं प्रयोगवादी धारा आदि प्रमुख हैं।

'रूपमती' के पश्चात् रूपनारायण सिंह द्वारा रचित उपन्यास 'भ्रमर' (वि. सं. 1993) उपलब्ध है। भ्रमर के माध्यम से उपन्यासकर ने नेपाली उपन्यास में स्वच्छन्दतावादी धारा का प्रवर्तन किया है। इस उपन्यास में पुरुष पात्र प्रमुख है लेकिन नारी पात्रों की सहभागिता भी देखने को मिलती है। आधुनिक उपन्यास के विकास में अगला नाम लैनसिंह बाङ्गदेल का आता है। इनके द्वारा रचित उपन्यास निम्नलिखित हैं – 'मुलुक बहिर' (वि. सं. 2004), 'माइतघर' (वि. सं. 2005), 'लङ्गड़ाको साथी' (वि. सं. 2008), 'रेम्ब्रांट' (वि. सं. 2023) आदि। लैनसिंह बाङ्गदेल नेपाली साहित्य में मानवतावादी उपन्यासकार माने जाते हैं। इनके प्रत्येक उपन्यास में मानवतावाद का संदेश दिया गया है।

आधुनिक काल के अन्य उपन्यासकार के रूप में हमारे सामने अच्छाराई रसिक आते हैं। उनके द्वारा रचित केवल दो उपन्यास हैं – 'लगन' (वि. सं. 1955) और 'दोभान' (वि. सं. 1964)। इसके पश्चात् आधुनिक उपन्यास की परंपरा में डायमन शमशेर राणा का नाम आता है जिन्होंने कई उपन्यासों की रचना की है - 'बसंती' (वि. सं. 2006), 'सेतो बाघ' (वि. सं. 2030), 'प्रतिबद्ध' (वि. सं. 2034), 'सत्प्रयास' (वि. सं. 2038), 'अनिता' (वि. सं. 2043), 'धनको धब्बा' (वि. सं. 2051), 'गृह प्रवेश' (वि. सं. 2061) आदि।

वि. सं. 2012 से ही कविता लेखन से साहित्य यात्रा आरम्भ कर बतौर उपन्यासकार के रूप में पारिजात अपने आपको स्थापित करती हैं। 'शिरीषको फूल' (वि. सं. 2027) इनका पहला उपन्यास है। इस उपन्यास में मानव जीवन को निरर्थक रूप में प्रस्तुत किया गया है। आज का मानव निस्सार, विसंगत तथा शून्य है। मनुष्य को ऐसा शून्यबोध जीवन जीकर भी अपने अस्तित्व को बचाए रखने का प्रयास करना चाहिए। वैयक्तिक स्वतंत्रता के ऊपर जीवन का कोई महत्व नहीं है कहकर इस उपन्यास में अस्तित्ववादी दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है। पारिजात के अन्य नौ उपन्यास प्रकाशित हुए हैं

- 'महत्ताहीन' (वि. सं. 2025), 'बैंसको मान्छे' (वि. सं. 2029), 'तोरीबारी बाटा र सपनाहरू' (वि. सं. 2033), 'उसले रोजेको बाटो' (वि. सं. 2034), 'अन्तर्मुखी' (वि. सं. 2035), 'पर्खालभित्र र बाहिर' (वि. सं. 2035), 'अनिंदो पहाडसँगै' (वि. सं. 2039), 'परिभाषित आँखाहरू' (वि. सं. 2046) और 'बोनी' (वि. सं. 2048)। 'परिभाषित आँखाहरू' में शारीरिक तथा मानसिक रूप से शोषित एवं पीडित नारियों की मार्मिक प्रस्तुति की गई है।

इसके पश्चात् अन्य उपन्यासकार पुण्यरश्मि खतिवडा के तीन उपन्यास प्रकाशित होते हैं – 'जयंत र जुनू' (वि. सं. 2051), 'अक्लान्त' (वि. सं. 2052) और 'अधुरो अभिलाषा' (वि. सं. 2051)। इन उपन्यासों में नेपाली संस्कार एवं परंपरा की आड़ में समाज एवं परिवार की स्त्रियों के ऊपर किया जाने वाला शोषण, अन्याय एवं अत्याचार आदि को उजागर करने की कोशिश की गई है।

समकालीन उपन्यास लेखन में सुम्मिता नेपाल और इंदिरा प्रसाई का स्थान सशक्त नारियों में माना जाता है। सुम्मिता के द्वारा लिखे गए उपन्यास हैं – 'एकांत पनि रुन्छ' (वि. सं. 2053), 'मेरा छातीका कोलाजहरु' (वि. सं. 2055), 'उडेका उमेरहरु' (वि. सं. 2060), 'काला काला रातहरुमा टेक्दै' (वि. सं. 2061), 'एउटा आवाजको जन्म' (वि. सं. 2060), 'आकाशको हजारों हातहरु र पत्रैपत्र' (वि. सं. 2068) (सुम्मिता नेपाल और इंदिरा प्रसाई द्वारा सहलेखन)। इंदिरा प्रसाई के उपन्यास निम्नलिखित हैं – 'विश्वमित्र' (वि. सं. 2055), 'रनमाया' (वि. सं. 2056), 'शिखा' एवं 'उसको लोग्ने र बिरालो' (वि. सं. 2060)। नेपाली उपन्यास विधा में नारी लेखन परंपरा को निरंतरता देते हुए राधिका दहाल ने 'पल्लो घरकी बूढी फुपू' (वि. सं. 2064) एवं 'एक चोक्टो मासु' (वि. सं. 2066) नामक उपन्यासों की रचना की। 'पल्लो घरकी बूढी फुपू' उपन्यास में बाल विवाह तथा विधवा विवाह से उपजने वाली समस्याओं पर आधारित विषय को रखा गया है। सन् अस्सी के दशक यानि 1980 ई० में विन्ध्या सुब्बा एक प्रभावी उपन्यासकार के रूप में साहित्य जगत् में प्रवेश करती हैं। उनके द्वारा रचित तीन उपन्यास निम्नलिखित हैं – 'फुलहरु पहाड़हरु र धर्साहरु' (1983 ई०), 'अथाह' (1998 ई०) एवं 'निर्गमन' (2006 ई०)।

2.1 सन् 1902 से सन् 1934 तक :-

सन् 1902 से सन् 1934 तक के समय में कुछ उपन्यासकार अपने उपन्यास के माध्यम से चर्चित हुए जिनमें सदाशिव शर्मा अधिकारी, पद्मनाथ सापकोटा, ऋद्धि बहादुर मल्ल एवं अंबालिका देवी आते है। जासूसी एवं तिलस्मी प्रवृत्ति के उपन्यासकर सदाशिव शर्मा अधिकारी का पहला उपन्यास 'चंद्रकांता' (वि. सं. 1957) तथा दूसरा उपन्यास 'नरेन्द्रमोहिनी' है। इनके द्वारा रचित उपन्यास 'महेन्द्रप्रभा' उपन्यास तरङ्गिणी नामक पत्रिका में छपी थी। संभवत: प्रकाशन के दृष्टि से यह प्रथम मौलिक नेपाली उपन्यास है।

श्रृंगारिक धारा के अंतर्गत आने वाले उपन्यासकर सदाशिव शर्मा अधिकारी द्वारा रचित उपन्यास हैं – 'वीरसिक्का' (वि. सं. 1946) और 'मधुमालतीको कथा' (वि. सं. 1983), रसिक कृत 'विलासिनी' (वि. सं. 1964), संभुप्रसाद ढुङ्गेल कृत 'हातिमताईको कथा' (वि. सं. 1981)। "नेपाली उपन्यास की पृष्ठभूमि 'दश-कुमारचारित' और 'आध्यात्म रामायण' का विकसित रूप ही 'वीर सिक्का'को माना जाता है। इसे अधिकांश समालोचक और इतिहासकारों ने माध्यमिककालीन उपन्यास का प्रारंभ बिंदु माना है।"[5] 'वीर सिक्का' में काल्पनिकता, अद्भूत, कौतूहलता और रोमांचकारी के तत्व मिलते हैं। उसी प्रकार मनोरंजनात्मक धारा के अंतर्गत रामकृष्ण कृत 'गोर्खा हास्यमंजरी' (वि. सं. 1952), नरदेव पाण्डे कृत 'बीरबल चातुरी' (वि. सं. 1956), सदाशिव शर्मा कृत 'चंद्रकांता' (वि. सं. 1956), ऋद्धि बहादुर मल्ल कृत 'शर्मिष्ठा' (वि. सं. 1984), शिवप्रताप शमशेर थापा कृत 'दुर्गेशनंदनी' (वि. सं. 1990), अमरसिंह थापा कृत 'रतनसिंह गुरूङ्गको कथा' (वि. सं. 1973) आदि आते हैं।

रहस्य-रोमांसमूलक धारा के अंतर्गत पद्मनाथ सापकोटा कृत 'डा. सूर्यप्रसाद' (वि. सं. 1972) एवं 'महारानी प्रियम्बदा' (वि. सं. 1973), पहलमान सिंह स्वार कृत 'एक लाख रुपियाँको चोरी' (वि.

[5] ढुङ्गेल, भोजराज एवं दाहाल, दुर्गाप्रसाद. (2070). ***नेपाली कथा र उपन्यास.*** एम.के. पब्लिसर्स : काठमाडौँ. पृष्ठ सं. 218.

सं. 1974) एवं 'पदमकुमारी' (वि. सं. 1974), गम्भीरध्वज कृत 'चन्द्रशेखर' (वि. सं. 1976), अंबालिका देवी कृत 'राजपूत रमणी' (वि. सं. 1989) आदि।

धार्मिक-पौराणिक धारा के अंतर्गत नेपाली साहित्य के इतिहास में संस्कृत एवं हिन्दी भाषा का प्रभाव देखा जाता है। नेपाली उपन्यास के क्षेत्र में भी संस्कृत से अनुवाद तथा उसका प्रभाव देखने को मिलता है। अत: संस्कृत भाषा में निहित धार्मिक-पौराणिक विषयवस्तु को आधार बनाकर जो नेपाली उपन्यास लिखे गये हैं वे इसी के अंतर्गत माना जाता है। इन उपन्यासों द्वारा इस काल के लोगों में धर्म के प्रति आस्था जगाने के साथ नीतिवान एवं कर्तव्यपरायण बनाने का उद्देश्य देखा जाता है। ये उपन्यास निम्नलिखित हैं - चिरन्जीवी पौड्याल कृत 'प्रेमसागर' (वि. सं. 1947), हरिहर शर्मा कृत 'दुर्गासप्तशती' (वि. सं. 1948), कपिलदेव शर्मा कृत 'नलोपाख्यान' (वि. सं. 1959), दुर्गादेवी आचार्यणी कृत 'वेदान्तसार' (वि. स. 1960), तीर्थप्रसाद आचार्य कृत 'गोरखा संक्षिप्त रामायण' (वि. सं. 1972) आदि।

स्वच्छंदतावादी धारा के अंतर्गत आधुनिक नेपाली उपन्यास के क्षेत्र में रूपनारायण सिंह कृत 'भ्रमर' (वि. सं 1993) से स्वच्छंदतावादी धारा की शुरुआत मानी जाती है। स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति की कुछ विशेषताएं हैं - परम्परागत मूल्य एवं मान्यता से मुक्त होने की इच्छा, अभिव्यक्ति में तीव्रता, प्राकृतिक सोन्दर्य चित्रण, मानवतावादी दृष्टिकोण आदि। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित उपन्यास हैं जो इस प्रवृत्ति के अंतर्गत लिखे गए हैं – कृष्णसिंह मोक्तान कृत 'अशेष यात्रा' (वि. सं 2021), देवननम देवशा कृत 'तुफान' (वि. सं. 2022), रविन्द्रकुमार मोक्तान कृत 'कलिलो फूल गुलाफको' (वि. सं. 2025), मोहनबहादुर मल्ल कृत 'उजेली छाया' (वि. सं. 2008), अच्छा राई रसिक कृत 'लगन' (वि. सं 2012) आदि।

आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी धारा की परंपरा के अंतर्गत रुद्रराज पाण्डेय कृत 'रूपमती' से होता है। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद ने तत्कालीन हिंदी साहित्य में समाज का चित्रण करते हुए जिस यथार्थवादी आन्दोलन का आरम्भ किया था उसी का प्रभाव हमें रुद्रराज पाण्डेय के उपन्यासों में देखने

को मिलता है। इसके अतिरिक्त काशीबहादुर श्रेष्ठ कृत 'उषा' (वि. सं. 1995), टुकराज पद्मराज मिश्र कृत 'रजबन्धकी' (वि. सं. 1996), एवं 'रामकृष्ण कुँवर राणा' (वि. सं. 1999), शोभाचंद्र उपाध्याय कृत 'पाटलिपुत्र' (वि. सं. 2003), सुरेन्द्रबहादुर शाह कृत 'पारिजात' (वि. सं. 2003), मोहनबहादुर मल्ल द्वारा रचित 'समयको हुरी' (वि. सं. 2015) इस धारा के अंतर्गत आते हैं।

"आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यास रूपमती से आरंभ होते हुए वर्त्तमान पर्यंत लिखा जा रहा है लेकिन प्रजातन्त्र काल के पूर्व में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यास सामान्यतया स्त्री के दयनीय स्थिति, पुरुष के अत्याचार, पारिवारिक कलह, आदर्श व्यक्ति की सहनशीलता, त्याग तथा कर्तव्यपरायण, नैतिक ज़िम्मेदारी जैसे सीमा में ही बंधा हुआ था।"[6]

2.1.1 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना -

नेपाली साहित्य में आधुनिक युग की शुरुआत वि. सं. 1991 ई. से मानी जाती है। इसी समय से सामाजिक क्षेत्र में सुधार की आवाज़ उठाई जाने लगी थी, यह जन आकांक्षाओं का ही दबाव था कि नेपाली-साहित्य में भी इसके चलते बदलाव आया और माधवी, सुंदरी, चन्द्र, चन्द्रिका, शारदा आदि कई पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ हुआ, जिनमें नवयुग की वाणी को मुक्त कंठ से मुखर होने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

सदाशिव शर्मा के द्वारा लिखित मौलिक उपन्यास 'महेन्द्रप्रभा' उपन्यास का विषय प्रेम है। इस उपन्यास में नायक के रूप में महेन्द्रध्वज एवं नायिका के रूप में प्रभावती का उल्लेख किया गया है। दोनों नायक-नायिका परस्पर प्रेम में आबद्ध होते हैं। इन्हीं के प्रेमप्रणय को ऐयार के माध्यम से मनोरंजनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। नायिका का विवाह उपन्यास के खलनायक पात्र कञ्चनसिंह के साथ कर दिया जाता है जिससे तंग आकर वह जंगल चली जाती है तथा वही शिकार पे आए एक युवक के साथ प्रेम हो जाता है। इसके बाद कञ्चनसिंह द्वारा दोनों नायक-नायिका को

[6] प्रधान, कृष्णचन्द्र सिंह. (2037). ***नेपाली उपन्यास र उपन्यासकार***. पुलचोक : साझा प्रकाशन, पृष्ठ सं. 77.

गिरफ्तार कर अलग कर दिया जाता है। इस काल के लगभग सभी उपन्यासों के प्रमुख पात्र राजकुमार और राजकुमारी होते हैं और प्रेमी-प्रेमिका मिलन हेतु इन्हें कष्टों का सामना करना पड़ता है। इस काल में ही मौलिक लेखन परंपरा का विकास हुआ। "पं. सदाशिव शर्मा द्वारा लिखा गया उपन्यास महेन्द्रप्रभा को विद्वानों ने नेपाली साहित्य का प्रथम उपन्यास माना है।"[7]

पद्मनाथ सापकोटा द्वारा रचित दो उपन्यास 'सूर्यप्रसाद' (अधूरी) एवं 'महारानी प्रियम्वदा' है। 'महारानी प्रियम्वदा' कथा के रूप में प्रस्तुत किया गया एक उद्देश्यपूर्ण उपन्यास है। उपन्यास की नायिका अपने प्रेमी द्वारा उपेक्षित तथा प्रेमी को प्राप्त न करने के कारण आत्महत्या का रास्ता अपनाना चाहती है जिसे उपन्यासकर ने सामाजिक सुधारवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास के माध्यम से यह शिक्षा दिया गया है कि जितनी भी विपरीत परिस्थिति क्यों न आए आत्महत्या की तरफ विमुख न होकर धेर्य के साथ प्रतीक्षा करना चाहिए। अंत में प्रियम्वदा का विवाह एक राज्य के राजा से होता है जिससे वह महारानी प्रियम्वदा बन जाती है। उपन्यासकार यही दर्शाना चाहते हैं कि सब्र का फल मीठा होता है।

माध्यमिक काल में भी प्राथमिक काल के जैसे अनुवाद रूपान्तरण की परम्परा रही है लेकिन इस काल की प्रवृत्तियाँ लगभग भिन्न है। रहस्यात्मक, रोमांसमूलक, जासूसी, तिलस्मी, एयारी विषय की प्रधानता इस काल में देखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त मौलिक उपन्यासों की रचना भी इस काल में हो पायी है। इसके बाद रुद्रराज पाण्डे द्वारा 'रूपमती' का प्रकाशन हुआ जो अनुवाद परंपरा से हटकर लिखा गया था। यह उपन्यास सामाजिक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी धारा का प्रतिनिधित्व करता है।

[7] शर्मा, डॉ. गोमा देवी. (2018). ***भारतीय नेपाली साहित्यको विश्लेषणात्मक इतिहास.*** मणिपुर : गोर्खा ज्योति प्रकाशन. पृष्ठ सं. 202.

2.1.2 स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री-चेतना -

विश्व भर में साहित्य के विभिन्न विधाओं में महिलाओं की भागीदारी को लेकर गहन अनुसन्धान हो रहे हैं, लेकिन नेपाली साहित्य में महिलाओं की भागीदारी को लेकर बहुत ही कम अनुसन्धान हुए हैं। नेपाली उपन्यास के इतिहास को देखा जाए तो अनेक महिला उपन्यासकारों ने अपनी कृति के माध्यम से नेपाली उपन्यास के विकास में अमूल्य योगदान दिया है। दुर्भाग्यवश नेपाली उपन्यास के इतिहास में उनका नाम उल्लिखित नहीं हो पाया है। उनके बारे में संक्षिप्त विवरण के अतिरिक्त शोध नहीं उपलब्ध है।

वैसे तो नेपाली उपन्यास का आरम्भ 'वीरचरित्र' (वि. सं. 1960) से माना जाता है। सौ वर्षों की अवधि पार कर चुके नेपाली उपन्यास आज विभिन्न प्रवृत्तियों लिए हमारे समक्ष खड़ा है लेकिन सर्वप्रथम वि. सं. 1965 में दुर्गादेवी आचार्य कृत 'अनसूया सीता संवाद' से नारी लेखन का प्रारम्भ माना जाता है, किन्तु नेपाली उपन्यास विधा में नारी लेखन का प्रादुर्भाव माध्यमिक काल के समाप्ति से माना जाता है।

इसी क्रम में अम्बालिका देवी कृत 'राजपूत रमणी' (वि. सं. 1989) को प्रथम महिला उपन्यासकार द्वारा लिखा गया उपन्यास माना जाता है। सामाजिक एवं सुधारवादी दृष्टिकोण से लिखा गया यह उपन्यास भारतीय इतिहास पर आधारित है। भारतीय भूमि में रहकर लिखे गए इस उपन्यास में बंगाल के प्रसिद्ध व्यापारी की बहु राजपूत रमणी को बंगाल के नवाब सरफ़राज खां द्वारा अपहरण करने की घटना है। राजपूत रमणी अपनी सतीत्व की रक्षा के लिए अथक प्रयास करते हुए साहस का परिचय देती है। नारी का विद्रोही रूप दर्शाना एवं सतीत्व की रक्षा करते हुए पतिभक्ति प्रदर्शित करना इस उपन्यास का मूल उद्देश्य है। नारी की शक्ति की प्रसंशा करते हुए उपन्यास में नारी चेतना का बीज बोने का प्रयास किया गया है। वर्णनात्मक, संवादात्मक शैली एवं सरल भाषा में सृजित उक्त उपन्यास में अतिमानवता, रोमांचकता, अतिशय भावुकता एवं चरम आदर्शता जैसे तत्कालीन आख्यान-लेखन में चल रहे प्रवृत्ति देखने को मिलता है। इस उपन्यास में विशेषकर नारी के साहस की प्रशंशा की गई है

तथा उसे विद्रोही रूप को सशक्त रूप में दर्शाया गया है जिसके कारण इसे नेपाली उपन्यास का पहला नारीवादी उपन्यास कहा जाता है। इसके अतिरिक्त इस काल में और कोई महिला उपन्यासकार उपलब्ध नहीं होती।

2.2. सन् 1934 से सन् 1990 तक :-

सन् 1934 में प्रकाशित रुद्रराज पाण्डेय का 'रूपमती' उपन्यास से आधुनिक काल का आरम्भ माना जाता है। "आधुनिक नेपाली उपन्यास के प्रथम प्रवक्ता, बोलचाल की भाषा प्रयोग में लाने वाले एवं गृहस्थ जीवन की पारिवारिक चित्र का अंकन करने वाले प्रथम उपन्यासकार रुद्रराज पाण्डे हैं।"[8]

इस अध्याय के अन्तर्गत सन् 1934 से सन् 1990 तक के उपन्यासों के बारे में विवेचना की गई है। उक्त काल के उपन्यासों को देखें तो यह स्पष्ट होता है कि स्त्री की समस्याओं के प्रति लेखकों का ध्यान आकर्षित होना आधुनिक काल से ही आरम्भ होता है। सदियों से तड़पती, प्रताड़ित होती स्त्रियों को आवाज देने के लिए रुद्रराज पाण्डे और विष्णुचरण जैसे लेखकों ने कलम चलाई। इन उपन्यासों ने नारी-समस्या को अपना आधार बनाकर समाज के ढोंगी परम्परा पर प्रहार किया। "सामाजिक नैतिक आदर्श के हिमायती रुद्रराज पाण्डेय कृत 'रूपमति' एवं विष्णुचरण श्रेष्ठ कृत 'सुमती' (सन् 1935) के प्रेरणास्रोत हिन्दी के सामाजिक सुधार के (प्रेमचंद युग) उपन्यास थे जो बंगला से प्रभावित था।"[9]

'रूपमती' के पश्चात् रूपनारायण सिंह द्वारा रचित उपन्यास 'भ्रमर' उपलब्ध है। 'भ्रमर' के माध्यम से उपन्यासकर ने नेपाली उपन्यास में स्वच्छन्दतावादी धारा का प्रवर्तन किया है। इस उपन्यास में पुरुष पात्र प्रमुख है लेकिन नारी पात्रों की सहभागिता भी मिलती है। इसी प्रकार मानवतावादी उपन्यासकर लैनसिंह बाङ्गदेल द्वारा रचित उपन्यास हैं– 'मुलुक बहिर' (वि. सं. 2004), 'माइतघर' (वि. सं. 2005), 'लङ्गड़ाको साथी' (वि. सं. 2008), 'रेम्ब्रांट' (वि. सं. 2023)।

---

[8] प्रधान, कृष्णचन्द्र सिंह. (2037). ***नेपाली उपन्यास र उपन्यासकार.*** पुलचोक : साँझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 217.

[9] राई, इंद्रबहादुर. (2067). ***नेपाली उपन्यासका आधारहरु.*** ललितपुर : साझा प्रकाशन, पृष्ठ सं. 253.

इस अवधि में उपन्यासकर मोहनबहादुर मल्ल हुए जिनके द्वारा रचित उपन्यास इस प्रकार हैं – 'उजेली छामा' (वि. सं. 2008), 'मायारानी' (वि. सं. 2009), 'पञ्चायत' (वि. सं. 2010), 'समयको हुरी' (वि. सं. 2015), 'भुमरी' (वि. सं. 2016), 'बहादुर नजर' (वि. सं. 2036) एवं 'जेली' (वि. सं. 2039)। इन्होंने रुद्रराज पाण्डे के द्वारा निर्मित सामाजिक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी धारा को आगे बढ़ाने का कार्य किया। इन्होंने तत्कालीन नेपाली समाज में व्याप्त शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं को अपने उपन्यास का मुख्य विषय चुना। सामाजिक शोषण तथा उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज उठाने का भी प्रयास इनके उपन्यास में देखा जा सकता है। इनके उपन्यासों में सामाजिक कुरीति, वर्गीय विभेद, अशिक्षा, आदि को गंभीर समस्या के रूप में प्रस्तुत कर उसका निदान करने का प्रयास किया गया है। नारी का विशेष रूप से चित्रण मोहनबहादुर मल्ल के उपन्यासों में देखने को नहीं मिलता है।

उपन्यासकार खड़गबहादुर सिंह ने केवल तीन उपन्यास लिखा है – 'विद्रोह-1' (वि. सं. 2011), 'विद्रोह-2' (वि. सं. 2013) और 'हुरिको चरा' (वि. सं. 2015)। सामाजिक शोषण, दमन एवं भेदभाव का चित्रण आलोचनात्मक यथार्थवादी धारा के उपन्यासों में आता है। नेपाली उपन्यास के इस क्षेत्र में उपन्यासकार हृदयचन्द्रसिंह प्रधान का नाम आता है जिन्होंने 'स्वास्नीमान्छे' (वि. सं. 2011), और 'एक चिहान' (वि. सं. 2017) नामक दो उपन्यासों की रचना की। नेपाली उपन्यास में समाजवादी यथार्थवादी तथा प्रगतिवादी धारा के प्रवर्तन का श्रेय हृदयचन्द्रसिंह प्रधान को जाता है। इसके अतिरिक्त इस धारा के अंतर्गत दौलतविक्रम कृत 'मन्जरी' (वि. सं. 2017), 'थाकेको आकाश' (वि. सं. 2017), तारानाथ शर्मा कृत 'सुली' (वि. सं. 2030) आता है। इस काल के अन्य उपन्यास हैं – 'वैकुण्ठको महल' (वि. सं. 2013) एवं 'सत्य संदेश र विधवा जीवन' (वि. सं. 2013), 'बसाई' (वि. सं. 2014), 'अतृप्त' (वि. सं. 2026) 'ब्रह्मपुत्र को छेउछाउ' (वि. सं. 2043), 'खैरीनीघाट' (वि. सं. 2018) आदि। उपन्यासकार पारिजात के द्वारा लिखे गए उपन्यास हैं – 'शिरीषको फूल' (वि. सं.

2022), 'उसले रोजेको बाटो' (वि. सं. 2034), 'बोनी' (वि. सं. 2048) एवं 'परिभाषित आँखाहरु' (वि. सं. 2046) आदि।

इस काल के पुरुष उपन्यासकार ने अपने उपन्यास का विषय रखा - सामान्य गृहस्थी जीवन में प्रचलित ईर्ष्या, द्वेष, गृहकलह, वैमन्श्यता आदि की प्रस्तुति, बहु पर सास द्वारा अत्याचार की अभिव्यक्ति, तत्कालीन समाज में व्याप्त कुप्रथा का अंत करने का सन्देश, अलौकिक, अतिरंजनात्मक, काल्पनिक, श्रृंगारिक, अद्भुत, जासूसी एवं तिलस्मी उपन्यास लेखन परंपरा से पूर्ण रूप से मुक्त होने का भाव, सामाजिक तथा ऐतिहासिक विषय आदि।

2.2.1 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना -

सन् 1934 में प्रकाशित रुद्रराज पाण्डेय का 'रूपमती' उपन्यास से आधुनिक काल का आरम्भ माना जाता है। इस उपन्यास ने नेपाली उपन्यास के प्राथमिक और माध्यमिक काल में चली आ रही उपन्यास परंपरा में प्रचलित धार्मिक, पौराणिक और अतिरंजनापूर्वक प्रवृत्ति को त्याग कर समाज के विविध यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में नेपाली परिवेश के गृहस्थ जीवन और पारिवारिक वास्तविकता को बोलचाल की भाषा में उतारा गया है। इसके बाद पंडित रुद्रराज पांडेय के अन्य दो उपन्यास 'प्रायश्चित्' और 'चंपाकली' प्रकाशित होते हैं। इन उपन्यासों ने सामाजिक सुधार और चित्रण को एक नया मोड़ और नयी दिशा प्रदान की। विष्णुचरण द्वारा लिखा गया उपन्यास 'सुमति' जो कि 'रूपमती' से पहले लिखा गया था किन्तु बाद में प्रकाशित हुआ। इसमें उपन्यास की मुख्य स्त्री पात्र सुमति के भोगे गए दुखो का वर्णन मिलता है जो उपन्यास के कृत्रिम चरित्रों और अविश्वसनीय घटना के संयोग से स्थिति पैदा होती है। यदि दोनों उपन्यासों की तुलना की जाए तो 'सुमति' का सामाजिक चित्रण 'रूपमती' की तुलना में ज्यादा हल्का और शिथिल माना जाता है।

सामाजिक यथार्थवादी धारा का प्रारंभ लैनसिंहबाग्देल के द्वारा रचित 'मुलुक बाहिर' (वि. सं. 2004) से होता है। इनके अन्य उपन्यास 'माईत घर' (वि. सं. 2007) है। इनका पहला उपन्यास

'मुलुक बाहिर' सामाजिक यथार्थमूलक विषय पर आधारित है। इस उपन्यास में दो दंपति रने एवं म्याउची तथा माइला भुजेल एवं मसिनी के इर्द-गिर्द कहानी बुनी गई है। जीविकापार्जन हेतु ये दंपतियाँ भारत के रास्ते होते हुए बर्मा तक जाते हैं। उपन्यास का चित्रण उन परिवेश पर आधारित है जहां ये दंपतियाँ जाते हैं। राष्ट्रवादी भावना की अभिव्यक्ति इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है। दो वक्त की रोटी तथा नौकरी के खातिर नेपाल के लोग किस प्रकार भारत एवं अन्य देश जाते हैं तथा वहाँ मिलने वाले दु:ख, कष्ट, पीड़ा, उपेक्षा, अपमान आदि का चित्रण इस उपन्यास में हो पाया है। स्त्री पात्रों म्याउची एवं मसिनी का चित्रण यहाँ पर आवश्यक घटक के रूप में लिया गया है। ये पुरुष पात्रों को सहयोग प्रदान करने में सशक्त भूमिका रखते हैं।

मोहनबहादुर मल्ल द्वारा रचित उपन्यास 'भुमरी' राजनीतिक पृष्ठभूमि में लिखा गया है तथापि इसकी विषयवस्तु सामाजिक है। इनके द्वारा लिखे गए अधिकतर उपन्यास सामाजिक विषयवस्तु लिए हुए है। इसलिए इन्हें सामाजिक उपन्यासकार भी कहा जाता है। इनके उपन्यास में सामाजिक कुरीति, वर्गीय विभेद, अशिक्षा आदि को गंभीर समस्या के रूप में प्रस्तुत करके उसका निदान करने की कोशिश की जाती है। मोहनबहादुर मल्ल के उपन्यासों में नारी का कोई विशेष चित्रण देखने को नहीं मिलता है।

खड्गबहादुर सिंह कृत 'विद्रोह-2' (वि. सं. 2013) को 'विद्रोह-1' (2011) का परिपूरक माना गया है क्योंकि दोनों का कथा परस्पर सम्बद्ध है। इन उपन्यासों में तत्कालीन राणा शासन के अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाया गया है। तत्कालीन समाज में व्याप्त शोषण, अन्याय, अत्याचार के प्रति विरोध व्यक्त कर आंदोलन करने का संदेश यह उपन्यास देता है जिसमें नारी और पुरुष दोनों बढ़-चढ़ कर भाग लेते दिखाई देते हैं। प्रस्तुत उपन्यास उपेक्षित तथा पीड़ित जनता के प्रति सहानुभूति प्रकट कर समतामूलक समाज का निर्माण करने का उद्देश्य प्रकट करता है। इनके द्वारा रचित तीसरा उपन्यास 'हुरिको चरा' (वि. सं. 2015) एक लघु उपन्यास है। काठमाण्डौ परिवेश लिए इस उपन्यास में तत्कालीन शासन व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार, नतावाद, कृपावाद एवं स्वार्थी चरित्र का चित्रण

मिलता है। नेपाली उपन्यास के इतिहास में खड्गबहादुर सिंह आलोचनात्मक यथार्थवादी उपन्यासकार माने जाते हैं।

इसके पश्चात् नेपाली उपन्यास के प्रगतिवादी धारा के प्रवर्तक हृदयचन्द्रसिंह प्रधान के दो उपन्यास 'स्वास्नीमान्छे' (वि. सं. 2011), और 'एक चिहान' (वि. सं. 2017) प्रकाशित होता है। इनके द्वारा लिखे गए उपन्यासों में विद्रोह, समाजिकता, मानवतावादी दृष्टिकोण, शोषितों का उत्थान, रूढ़िवादी संस्कार तथा परम्परागत मान्यताओं का विरोध, नारियों के प्रति संवेदना आदि चित्रित होते हैं। सामाजिक यथार्थवादी प्रवृत्ति के अंतर्गत सामाजिक घटना की हुबहू प्रस्तुति तथा निम्नवर्गीय मनुष्य के दुखों का चित्रण अभिव्यक्त होता है। हृदयचन्द्रसिंह प्रधान द्वारा रचित उपन्यास 'स्वास्नीमान्छे' में एक परित्यक्त स्त्री की कहानी है। दुष्ट स्वभाव का पुरुष पात्र अपने अहंकार तथा दूसरी पत्नी द्वारा भड़काने जाने पर उत्तेजित होकर अपनी पहली पत्नी मोतीमाया के ऊपर अनगिनत अत्याचार करता है जिसके कारण मोतीमाया को वेश्यावृत्ति की तरफ उन्मुख होना पड़ता है। यह बहुपात्रीय उपन्यास है। इस उपन्यास में स्त्री के तीन रूप दिखाये गए हैं। प्रथम स्त्री कमला द्वारा अत्याचार किया जाता है, द्वितीय स्त्री मोतीमाया द्वारा अत्याचार सहा जाता है तथा तृतीय स्त्री मैयानानी द्वारा अत्याचार का विरोध किया जाता है। उपन्यासकार द्वारा प्रस्तुत उपन्यास में अंत में स्त्री के विद्रोहिणी रूप को समर्थन कर प्रगतिवादी विचारधारा के प्रति अपने झुकाव को स्पष्ट किया है।

अत: हृदयचन्द्र सिंह प्रधान कृत 'स्वास्नीमान्छे' नेपाली उपन्यास में नारी-चेतना का अलग ही रूप दर्शाया गया है। वेश्यावृत्ति जैसे कार्य में लिप्त रहकर भी कोई वेश्या समाज की मंगलकामना कर सकती है यह 'स्वास्नीमान्छे' की तीसरी स्त्री पात्र मैयानानी के माध्यम से जाना जा सकता है। वह समाज का उद्धार चाहती है इसलिए वेश्यावृत्ति को गलत नहीं मानती। वह वेश्यालय को सिर्फ एक कोठा नहीं बल्कि पवित्र मंदिर मानती है। वेश्यावृत्ति में जाने वाली हर स्त्री स्वेच्छा से नहीं जाती बल्कि उसके पीछे पितृसत्तात्मकता सोच एवं समाज के रूढ़ परंपराएँ जिम्मेदार रहते हैं। जैनेन्द्र कुमार के द्वारा लिखा गया हिंदी उपन्यास 'त्यागपत्र' का विषय भी 'स्वास्नीमान्छे' से कई स्तरों पर मिलता है।

उपन्यास की नायिका पुरुषवादी समाज को चुनौती देती है वह न चैन से बैठती है और न ही चैन से बैठने देती है। वह चाहे तो खुद अच्छी जिन्दगी जी सकती थी लेकिन उसका वेश्यालय जाकर रहना उसके विरोध करने का एक क्रन्तिकारी कदम है।

आलोचनात्मक यथार्थवादी धारा के उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं – नारी एवं पुरुष के बीच असमानता, नारी क्रय-विक्रय एवं नारी को हमेशा भोग्या के रूप में देखने वाले सामाजिक दृष्टिकोण का विरोध करना, शोषक सामंती परंपरा के प्रति आक्रोश, अन्धविश्वास एवं रूढ़िग्रस्त चिंतन का विरोध। इस धारा के अन्य उपन्यास हैं - भुवनेश्वर कोइराला कृत 'वैकुण्ठको महल' (वि. सं. 2013) एवं 'सत्य संदेश र विधवा जीवन' (वि. सं. 2013), लीलबहादुर क्षेत्री कृत 'बसाई' (वि. सं. 2014), 'अतृप्त' (वि. सं. 2026) एवं 'ब्रह्मपुत्र को छेउछाउ' (वि. सं. 2043), शंकर कोइराला कृत 'खैरीनीघाट' (वि. सं. 2018) है।

भुवनेश्वर कोइराला द्वारा रचित उपन्यास 'सत्य संदेश र विधवा जीवन' नारी समस्या पर आधारित है। हिन्दू धर्म के आदर्श रूप को प्रधानता देते हुए इस उपन्यास में नेपाली समाज में विधवाओं के प्रति होने वाले सामाजिक भेदभाव का चित्रण किया गया है। विधवा समस्या के अतिरिक्त इस उपन्यास में बालविवाह, बहुविवाह एवं अनमेल विवाह जैसे सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया गया है। विशेषकर विधवा पुनर्विवाह के संदर्भ में लिखा गया यह उपन्यास प्रगतिशील परम्परा को अभिव्यक्त करता है। "इस प्रकार स्त्री और पुरुष के बीच विभेद दर्शाते हुए स्त्री के साथ होने वाले दुर्व्यवहार के प्रति सुधारात्मक दृष्टिकोण को आदर्शवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है।"[10]

उपन्यासकर गोविन्दबहादुर मल्ल 'गोठाले' द्वारा रचित उपन्यास है – 'पल्ल घरको झ्याल' (वि. सं. 2016), 'अपर्णा' (वि. सं. 2053) एवं 'पियानानी' (वि. सं. 2056)। इनके तीनों उपन्यासों में मनोविश्लेषणवादी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। 'पल्ल घरको झ्याल' उपन्यास से ही नेपाली उपन्यास जगत् में मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का आगमन होता है। इस उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र मिसरी के

[10] लुइटेल डॉ. खगेंद्रप्रसाद. (2069). ***नेपाली उपन्यासको इतिहास.*** काठमाण्डौ : नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान पृ.सं.147.

माध्यम से उपन्यास की संरचना निर्मित है। उपन्यासकर के अन्य उपन्यास 'अपर्णा' एक नारी चरित्रप्रधान उपन्यास है। पात्र के नाम से ही उपन्यास का शीर्षक निर्मित है जिससे यह परिलक्षित होता है कि इसमें अपर्णा के ऊपर हुए मानसिक पीड़ा तथा छटपटाहट का चित्रण किया गया है। उसके साथ बलात्कार जैसा घृणित कार्य होता है जिसके कारण वह अपने विवाह तत्पश्चात् अपने सुहागरात में भी प्रतिक्रियाविहीन हो जाती है। उसमें उत्सुकता, डर एवं लज्जा का भाव नहीं रहता। मिसरी के भीतर अपराधबोध का जन्म होता है। वह हीनतावश खुद को पतिव्रता नारी नहीं मानती। गोविन्दबहादुर मल्ल 'गोठाले' का तीसरा उपन्यास 'पियानानी' भी नारी चरित्रप्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास के सभी नारी पात्रों की मुख्य समस्या यौन असंतुष्टि से उत्पन्न होने वाली मानसिकता है।

मनोविश्लेषणवादी धारा के अन्य उपन्यासकार हैं - विजय मल्ल और विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला। विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला कृत 'तीन घुम्ती' (वि. सं. 1925) नामक उपन्यास में फ्रायड का अवचेतन सिद्धांत और डार्विन के विकासवाद का सिद्धांत का समन्वय देखा जा सकता है। 'तीन घुम्ती' उपन्यास में प्रमुख पात्र इन्द्रमाया के द्वारा अपने जीवन के बारे में लिए गए तीन निर्णयों का वर्णन चित्रित है जो 16 वर्ष, 25 वर्ष और 27 वर्ष में लिया गया था। इसके बाद विश्वेश्वरप्रसाद के अन्य उपन्यास 'नरेन्द्र दाई' (वि. सं. 2027), 'सुम्निमा' (वि. सं. 2027), 'मोदिआइन' (वि. सं. 2036), 'हिटलर र यहुदी' (वि. सं. 2040) और 'बाबु, आमा र छोरा' (वि. सं. 2045) प्रकाशित होते हैं। उपन्यास 'नरेन्द्र दाई' में समाज में व्याप्त अनमेल विवाह और उससे उत्पन्न होने वाली विसंगति, नारी वेदना एवं मानव अस्तित्व को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकर विजय मल्ल जिन्होंने 'अनुराधा' (वि. सं. 2018), 'कुमारी शोभा' (वि. सं. 2039) और 'श्रीमती शारदा' (वि. सं. 2056) नामक उपन्यास लिखा। मनोविश्लेषणात्मक परम्परा को निरंतरता देते हुए विजय मल्ल ने गोविन्दबहादुर मल्ल 'गोठाले' का अनुसरण किया। इनके उपन्यास भी नारी चरित्र प्रधान है। इनके द्वारा रचित पहला उपन्यास 'अनुराधा' में नारी के चरित्र के माध्यम से परम्परा के प्रति विद्रोह एवं नारी समस्या को प्रस्तुत किया गया है। इनके

दूसरा उपन्यास 'कुमारी शोभा' में नेवारी समाज में होने वाली परम्परा तथा उसके प्रक्रिया में होने वाले अंधविश्वास का विश्लेषण किया गया है। नारी को देवी के रूप में प्रदर्शन कर उसके बाल्यकाल को किस प्रकार छिना जाता है इसका मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में हो पाया है। इसका दुष्परिणाम शोभा को भुगतना पड़ता है अंतत: वह हिस्टेरिया की शिकार बन जाती है। विजय मल्ल के द्वारा लिखित अंतिम उपन्यास 'श्रीमती शारदा' स्त्री और पुरुष पात्र की मनोदशा पर केन्द्रित है। इसमें आवेग, आक्रोश, प्रतिशोध, आत्मग्लानि, हीनताबोध, पश्चाताप तथा क्षमा याचना जैसे विविध संदर्भों में वर्णित है। "फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद पर आधारित इनके उपन्यासों में नारी के मनोविज्ञान के विभिन्न पक्ष की प्रस्तुति एवं विद्रोह के स्वर मुखरित हुई है। घटना के प्रस्तुति एवं चरित्र चित्रण के दृष्टि से 'अनुराधा' के मुक़ाबले 'कुमारी शोभा' और 'श्रीमती शारदा' अधिक विश्वसनीय एवं प्रभावशाली हैं।"[11]

उपन्यासकार इंद्रबहादुर राई ने एक ही उपन्यास 'आज रमिता छ' (वि. सं. 2021) में कई पात्रों का योगदान देखा गया है। मूलत: नारी पात्र के मुक़ाबले पुरुष पात्रों की संख्या अधिक है।

अन्य उपन्यासकार तारानाथ शर्मा द्वारा लिखे गए उपन्यास हैं – 'ओझेल पर्दा' (वि. सं. 2023), 'मेरो कथा' (वि. सं. 2023), 'सुली' (वि. सं. 2030), 'झझलको' (वि. सं. 2045), 'नेपालदेखि अमेरिकासम्म' (वि. सं. 2049)। तारानाथ शर्मा कृत 'सुली' में काठमाण्डौ निवासी एक ऐसी स्त्री का चरित्र गढ़ा गया है एवं जिसमें बहुत सारे पहलू समाहित है। जैसे - संकुचित दृष्टिकोण, युवतियों की यौन विकृति तथा गाँव से शहर आने वालों की दुर्दशा आदि का चित्रण किया गया है।

परशु प्रधान द्वारा कृत तीन उपन्यास हैं - 'रात जो पग्लन्छ' (वि. सं. 2024), 'सबै बिर्सिएका अनुहारहरु' (वि. सं. 2024) एवं 'आकाश विभाजित छ' (वि. सं. 2032)। इनके उपन्यासों की विषयवस्तु यौन संबंधी तथा सामाजिक संदर्भ के विविध पक्ष की प्रस्तुति लिए हुए है।इनके एक उपन्यास में विधवा नारी को सामाजिक कारणों से बाध्यतापूर्वक अपने यौन आवश्यकताओं का किस

[11] लुइटेल डॉ. खगेंद्रप्रसाद. (2069). ***नेपाली उपन्यासको इतिहास.*** काठमाण्डौ : नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान. पृ.सं. 165.

प्रकार दमन करना पड़ता है इसका चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में देखा जाता है। इसके अतिरिक्त इनके उपन्यासों में बालविवाह, अनमेल विवाह का भी उल्लेख मिलता है।

इस कड़ी में अगला नाम डी.पी. अधिकारी का आता है। इन्होंने 'आशमाया' (वि. सं. 2025), 'धरती अझै बोल्दैछ' (वि. सं. 2027) एवं 'युगांतकारी' (वि. सं. 2056) आदि उपन्यासों की रचना की। इनका पहला उपन्यास 'आशमाया' प्रमुख स्त्री पात्र आशमाया का संघर्षशील जीवन पर आधारित है। पति द्वारा उपेक्षित एवं दूसरी शादी करने के कारण आशमाया अपनी बेटी के साथ अलग रहने को मजबूर होती है। उस दौरान आशमाया का जीवन अत्यंत संघर्षमय में बीतता है गुरुजी बूढा द्वारा अत्याचार करने पर किसी भी प्रकार से (प्रशासन, पुलिस, पड़ोसी) सहायता न मिलने के उपरांत आशमाया स्वयं खुकुरी (एक प्रकार का धारदार हथियार) लेकर प्रतीकार करती है, परंतु पुलिस द्वारा मदद करने के बदले उसपर लाठी चलाई जाती है। एक स्त्री अकेले होने पर भी हार नहीं मानती बल्कि और मजबूती के साथ अत्याचार का विरोध कर सकने में सक्षम हो सकती है ये इस उपन्यास में उपन्यासकार डी.पी. अधिकारी द्वारा दर्शाने की कोशिश की गई है।

उपन्यासकार भीमचरण थापा द्वारा रचित उपन्यास हैं – 'माया' (वि. सं. 2031), 'मोड' (वि. सं. 2033), 'प्रतीक्षा' (वि. सं. 2038), 'पर्खाल' (वि. सं. 2041), 'शारदा' (वि. सं. 2046) तथा 'कल्पना' (वि. सं. 2048) है। जैसा कि प्रतीत है उपन्यासों के नाम स्त्री पात्र पर (माया, प्रतीक्षा एवं शारदा) आधारित है इसलिए इसमें क्रमश: स्त्रियाँ ही मुख्य पात्र हैं तथा उपन्यास का विषय भी इन्हीं से संबंधित है।इस उपन्यास के माध्यम से समाज में प्रचलित अंधविश्वास, अंधधार्मिक, परंपरा के आधार पर स्त्रियों के प्रति किये जाने वाले शोषण का चित्रण करते हुए उन्हें मुक्ति दिलाने का भाव स्पष्ट होता है।[12] अत: इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि नेपाली साहित्य में उपन्यास को समाज के साथ जोड़ने

[12] लुइटेल डॉ. खगेंद्रप्रसाद. (2069). ***नेपाली उपन्यासको इतिहास.*** काठमाण्डौ : नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान. पृ.सं. 202.

का श्रेय दो उपन्यास 'रूपमति' और 'सुमति' को दिया जा सकता है। "रुद्रराज कृत 'रूपमति' और विष्णुचरण कृत 'सुमति' आधुनिक चिंतन के आधार पर रचे गए उपन्यास हैं।"[13]

2.2.2 स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना -

वि. सं. 2031 के आस-पास नेपाली साहित्य के प्रत्येक विधा में व्यापक रूप में आधुनिकता का प्रयोग होने लगा था। समग्र वैश्विक परिदृश्य में वैज्ञानिक उन्नति तथा आर्थिक समुन्नति के कारण साहित्य के प्रत्येक अंग में उक्त परिदृश्य का प्रभाव देखा जा सकता है। नेपाली उपन्यास विधा के इस अवधि में कई प्रवृत्ति एवं धाराएँ प्रविष्ट हुए। इसे संख्यात्मक एवं गुणात्मक दृष्टि से देखा जाए तो यह नारी लेखन को अग्रगति प्रदान करने के लिए प्रेरित करती है।

इस काल की प्रथम महिला उपन्यासकार हैं पवनकुमारी, जिन्होंने 'प्रतिज्ञा' (वि. सं. 1989) उपन्यास की रचना की। नेपाली उपन्यास के इतिहास में 'प्रतिज्ञा' किसी महिला द्वारा नेपाल में ही रहकर लिखा गया पहला नेपाली उपन्यास माना जाता है। इस उपन्यास में प्रेम को मुख्य विषय बनाकर सत्य घटनाओं पर आधारित विषयवस्तु को रखा गया है तथा इसमें हिंदी-संस्कृत भाषा का प्रयोग देखा जाता है, लेकिन इस उपन्यास में कई त्रुटियाँ पायी गई है जैसे - वस्तु विन्यास, अभिव्यक्ति कौशलता आदि की कमजोर प्रस्तुति होने के कारण साहित्य जगत में इसका ज्यादा नाम नहीं हो पाया। अत: इसे प्रेमवर्णित, आदर्शवादी ऐतिहासिक कृति मात्र माना गया। इसके बाद अन्य महिला उपन्यासकारों में सुशीलादेवी के द्वारा रचित 'स्वालम्बी केटो' (वि. सं. 1916) प्रकाशित है।

वि. सं. 2020 के दशक में नेपाली नारी उपन्यासकारों की संख्या में गुणात्मक वृद्धि देखा जा सकता है। इस क्रम में मायादेवी सुब्बा कृत 'पश्चताप' (वि. सं. 2020) एवं 'बिलौना' (वि. सं. 2020) उपन्यास प्रकाशित होते हैं। 'पश्चताप' उपन्यास में दार्जीलिङ और नेपाल के सामाजिक परिवेश में संयुक्त परिवार तथा पारिवारिक परिवेश को समेटा गया है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन नेपाली समाज

[13] शर्मा, डॉ. गोमा देवी. (2018). ***भारतीय नेपाली साहित्यको विश्लेषणात्मक इतिहास***. मणिपुर : गोर्खा ज्योति प्रकाशन, पृष्ठ सं. 202.

के आर्थिक-सामाजिक स्थिति को यथार्थपरक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसके बाद शांति प्रधान कृत 'करुणा' (वि. सं. 2022) आता है।

दार्जीलिङ की भूमि में जन्मी नेपाल को अपना कर्मभूमि बनाने वाली लेखिका पारिजात, नेपाली साहित्य में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में अपने लेखनी के माध्यम से प्रसिद्धि हासिल कर चुकी हैं। विशेषत: नेपाली कथा-साहित्य में अपने वैचारिक दृष्टि के साथ पारिजात ने लगभग एक दर्जन उपन्यासों की रचना की है। नेपाली उपन्यास के इतिहास में 'शिरीषको फूल' का प्रकाशन एक युगांतकारी घटना है। इस उपन्यास के बहाने नेपाली उपन्यास में अस्तित्ववादी दर्शन का प्रवेश होता है। विसंगतिवादी, अस्तित्ववादी तथा शून्यवादी दर्शन से प्रभावित होकर यह उपन्यास पलायन की तरफ उन्मुख हुआ है।

पारिजात के उपन्यास इस प्रकार है – 'शिरीषको फूल' (वि. सं. 2022) पारिजात का पहला उपन्यास है। इस उपन्यास में अतृप्त यौनकुण्ठा, जीवन में निस्सारता व निरर्थकता, विसंगातिवादी-अस्तित्ववादी एवं शून्यवादी दृष्टिकोण, जीवन विरोधी धारणा आदि समाहित है। महत्ताहीन उपन्यास में जीवन में अस्तित्वहीनता, निस्सारता और विसंगाति के बोझ तले दबे रहने को बाध्य मानव जीवन को प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त नेपाली समाज में स्त्रियों की दयनीय स्थिति को भी रेखांकित किया गया है। 'उसले रोजेको बाटो' (वि. सं. 2034) उपन्यास की खास बात यह है कि इसमें कई समस्याओं को एक साथ प्रस्तुत किया गया है। जो इस प्रकार है - सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्या, समाज सेवा की आड़ में किए जाने वाले धर्म प्रचार से राष्ट्र एवं समाज को कितना नुकसान पहुँच सकता है, जैसे प्रश्नों को उठाया गया है। इसके अलावा शोषण एवं उत्पीडन के शिकार जनताओं की स्थिति, काम एवं भोजन के खोज में नेपाली जनता का विदेश में अपमानित होकर रहने की लिए बाध्य होना, वर्गीय विषमता एवं द्वंद्व, शोषण के विरुद्ध विद्रोह, शोषणरहित एवं समतामूलक समाज के सृजन हेतु परिवर्तन की अपेक्षा, प्रगतिवादी चेतना, मानवतावादी भावना तथा देश-प्रेम और अस्तित्व बोध की भावना को भी यहाँ स्थान मिला है।

पारिजात के अधिकांश उपन्यासों का शीर्षक प्रतीकात्मक एवं कवितात्मक रहा है, लेकिन इनके अंतिम उपन्यास 'बोनी' (वि. सं. 2048) का नाम उपन्यास के किसी पात्र के नाम के आधार पर रखा गया है। प्रतीकात्मक, कलात्मक एवं कवितात्मक शीर्षकों के माध्यम से पारिजात उपन्यास के कथ्य को प्रस्तुत करती है। इस उपन्यास का प्रमुख विषय सामाजिक विकृति, विसंगति, अन्याय, अत्याचार तथा शोषण का प्रतिकार करना प्रत्येक नागरिक का एवं विशेष रूप से नारी को सचेत या सजग करने की भावना अभिव्यंजित हुई है। 'बोनी' में एक ऐसी लड़की के चरित्र को गढ़ा गया है जो कुसंस्कार से ग्रसित है, जिसका कारण अल्पशिक्षा एवं समाज में व्याप्त कुरीतियाँ हैं। इस उपन्यास में धुम्रपान, मदिरापान जैसे पदार्थों के सेवन से शारीरिक एवं मानसिक रूप से जीवन को क्षति पहुँचाने वाले चीजों से सतर्क रहने की भावना प्रखर रूप से उपन्यास में अभिव्यक्त हुआ है।

'परिभाषित आँखाहरु' (वि. सं. 2046) उपन्यास में शारीरिक तथा मानसिक रूप से शोषित, पीड़ित नारी के संवेदना की मार्मिक प्रस्तुती हुई है साथ ही नेपाली समाज में व्याप्त विकृति, विसंगति एवं विविध प्रकार के अपराध व गुंडागर्दी, जातीय भेद, मानव तस्करी आदि से उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों का मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में हो पाया है। इस उपन्यास में विशेष रूप से एक ऐसी स्त्री को केंद्रबिंदु बनाया गया है जिसका शारीरिक एवं मानसिक रूप से शोषण हुआ है। इसकी समस्याओं को संवेदना के साथ बड़े ही मार्मिक ढंग से चित्रण किया गया है। पारिजात के दोउपन्यास जो सामाजिक यथार्थ के नकारात्मक पक्ष पर केन्द्रित है, जहाँ परिभाषित आँखाहरु में समस्याओं को चिन्हित किया गया है वहीं 'बोनी' उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने उन समस्याओं के समाधान प्रस्तुत किया है।

साहित्य सृजन के प्रयोजन को उद्देश्य कहा जाता है। बिना उद्देश्य के किसी भी साहित्य का रचा जाना संभव नहीं है। साहित्यकार के प्रत्येक कृति में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कोई न कोई उद्देश्य अन्तर्निहित होता ही है। विसंगत जीवन को प्रस्तुत कर मानव अस्तित्व की खोज करना इनके उपन्यास का उद्देश्य रहा है। इनके अधिकांश उपन्यासों में राजनैतिक, सामाजिक, वैयक्तिक तथा

मानसिक धरातल के अँधेरे पक्ष यानि दुखद एवं त्रासद पक्ष अधिक मुखरित हुई है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि दुखद वातावरण को प्रस्तुती के साथ विभिन्न परिवेश का सृजन करना पारिजात के उपन्यासों की प्रवृत्ति रही है। लगभग सभी उपन्यासों के विषय एक से हैं परन्तु दृष्टिकोण तथा प्रस्तुति एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न। पारिजात के समग्र उपन्यासों को अगर देखा जाए तो ज्ञात होता है कि इनके उपन्यासों में वर्ग संघर्ष के द्वंद्व, शोषित-शाषक के बीच द्वंद्व एवं मूल रूप से विसंगातिवादी-अस्तित्ववादी एवं शून्यवादी दृष्टिकोण के अतिरिक्त सामाजिक यथार्थवादी, आलोचनात्मक यथार्थवादी एवं प्रगतिवादी अवधारणा को भी समाहित किया गया है।

इसके पश्चात् आशा सिंह कृत 'दाइजो' (वि. सं. 2027) उपन्यास प्रकाशित होता है। इसके अलावा इनके अन्य दो उपन्यास 'राती रोएपछि' (वि. सं. 2036) एवं 'फर्केर हेर्दा' (वि. सं. 2040) भी प्रकाशित हैं। 'दाइजो' उपन्यास में सामाजिक प्रथा दहेज़-प्रथा से उत्पन्न होने वाली विभिन्न प्रकार की समस्याओं को नारी जीवन से जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। नेपाली उपन्यास विकास के क्रम में अन्य महिला उपन्यासकार है - प्रमिला उपाध्याय। इन्होंने दो जासूसी उपन्यासों की रचना की है– 'दुई हत्या एक भेद' (वि. सं. 2019) एवं 'रहस्यमय युवक' (वि. सं. 2030)। इसके अतिरिक्त एक सामाजिक उपन्यास 'शिवा' (वि. सं. 2045) भी लिखा है जिसका प्रकाशन हरिगोपाल प्रधान की साप्ताहिक पत्रिका मंथन एवं सुधा पत्रिका में धारावाहिक रूप में होता था।

नेपाली साहित्य के जासूसी उपन्यास के इतिहास में प्रमिला उपाध्याय एक ऐसा नाम है जिन्होंने सर्वप्रथम इस विधा के उपन्यासों की रचना की है। 'शिवा' उपन्यास में काठमांडू के शहरी क्षेत्र के मध्यवर्गीय परिवार की एक युवती की कहानी है, उस युवती के भोलेपन का फायदा उठाकर उसके रिश्तेदार उसे देह बाजार की तरफ धकेलते हैं और जो लोग यह कार्य कर रहे हैं या करा रहे हैं वे समाज में सम्मानित जीवन निर्वाह कर रहे हैं। इस तथ्य को यथार्थपरक ढंग से उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। अन्य जासूसी उपन्यासों में मिनू कृत 'रहस्यमय जासूस' (वि. सं. 2028), मेनुका कृत 'रावण

साहबको हत्या' (वि. सं. 2028) और प्रेमा कृत 'तीन हत्या' आदि प्रमुख है। उपरोक्त महिला उपन्यास लेखन परंपरा को नेपाली उपन्यास के इतिहास में पहला चरण के अंतर्गत रखा गया है।

नेपाली उपन्यास विधा के अंतर्गत नारी लेखन के क्षेत्र में (वि. सं. 2030) से सहलेखन जैसे प्रयोगात्मक प्रवृत्ति का आगमन होता है। इस प्रकार के प्रयास के अंतर्गत मंजू कंचुली और प्रेमा शाह ने अन्य आठ पुरुष उपन्यासकारों के साथ मिलकर 'आकाश विभाजित छ' (वि. सं. 2032) नामक उपन्यास की रचना करते हैं। यह उपन्यास कुल दस भागों में विभाजित है। इस उपन्यास की कथावस्तु उपन्यासकारों के अनुरूप स्वतंत्र विचार, दृष्टिबिन्दु एवं शिल्प-शैली के संयोजन पर आधारित है। प्रत्येक भाग में कथावस्तु को संयोजन करने हेतु एक प्रमुख पात्र के रूप में दुर्गा को लिया गया है। अन्य उपन्यासकारों की तरह ही इन दोनों महिला उपन्यासकारों ने भी प्रमुख पात्र दुर्गा के जीवन में लगे आरोप-प्रत्यारोप को अपने विचार तथा औपन्यासिक दृष्टि बिंदु से प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार के नव प्रयोग में उपन्यासकारों ने अविस्मरणीय योगदान दिया है। मंजू काँचुली कृत 'होम' (वि. सं. 2062) एवं प्रेमा शाह कृत 'मम्मी' (वि. सं. 2040) उपन्यास आगे जाकर प्रकाशित होते हैं। प्रेमा शाह कृत 'मम्मी' संस्मरणात्मक शैली में लिखा गया एक लघु उपन्यास है जो वस्तुतः नारी समस्याओं पर आधारित है। इस उपन्यास में नारीवादी चेतना की प्रबलता देखी जा सकती है। इसमें एक ऐसी स्त्री का चरित्र गढ़ा गया है जो स्वाभिमानी है और उसके खोये हुए अस्तित्व को खोजा गया है साथ ही पुरुष के स्वार्थी चरित्र एवं कपट स्वभाव को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

इस क्रम में नेपाली उपन्यास क्षेत्र में नारी लेखन की सशक्त प्रतिनिधित्व करने वाली लेखिका भागीरथी श्रेष्ठ का नाम आता है। उन्होंने अपने जीवन काल में तीन उपन्यास लिखे। जो हैं - 'मालती' (वि. सं. 2034), 'यस्तो एउटा आकाश' (वि. सं. 2046) एवं 'अग्निपर्व' (वि. सं. 2064)। 'मालती' उपन्यास मूलतः नेपाली समाज को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है जिसमें विकृति से उत्पन्न होने वाले सामाजिक स्थिति को प्रमुखता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ-साथ उपन्यास में देश-विदेश में रहने वाले नेपाली जनताओं के द्वारा भोगे हुए दुखदायी घटनाओं को मार्मिक ढंग से

चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में देश में व्याप्त परंपरागत कुसंस्कार, रूढ़िग्रस्त सामाजिक मान्यताएँ, आर्थिक बाध्यता एवं मानवीय दुर्बलता जैसे समस्याओं को प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया गया है।

'यस्तो एउटा आकाश' नारी समस्याओं पर आधारित एक आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी उपन्यास है। इस उपन्यास में पति-पत्नी के बीच के अनबन से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के प्रति संकेत करते हुए उन समस्याओं के समाधान की खोज की गई है। उपन्यास में कथावस्तु नेपाल के ग्रामीण परिवेश में केन्द्रित होने के कारण इसमें आंचलिकता का बोध होता है।

इसके पश्चात् मूल रूप से नारी समस्याओं को केंद्र में रखकर उपन्यास सृजन करने के क्रम में अगला नाम गीता केशरी का आता है। उन्होंने लगभग दर्जन भर उपन्यास लिखा है। उनके उपन्यास निम्नलिखित है – 'कसिंगर' (वि. सं. 2034), 'सौगात' (वि. सं. 2046), 'आवाज' (वि. सं. 2047), 'मुक्ति' (वि. सं. 2048), 'खोज' (वि. सं. 2050), 'अंतिम' (वि. सं. 2051), 'विश्वास' (वि. सं. 2052), 'खुला आकाश' (वि. सं. 2054), 'नोकरी' (वि. सं. 2055), 'निष्कर्ष' (वि. सं. 2060), 'बदलिदो क्षितिज' (वि. सं. 2066) एवं 'फक्रंदो कोपिला'। इनके उपन्यासों का मूल कथ्य ही नारी समस्याओं पर आधारित है। उन समस्याओं में प्रमुख है – मानव तस्करी, पारिवारिक विघटन, नारी अशिक्षा, नारी उत्पीड़न, मानसिक द्वंद्व, नारी की आर्थिक सबलता, शैक्षिक उन्नति, स्वतंत्रता एवं समानता के पक्ष में बुलंद आवाज उठाया गया है। 'मुक्ति' उपन्यास में वर्ष (वि. सं. 2046) के राजनीतिक परिदृश्य में परिवर्तनस्वरूप प्रजातंत्र व्यवस्था के बाद नेपाली महिलाओं के ऊपर हुए अत्याचारों का बदला लेने की तीव्र इच्छा प्रकट हुई है। गीता के अन्य उपन्यास विश्वास में एक ऐसी नारी चरित्र को गढ़ा गया है जो अनेक सामाजिक कुप्रथाओं से पीड़ित है। इस उपन्यास में टेस्ट ट्यूब बेबी जैसे नवीन अवधारणा की कल्पना की गई है।

पारिजात, गीता केशरी, भागीरथी श्रेष्ठ के बाद नेपाली उपन्यास लेखन के क्षेत्र में वानिरा गिरी एक ऐसा नाम है जो काफी सक्रिय लेखिका है। इन्होंने तीन उपान्यासों की रचना की है जो इस प्रकार

है – 'कारागार' (वि. सं. 2035), 'निर्बंध' (वि. सं. 2044), 'शब्दातीत शान्तनु' (वि. सं. 2056)। 'कारागार' उपन्यास में नारी की उस स्थिति को चित्रित किया गया है जहाँ उसे कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अपनों के द्वारा ही कुषड्यंत्र का शिकार होने के लिए बाध्य की जाती है और जीवन भर अविवाहित रह जाती है जिससे उपजने वाली मनोदशा को उपन्यास में दर्शाया गया है। इसी प्रकार इनके अन्य दो उपन्यास 'निर्बंध' और 'शब्दातीत शान्तनु' का भी केंद्र विषय नारी समस्या है। नारीवादी चिंतन का सफल प्रयास इस उपन्यास में चित्रित हो सका है। "लैंगिक समानता, स्त्री स्वातंत्र्य की परिभाषा की तलाश करते हुए उसकी व्याख्या करना एवं उपन्यासों में नारी शोषण और उत्पीड़न को मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करना जिससे संवेदनशीलता, तार्किकता एवं वैचारिकता का मिश्रित रूप परिलक्षित होता है।"[14]

इसी क्रम में अगली उपन्यासकार हैं - प्रेमा शाह। इनके द्वारा रचित तीन उपन्यास निम्नलिखित हैं – 'एक धुन बाँसुरीको' (वि. सं. 2044), 'त्रिकोण' (वि. सं. 2044), और 'कृष्ण पुष्प र धूलोको फूल'। उपन्यास क्षेत्र के कड़ी में अगला नाम कमल न्योपाने का है। इनके द्वारा रचे गए उपन्यास हैं – 'उसको सपना' (वि. सं. 2034) उपन्यास में नारी को कठपुतली मानने वाले पितृसत्तात्मक मानसिकता का विरोध किया गया है। नेपाली उपन्यास में सहलेखन की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए अन्य उपन्यासकार बेंजु शर्मा ने ध्रुवचन्द्र गौतम एवं ध्रुव सापकोटा के साथ मिलकर 'देहमुक्त' (वि. सं. 2042) नामक उपन्यास का सृजन किया।

इसी काल में सविता श्रेष्ठ कृत 'अनंतमा मिलने आशामा दुई सामान्तर रेखाहरु' (वि. सं. 2044), एवं 'जीवन ज्योति' (वि. सं. 2052), बबि शाह कृत 'बसंत कालमा न फूलेको फूल' (वि. सं. 2034), मालश्री कृत 'आदर्श' (वि. सं. 2040), शशिकला मानन्धर कृत 'शैली' (वि. सं. 2044) एवं 'बाटोमा भेतिएको मान्छे' (वि. सं. 2063) आदि जैसे उपन्यास लिखकर महिला उपन्यासकारों ने नेपाली साहित्य के विकास में विशिष्ट योगदान दिया है।

---

[14] लुइटेल, लीला. (2068). ***नेपाली महिला उपन्यासकार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन, पृष्ठ सं. 150.

नेपाली उपन्यास परंपरा के अंतर्गत सहलेखन जैसे प्रयोग की परंपरा को निरंतरता देते हुए उपन्यासकार सीता पाण्डे का 'अवतार विघटन' (वि. सं. 2045) नामक उपन्यास प्रकाशित होता है। कुल बारह उपन्यासकारों के संयुक्त प्रस्तुति में सीता देवी एक मात्र महिला उपन्यासकार हैं। इनका अन्य उपन्यास है – 'अंतर्द्वंद्व' (वि. सं. 2056) जिसमें कन्यादान जैसे सांस्कृतिक सन्दर्भ में नारी को केवल भोग की वस्तु के रूप में स्थापित करने वाली व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाया गया है। समाज के इस पुरुषवादी सामाजिक व्यवस्था का लेखिका ने उपन्यास के माध्यम से आपत्ति दर्ज की है तथा नारी को स्वयं के अस्तित्व बोध हेतु सचेत करने का प्रयास किया गया है।

अत: इस प्रकार देखा जा सकता है कि इस काल के महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में पहले चरण की अपेक्षा नारी लेखन में संख्यात्मक तथा गुणात्मक रूप में अधिक प्रगति हुई है। इस अवधि में नेपाल की राजनीति में आए परिवर्तन के कारण कई शोषित एवं दमित जनताओं ने अपने अस्तित्व को प्राथमिकता दी, फलस्वरूप देश की आर्थिक, शैक्षिक क्षेत्र के साथ-साथ साहित्य लेखन के क्षेत्र में भी नवीनतम प्रवृत्तियों का आगमन होने लगा। महिला लेखिकाओं ने बढ़-चढ़कर नेपाली साहित्य के अनेक विधाओं में अपना कलम चलाया। इस चरण के उपन्यासों में विशेषत: देखा गया कि उपन्यासकारों ने नारी समस्या के विविध स्वरुप को स्थान देने के साथ-साथ स्त्री चेतना को भी निखारा। लैंगिक विभेद के प्रति लेखिकाओं का पहले से सामान्य असंतुष्टि थीं, किन्तु इस दौर में लेखिकाओं ने इस समस्या का विरोध तीव्र रूप से किया। इस दौर के उपन्यासकारों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें आत्मनिर्णय की आवाज एवं न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को गंभीरता से लिया जाने लगा। इसके अतिरिक्त इनके उपन्यासों में ग्रामीण जनजीवन के परिवेश को केंद्र में रखते हुए अस्तित्ववादी, सामाजिक यथार्थवादी, मनोविश्लेषणवादी, एवं प्रयोगवादी प्रवृत्ति का प्रभाव दिखता है। उपन्यास के परंपरागत लेखन के विपरीत ही उपन्यास लिखा गया है तथा इनके उपन्यासों में शिल्प-शैलीगत नूतनता, स्वच्छ दृष्टिबिन्दु तथा विस्तृत सोच का प्रयोग हो पाया है। इस दौर के महिला

उपन्यासकारों में भागीरथी श्रेष्ठ, प्रेमा शाह, वानिरा गिरी, गीता केसरी तथा सीता पाण्डे आदि ने उपन्यास विधा में सशक्त हस्ताक्षर देकर नेपाली साहित्य को समृद्धि प्रदान की है।

2.3. सन् 1990 से अद्यतन :-

नेपाली उपन्यास के इतिहास में सन् 1990 या उसके उपरांत लिखे गए उपन्यासों को नेपाली उपन्यास के आधुनिक काल के चौथे चरण के रूप में समझा जा सकता है। इसके अंतर्गत ऐसे उपन्यास पाए गए हैं जिनमें इंद्रबहादुर राई तथा पारिजात के अस्तित्ववादी धारा को आधुनिक एवं नए रूप में प्रस्तुति हुई है। ध्रुवचन्द्र गौतम इसी प्रवृत्ति के उपन्यासकर हैं जिन्होंने 'अन्त्यपछि' (वि. सं. 2024), 'बालुवामाथी' (वि. सं. 2028), 'देहमुक्त' (वि. सं. 2040), 'उपसंहार' (वि. सं. 2048), 'ज्यागा' (वि. सं. 2050), 'दुविधा' (वि. सं. 2052), 'तथाकथित' (वि. सं. 2059), 'अप्रिय' (वि. सं. 2067) आदि उपन्यासों की रचना कर अस्तित्ववादी धारा के चिंतक के रूप मे अपने आप को स्थापित किया है। उनके उपन्यासों के विषय पौराणिक होते हुए भी आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सटीक रूप में प्रस्तुत होने में सफल हो पाया है।

लोकतन्त्र से पहले और लोकतन्त्र प्राप्ति के पश्चात् की राजनीति में आए बदलाव जैसे – अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार, नातावाद, तस्करी, शोषण, दमन आदि विषयों को ध्रुवचन्द्र गौतम ने प्रमुखता से अपने उपन्यासों में स्थान दिया है। इस काल में ऐसे भी उपन्यासकर हुए हैं जिन्होंने स्त्री-विषयक उपन्यासों की रचना की जैसे - जवाहर रोका, भक्तबहादुर नेपाली, मदनमणि दीक्षित, यू. कार्की, ध्रुव सापकोटा, पुष्पनाथ शर्मा, विक्रमवीर थापा, सञ्जय थापा, राजेश्वर देवकोटा, शंकर भारती, विंध्या सुब्बा, होमनाथ सुवेदी, भारती खरेल, कन्हैया नासननी, बलदेव मजगैयाँ, सरूभक्त, भीम दाहाल, इन्दिरा प्रसाई, लोकनाथ उपाध्याय चापागाई, शोभा भट्टराई, भाषा भण्डारी, कविता पौडेल, पद्मावती सिंह, प्रभा कैनी आदि।

2.3.1 पुरुष उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना-

इस काल के उपन्यासों में नारी के अधिकार के पक्ष में आवाज बुलन्द पायी गई है। इसके अतिरिक्त गरीबी, महंगाई, बेरोजगारी, एवं दलित या निम्न माने जाने वाले व्यक्तियों के समस्याओं को स्थान दिया गया है। भक्तबहादुर नेपाली कृत 'बेचिएका दीदीबहिनीको कथा' (वि. सं. 2051) में नेपाल की स्त्रियों की जिश्म-फरोशी जैसे धंधों को अंजाम देने वाले दलालों द्वारा उनपर किए जाने वाले अत्याचार को दर्शाया गया है। उन स्त्रियों पर होने वाले शोषण, दमन तथा अन्याय का वीभत्स रूप इस उपन्यास के माध्यम से हमारे सामने अभिव्यक्त हुई है। इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य स्त्री के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार की निंदा कर उन स्त्रियों के प्रति सहानुभूति तथा सद्भाव व्यक्त करना रहा है।

अन्य उपन्यासकार पुष्पनाथ शर्मा द्वारा कुल तीन उपन्यास लिखे गए– 'स्नेहलता' (वि. सं. 2040), 'बिहानको खोजी' (वि. सं. 2042) तथा 'तामाङ जेठो' (वि. सं. 2044)। इनमें से दो उपन्यास स्त्री विषयक हैं। 'स्नेहलता' उपन्यास में समाज के व्यवस्था के भीतर एक स्त्री के रूप में भोगे जाने वाले दुख को दर्शाया गया है। साथ ही उच्चवर्ग के व्यक्तियों द्वारा स्त्रियों के साथ किए जाने वाले दुर्व्यवहार की निंदा की गई है। स्त्री के प्रति सम्मान से पेश आने की भावना इस उपन्यास में अभिव्यक्त हुई है। दूसरा उपन्यास 'बिहानको खोजी' में भी स्त्री से संबंधित समस्याओं को उजागर किया गया है। इस उपन्यास में बाल विधवा की समस्या को मुख्य समस्या के रूप में दिखाया गया है। बाल विवाह के साथ-साथ बाल विधवा की समस्या जुड़ी हुई है। इसी समस्या को उठाते हुए उपन्यासकार पुष्पनाथ शर्मा ने विधवा के कारुणिक जीवन में आने वाले समस्याओं को अपने उपन्यास का विषय चुना तथा ये संदेश देने की कोशिश की कि जीवन जीने हेतु मनुष्य को लगातार संघर्ष करना चाहिए और साथ ही नारी के प्रति सम्मानजनक व्यवहार करना चाहिए।

विक्रमवीर थापा ने कुल तीन उपन्यासों की रचना की है – 'विगतको परिवेश भित्र' (सन् 1983), 'टिस्टादेखि सतलजसम्म' (सन् 1983) और 'माटो बोल्दो हो'(सन् 2007)। विगतको परिवेश भित्र' उपन्यास स्त्री जीवन से संबंधित है। इस उपन्यास में एक बाल विधवा का चित्रण किया

गया है, सामाजिक रूप से हीन दृष्टि की शिकार इस बाल विधवा का कष्टमय जीवन उद्धृत है। विधवा नारी जीवन की विवशता, समाज द्वारा प्रताड़ना आदि का चित्रण करने में उपन्यासकार सफल होते हैं।[15]

सञ्जय थापा उर्फ प्रदीप नेपाल द्वारा कई उपन्यास लिखे गए जिनमें से 'पार्टीकी आमा' (वि. सं. 2042), 'एक्काईसौं शताब्दीकी सुम्निमा' (वि. सं. 2058) और नन्दिता (वि. सं. 2059) स्त्री से संबंधित हैं। 'पार्टीकी आमा' नामक उपन्यास में एक वृद्ध महिला की कथा है जिसने पार्टी को निचले पायदान से उठाकर व्यवस्थित किया। उसके त्याग, समर्पण और सहयोग के कारण पार्टी एक निश्चित स्तर पर पहुँच गई है जिसमें एक बूढ़ी स्त्री का पूरा योगदान रहा है। इसी विषय को लेकर यह उपन्यास रचा गया है। उपन्यासकार प्रदीप नेपाल द्वारा कृत अन्य उपन्यास 'एक्काईसौं शताब्दीकी सुम्निमा' में एक ऐसी स्त्री का चरित्र गढ़ा गया है जिसने सक्रिय राजनीति को छोड़ा और सामान्य जीवन जीने लगी। वही 'नन्दिता' उपन्यास में नन्दिता उपन्यास की नायिका हैं जिसने नारी अस्तित्व की रक्षा हेतु आजीवन विद्रोह किया। अत: उपरोक्त तीनों उपन्यासों में उपन्यासकार प्रदीप नेपाल की नायिकाएँ सशक्त देखी जा सकती है।

उपन्यासकार राजेश्वर देवकोटा द्वारा लिखित उपन्यास 'पूर्वकथा' (वि. सं. 2043) में राणाकालीन राजनैतिक-सामाजिक संदर्भ लिया गया है। इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष की सहभागिता देखी जा सकती है तथा साथ ही स्त्री के पक्ष में वकालत की गई है।

अन्य एक उपन्यासकर पुण्य निरौला ने लगभग चार उपन्यास लिखे। प्रथम उपन्यास 'तकदीर' (वि. सं. 2042) स्त्री केन्द्रित है। इस उपन्यास में प्रमुख स्त्री पात्र द्वारा ससुराल में भोगे गए कष्टों-पीड़ाओं की कारुणिक कथा कही गई है। परंतु इस उपन्यास में लेखक ने एक प्रकार से स्त्री के ऊपर हुए अत्याचार, दुख आदि को उसकी तकदीर या पिछले जनम का फल माने जाने वाले दृष्टिकोण को

[15] शर्मा, डॉ. गोमा देवी. (2018). ***भारतीय नेपाली साहित्यको विश्लेषणात्मक इतिहास.*** मणिपुर : गोर्खा ज्योति प्रकाशन. पृष्ठ सं. 516

समर्थन किया है। "बालविवाह, बहुविवाह, सौतन समस्या, उच्च्वर्गीय शोषण, यौनविकृति, गरीबी आदि विविध सामाजिक समस्याओं की प्रस्तुति कर इस उपन्यास में स्त्री द्वारा भोगे गए पीड़ाओं को पूर्वजन्म का फल जैसे भाग्यवादी दृष्टि की प्रस्तुति हुई है।"[16] पुण्य निरौला का दूसरा उपन्यास 'पार्वती' (वि. सं. 2043) भी स्त्री समस्या पर केन्द्रित है। इस उपन्यास में सामाजिक अंधविश्वास के चलते किस प्रकार एक स्त्री पर नाना प्रकार के अत्याचार, अन्याय होते हैं उसका मार्मिक चित्रण किया गया है।

होमनाथ सुवेदी द्वारा लगभग आठ उपन्यास लिखे गए। जिनमें से 'न्याउली' (2043) और 'रत्ना' (वि. सं. 2043) उपन्यास में विशेषत: स्त्री समस्या को दर्शाया गया है। 'न्याउली' उपन्यास में एक ऐसी स्त्री का चरित्र गढ़ा गया है जिसका शोषण उसके अपने परिजनों द्वारा किया जाता है। अपने परिजनों द्वारा दिये गए ज़ख्म, पीड़ा, यौन शोषण, कारावास, निराशा से मुक्त होने हेतु तथा आत्म स्वतन्त्रता के लिए नायिका का संघर्षमय जीवन यहाँ चित्रित हुआ है। वही अन्य उपन्यासों 'रत्ना', 'त्रिमूर्ति' एवं 'वीणा' में स्त्री के समस्या को केंद्र में रखकर विषयवस्तु रखा गया है। वीणा उपन्यास में पुरुष द्वारा छोड़ी गई एक युवती की कहानी है जो एकांगी जीवन जीने के कारण मानसिक कुंठा की शिकार होती हैं जिसके कारण वह युवती मानवेतर प्राणी कुत्ते के साथ भावनात्मक रूप से जुड़कर अपना जीवन व्यतीत करती है।

उपन्यासकर कन्हैया नासनानी द्वारा चार उपन्यासों की रचना की गई – 'क्लियोपाट्रा' (वि. सं. 2047), 'एउटा सहरको कथा' (वि. सं. 2048), 'सिपाही' (वि. सं. 2057) तथा 'रातो आँसु' (वि. सं. 2066)। 'क्लियोपाट्रा' नारी समस्या पर केन्द्रित उपन्यास है। इस उपन्यास को सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास के अंतर्गत रखा गया है। इसमें नारी द्वारा ही अन्य कई स्त्रियों को दुख तथा पीड़ा दिया गया है। इसका परिवेश फ़लक बहुत बड़ा है। इस उपन्यास में नारी के मनोविश्लेषण भाव का अध्ययन कर इसका यथार्थ चित्रण किया गया है। किसी न किसी रूप में नासनानी के उपन्यासों में

[16] लुइटेल, डॉ. खगेंद्रप्रसाद. (2069). ***नेपाली उपन्यासको इतिहास***. काठमांडों : नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान, पृ.सं. 253.

सामाजिक यथार्थ का पुट अवश्य देखने को मिलता है। नेपाली समाज में व्याप्त स्त्रियों की समस्याओं तथा पीड़ाओं को उपन्यास में चित्रण कर उपन्यासकार नारी स्वतन्त्रता के पक्ष में आवाज उठाते हैं।

उपन्यासकार बलदेव मजगैयाँ द्वारा लिखा गया उपन्यास 'नरमणि' (वि. सं. 2048) में एक स्त्री की समस्या को रखा गया है। एक भोली-भाली, कोमल एवं उदार प्रवृत्ति के स्त्री का दुरुपयोग कर पुरुष अपने स्वार्थी चरित्र का प्रदर्शन किस प्रकार करता है उसी का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। वही इनके अन्य उपन्यास 'चारु' (वि. सं. 2054) और 'मानसी' (वि. सं. 2063) में पुरुष और स्त्री के बीच के संबंध तथा विभेद से उत्पन्न होने वालेत्रासदी को दर्शाया गया है एवं स्त्री और पुरुष के मानसिक द्वंद्व को सामाजिक संदर्भ में जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। 'मानसी' उपन्यास के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि यह सामाजिक उपन्यास होते हुए भी इसमें नारी और पुरुष के मनोवैज्ञानिक पक्ष का चित्रण हुआ है। इनके द्वारा लिखे गए उपन्यासों में सामाजिक अंधविश्वास और लैंगिक असमानता को प्रमुख समस्या के रूप में चित्रित किया गया है। पुरुष के स्वार्थीपन व्यवहार का विरोध तथा नारी के सहनशील स्वभाव को सहानुभूति प्राप्त हुआ है साथ ही सामाजिक अंधविश्वास का विरोध और सुधारवादी तथा मानवतावादी दृष्टिकोण की प्रस्तुति इस उपन्यास में हुई है।

उपन्यासकार सरूभक्त द्वारा चार उपन्यासों की रचना की गई – 'पागल बस्ती' (वि. सं. 2048), 'तरूनी खेती' (वि. सं. 2053), 'समय त्रासदी' (वि. सं. 2059) और 'चुली' (वि. सं. 2059)। 'तरूनी खेती' उपन्यास में समाज में स्त्रियॉं की उपयोगिता तथा भूमिका के बारे में प्रश्न उठाया गया है। समाज में स्त्रियों की भूमिका संतानोत्पत्ति के लिए, संतान के लालन-पोषण हेतु, घर संभालने हेतु माना जाता है। वहीं यदि कोई स्त्री किसी कारणवश संतान को जन्म नहीं दे पाती तो पुरुष तुरंत दूसरी शादी करने में थोड़ा भी नहीं हिचकता। "पुरुषों की इन्हीं भोगवादी प्रवृत्ति, यौनेच्छा, यौन तृप्ति आदि मनोवैज्ञानिक संदर्भ को लेकर इस उपन्यास में नारी को संतान उत्पादन की मशीन समझने वाले मानसिकता को दिखाया गया है।"[17]

[17] लुइटेल, डॉ. खगेंद्रप्रसाद. (2069). ***नेपाली उपन्यासको इतिहास.*** काठमांडों : नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान, पृ.सं. 266.

पुरुषप्रधान समाज में स्त्री मात्र कामवासना पूर्ति हेतु साधन मानी जाती है। उपन्यास में दिखाया गया है कि स्त्री की इच्छाएं एवं संतान उत्पन्न हेतु लिए गए निर्णय पूर्ण रूप से पुरुष वर्ग के नियंत्रण में होता है। इन समस्याओं को रेखांकित करते हुए उपन्यासकार सरूभक्त पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों की वास्तविक स्थिति का चित्रण कर इस मानसिकता का विरोध करते हैं।

लोकनाथ उपाध्याय चापागाईं भारतीय नेपाली उपन्यासकार के रूप में जाने जाते हैं। इन्होंने केवल एक ही उपन्यास लिखा – 'आँधी' (सन् 1999) जो अत्यंत सार्थक रहा। इन्होंने भारतीय नेपाली समाज में पाए गए विसंगति, अंधविश्वास, लोभ, षड्यंत्र, नारी के प्रति संकीर्ण सोच, कलह, गुटबंदी आदि विभिन्न सामाजिक यथार्थ को अपने उपन्यास का विषय बनाया। शिक्षा के अभाव में नारी की जो दुर्गति होती है उसका चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में देखने को मिलता है।

2.3.2 स्त्री उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना -

इस दौर के स्त्री उपन्यासकारों की संख्या उपरोक्त दो कालों के मुक़ाबले अधिक एवं सशक्त है। विंध्या सुब्बा इस दौर की पहली महिला उपन्यासकार हैं जिन्होंने दार्जिलिङ को अपना कर्मभूमि बनाया। इन्होंने कुल तीन उपन्यास लिखे जो निम्नलिखित शीर्षकों से प्रकाशित हुए – 'फुलहरू, पहाड़हरू, धर्साहरू' (वि. सं. 2043), 'अथाह' (वि. सं. 2055) तथा 'निर्गमन' (सन् 2006)। इनके उपन्यास भिन्न-भिन्न विषयवस्तु लिए हुए है अर्थात् असामान्य मनःस्थिति व मानसिक रूप से ग्रस्त हुए पात्रों का निर्माण कर लेखिका अपनी रचनामकता से पाठकों को संदेश देने का प्रयास करती हैं। निर्गमन उपन्यास में लेखिका ने उस सत्य को उजागर करने को प्रयास किया है जहाँ के पुरुष स्त्रियों पर एकाधिकार रखने की कोशिश करते हैं परन्तु उपन्यास की नायिका पुरुष साथी के इस रवैये को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं है। अतः वह उसका घर तक त्याग देती है।

भारती खरेल द्वारा लगभग चार उपन्यास लिखे गए जिसके निम्नलिखित शीर्षक हैं – 'एउटी आमाको कथा' (वि. सं. 2046), 'गङ्गा जमुना' (वि. सं. 2046), 'कुमारी आमा' (वि. सं. 2051)

एवं 'लाहुरे' (वि. सं. 2052)। ये एक आदर्शवादी एवं आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यासकार हैं। इनके उपन्यास में विभिन्न परिवेश तथा परिस्थितियों में जैसे – बाल विवाह, अनमेल विवाह, अशिक्षा आदि समस्याओं को नेपाली स्त्रियों को ढोकर चलना पड़ रहा है उसी यथार्थ को दर्शाया गया है। उपन्यासकार भारती खरेल अपने उपन्यासों में स्त्री को ही परिवार के संरक्षक के रूप में देखती है। उनके अनुसार यदि एक स्त्री चाहे तो अपने घर को स्वर्ग बना सकती है और चाहे तो नरक भी बना सकती है, उसके ऊपर ही पूरे परिवार की ज़िम्मेदारी होती है। अत: उसका सद्गुण और दुर्गुण ही यह तय करेगा कि उसके परिवार में शांति, भाईचारा, अनुशासन रहेगा या नहीं। इसलिए वे अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्रियों पर एक प्रकार से नैतिक ज़िम्मेदारी की ओर इंगित करती हैं। अनमेल विवाह, बाल विवाह, अशिक्षा जैसे विषयवस्तु का चित्रण भारती खरेल के उपन्यासों में लक्षित होता है। इन उपन्यासों में आदर्शवाद को महत्व देते हुए नेपाली समाज के यथार्थ को दर्शाने का प्रयास किया गया है। समाज में प्रचलित ख़राब पक्ष की समाप्ति और नैतिकता का पक्ष लेते हुए लेखिका नजर आती हैं।

भारती खरेल के उपन्यासों के बारे में आलोचक लीला लुइटेल अपने पुस्तक नेपाली महिला उपन्यासकार में लिखती हैं कि "भारती खरेल नेपाली उपन्यास में रुद्रराज पाण्डे द्वारा आरंभ किए गए आदर्शोन्मुख यथार्थवादी प्रवृत्ति को आत्मसात् कर उपन्यास की सृजन करती हैं तथा उनके सभी उपन्यासों में इसी प्रवृत्ति की पुनरावृत्ति पायी जाती है।"[18]

इस चरण में यानि वि. सं. 2047 तक आते-आते नेपाली उपन्यास लेखन में स्त्री की सहभागिता बढ़ती चली गई। इनके संख्या में बढ़ोतरी का प्रमुख कारण राजनीति में आए बदलाव का है। चौथे चरण की अन्य महिला उपन्यासकार हैं - नीलम कार्की निहारिका, इन्होंने चार महत्वपूर्ण उपन्यास देकर नेपाली उपन्यास के विकास में अपना विशिष्ट योगदान दिया है। इनके द्वारा रचित चार उपन्यास इस प्रकार है – 'मौन जीवन' (वि. सं. 2041) (भावुक प्रेम की प्रस्तुति हुई है), 'नियतिको खेल' (वि. सं. 2053), 'तिमी म र उनी' (वि. सं. 2057) एवं 'अर्की आईमाई' (वि. सं. 2070)।

[18] लुइटेल, लीला. (2068). ***नेपाली महिला उपन्यासकार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 28.

'तिमी म र उनी' उपन्यास के माध्यम से लेखिका लैंगिक विभेद के अंत की इच्छा रखती है तथा मातृत्व की रक्षा करते हुए टेस्ट ट्यूब बेबी की परिकल्पना को महत्व देती है। इस प्रकार लेखिका में नारीवादी चेतना का ज्ञात होता है।

नीलम कार्की निहारिका का उपन्यास 'अर्की आइमाई' एक सशक्त नारी वेदनात्मक उपन्यास है और यह एक युवा लेखिका की शक्तिशाली कृति मानी जाती है। इस उपन्यास में अनमेल विवाह जैसी समस्याओं पर पाठकों का ध्यान खींचा गया है। अमेरिका का स्थायीवासी सुवर्ण अमेरिका में केवल यौनदासी और अपने प्रथम पत्नी के बच्चों की देखभाल करने के उद्देश्य से तारा से शादी का ढोंग रचाता है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने वहाँ के नेपाली-अमेरिकी संस्कृतिकरण द्वंद्व और उनके जीवन संघर्ष का चित्रण किया है।

इसके पश्चात् अन्य उपन्यासकार पुण्यरश्मि खतिवडा के तीन उपन्यास प्रकाशित होते हैं – 'जयंत र जुनू' (वि. सं. 2051), 'अक्लान्त' (वि. सं. 2052) और 'अधुरो अभिलाषा' (वि. सं. 2051)। इन उपन्यासों में नेपाली संस्कार एवं परंपरा की आड़ में समाज एवं परिवार की स्त्रियों के ऊपर किया जाने वाला शोषण, अन्याय व अत्याचार आदि को उजागर करने की कोशिश की गई है, तथा पुरुषों के मनमौजी प्रवृत्ति का विरोध करते हुए स्त्री-पुरुष के बीच आपसी समझदारी एवं ताल मेल पर जोड़ दिया गया है।

इसी क्रम में 'वेवारिसे' (वि. सं. 2052) एवं 'शिकार' (वि. सं. 2056) नामक दो उपन्यासों की रचयिता शोभा राना का प्रवेश नेपाली साहित्य में होता है। 'वेवारिसे' उपन्यास में अवैध यौन सम्बन्ध से जन्मी वेवारिसे नामक बालिका के शारीरिक और मानसिक पीड़ा से होकर गुजरने की कहानी है।

इन्दिरा प्रसाई ने लगभग चार उपन्यास लिखकर नेपाली उपन्यास के इतिहास में अपनी एक अलग पहचान बनाया। उनके द्वारा लिखे गए उपन्यास इस प्रकार हैं – 'विश्वामित्र' (वि. सं. 2054), 'रनमाया' (वि. सं. 2058), 'शिखा' (वि. सं. 2059) तथा 'लोग्ने र बिरालो' (वि. सं. 2060)। इनके

सभी उपन्यास स्त्री संबंधी विषय पर केन्द्रित है। प्रथम उपन्यास 'विश्वामित्र' में पुरुष के कामुक मानसिकता का चित्रण करते हुए शारीरिक भोग को ही प्यार मानने वाले युवाओं की भावनाओं को भी चित्रित किया गया है। इस उपन्यास के माध्यम से नेपाली स्त्रियों में विशेषत: यह देखा गया है कि वे पहले की अपेक्षा अभी अपने स्वतंत्र अस्तित्व बोध के प्रति अधिक जागरूक हैं। 'रनमाया' उपन्यास में नेपाली मूल की भूटानी स्त्री के जीवन संघर्ष को दर्शाया गया है। 'शिखा' उपन्यास में एक ऐसी स्त्री का चित्रण हुआ है जो प्रेम के अभाव में तड़पती है। "किसी भी उम्र, पड़ाव, स्थान अथवा परिस्थिति में स्त्रियों का पुरुषों द्वारा शारीरिक या मानसिक रूप से शोषण हुआ होता है इस धारणा को अभिव्यंजित कर 'शिखा' उपन्यास में स्त्री के अस्मिता की खोज की गई है।"[19] ऐसी स्त्रियों को भावनात्मक रूप से सबल बनाने का उद्देश्य प्रस्तुत उपन्यास में परिलक्षित होता है। इनके अंतिम उपन्यास उसको 'लोग्ने र बिरालो' में भी स्त्री के मनोवैज्ञानिक पक्ष का चित्रण किया गया है। अतृप्त प्रेम के कारण मनुष्य मानसिक रूप से परेशान रहता है, ऐसे मानसिक रोगियों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन कर उपन्यास के माध्यम से हमारे सामने प्रस्तुत है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि उपन्यासकार इन्दिरा प्रसाई ने मनोविश्लेषणात्मक एवं सामाजिक यथार्थवादी प्रवृत्ति के उपन्यासों की रचना कर अपने रचनात्मक कौशल का प्रदर्शन किया है।

समकालीन उपन्यास लेखन में सुम्मिता नेपाल और इंदिरा प्रसाई का स्थान सशक्त नारियों में से हैं। सुम्मिता के द्वारा लिखित उपन्यास हैं – 'एकांत पनि रुन्छ' (वि. सं. 2053), 'मेरा छातीका कोलाजहरु' (वि. सं. 2055), 'उडेका उमेरहरु' (वि. सं. 2060), 'काला काला रातहरुमा टेक्दै' (वि. सं. 2061), 'एउटा आवाजको जन्म' (वि. सं. 2060), 'आकाशको हजारों हातहरु र पत्रैपत्र' (वि. सं. 2068) (सुम्मिता नेपाल और इंदिरा प्रसाई द्वारा सहलेखन)।

उपन्यासकार शान्ता श्रेष्ठ द्वारा दो उपन्यास लिखा गया – 'सङ्गघर्षभित्रका अनौठा पाइला' (वि. सं. 2058) और 'घाउ उसको दुखा मेरो' (वि. सं. 2060)। इनके द्वारा रचित प्रथम उपन्यास

[19] लुइटेल, लीला. (2068). ***नेपाली महिला उपन्यासकार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 49.

'सङ्गघर्षभित्रका अनौठा पाइला' में अंधविश्वास से उत्पन्न होने वाले विसंगतियों का चित्रण किया गया है। नेपाली समाज में डायन प्रथा और कर्म-काण्ड जैसे अंधविश्वास में फँसे लोगों का चित्रण कर उपन्यासकार इन प्रथाओं का विरोध करते हैं। इनके दूसरे उपन्यास 'घाउ उसको दुखाइ मेरो' में एक पिता द्वारा बुद्धि के अभाव में अपने ही पुत्री का कई प्रकार से शोषण करने का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में स्त्रियाँ के प्रति पुरुषों द्वारा शोषण, अत्याचार, उत्पीड़न, खरीद-फ़रोक्त, देह-व्यापार, विधवा प्रति अमानवीय दृष्टिकोण, बहुविवाह, जातीय तथा लैंगिक विभेद आदि का विरोध करते हुए समतामूलक समाज की परिकल्पना की गई है। इसमें इस अवधारणा का व्यंग्य के माध्यम से विरोध जताया गया है कि स्त्री के समान अधिकार और हक की अवधारणा केवल नारे तक ही सीमित रह गया है।

भाषा भण्डारी ने केवल दो ही उपन्यास लिखा – 'सम्झौता' (वि. सं. 2060) और 'परिवर्तनको पृष्ठभूमि' (वि. सं. 2061)। 'सम्झौता' में एक ऐसी स्त्री का चरित्र गढ़ा गया है जो प्रतिभाशाली, स्वाभिमानी तथा अपने अस्तित्व प्रति सचेत है, परंतु पारिवारिक एवं सामाजिक अंधविश्वास एवं कुंठा स्त्री के राहों में बाधक बनते हैं जिसका विरोध उपन्यास की नायिका करती है। स्त्री चेतना की दृष्टि से यह उपन्यास अपना महत्वपूर्ण स्थान रखने में सक्षम है।

उपन्यासकार पद्मावती सिंह कृत 'समानान्तर आकाश' (वि. सं. 2062) नारी समस्या पर केन्द्रित एक सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास के बारे में लेखक खगेंद्रप्रसाद का कहना है कि – "समाज में पितृसत्तात्मक संरचना के अंतर्गत बाल्यकाल से ही पुरुष को महिला से ऊपर का दर्जा देने वाले सामाजिक मानसिकता एवं रूढ़ परंपरा और मान्यताओं के कारण महिला और पुरुष के बीच होने वाले असमानता को यथार्थता के साथ प्रस्तुत करते हुए लैंगिक विभेद समाप्त करने का संदेश अभिव्यक्त हुआ है।"[20]

[20] लुइटेल, डॉ. खगेंद्रप्रसाद. (2069). ***नेपाली उपन्यासको इतिहास***. काठमांडों : नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान. पृ. सं. 288.

शोभा भट्टराई एक ऐसा नाम है जिन्होंने सर्वप्रथम तीसरे लिंग की समस्या को उपन्यास में अभिव्यंजित किया और यह उपन्यास है - 'अन्त्यहीन अन्त्य' (वि. सं. 2058)। इस उपन्यास में मिश्रित सांस्कृतिक विचलन एवं नविन उपभोगवादी संस्कृति का चित्रण अंकन किया गया है। साइबर संस्कृति के चपेट में, उत्तर आधुनिकता बोध को उपन्यास में समेटा गया है। अत: विषयगत एवं प्रस्तुतिगत नवीनता के फलस्वरूप इसकी तथ्यात्मकता, कलात्मकता के ऊपर हावी होता नजर आता है।

नेपाली उपन्यास विधा में नारी लेखन परंपरा को निरंतरता देते हुए राधिका दाहाल ने 'पल्लो घरकी बूढी फुपू' (वि. सं. 2064) एवं 'एक चोक्टो मासु' (वि. सं. 2066) नामक उपन्यासों की रचना की। 'पल्लो घरकी बूढी फुपू' उपन्यास में बाल विवाह तथा विधवा विवाह से उपजने वाली समस्याओं पर आधारित विषय रखा गया है।

इसी प्रकार गीता पोखरेल कृत 'आत्मघाती शंका' , प्रभा कैनी कृत 'अनावृत', कमला पराजुली कृत 'क्षितिजको बदलदो रंग', लक्ष्मी उप्रेती कृत 'flash back मा जिंदगी', (इस उपन्यास में किशोर-किशोरी को बचपन से ही सही मार्गदर्शन देने पर जोड़ दिया गया है।) इंदु पन्त कृत 'स्वीकृति', 'यंत्रमानव', श्रीलता राणा कृत 'मंजरी', पार्वती श्रेष्ठ कृत 'अभाव', माया रिजाल कृत 'टुक्रिएको मुटु', सीतादेवी सपकोटा कृत 'रहस्य', जलेश्वर कृत 'नियति चक्र' आदि उल्लेखनीय उपन्यास है। इन उपन्यासों में नारी समस्या के विविध आयाम को केंद्र में रखकर रोजमर्रा के जीवन में पड़ने वाले प्रभाव का चित्रण किया गया है।

नेपाल के बाहर नेपाली साहित्य सर्वाधिक दार्जिलिंग में फूला-फला। साहित्य सृजन के क्षेत्र में एक समय ऐसा था जब नेपाल की अपेक्षा दार्जिलिंग काफी आगे था। नेपाली साहित्य के प्रत्येक विधा में भी यहाँ की लेखिकाओं ने अपनी प्रतिभा दिखाई। दार्जिलिंग को छोड़कर भारत के पूर्वी राज्यों जैसे असम, सिक्किम, उत्तराखण्ड, मणिपुर, मेघालय आदि में नेपाली भाषा बोलने तथा लिखने

वाले लोग अधिक हैं। उनमें से कई मूल रूप से नेपाल के निवासी थे और कई भारतीय भूमि में रहकर नेपाली साहित्य को अपनाने वाले लोग थे।

असम की लेखिका 'नयादेवी' द्वारा रचित दो नेपाली उपन्यास 'युगसंधि' (सन् 2004) और 'कौशल्या' (सन् 2006) स्त्री-समस्या पर आधारित है। 'युगसंधि' की नायिका समाज में, परिवार में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए लगातार संघर्ष करती है। लक्ष्मी पढ़ना चाहती है। समाज में आगे बढ़ना चाहती है किन्तु उसका परिवार खासकर पिता और दादी उसे पढ़ाना नहीं चाहते। लक्ष्मी के दो भाई है, दोनों स्कूल जाते हैं, लक्ष्मी नहीं जाती। वह अपने भाइयों की पुस्तकों से रोज पढ़ती है, अभ्यास करती है। उसके पढ़ने की चाह के कारण एक दिन लक्ष्मी का स्कूल में दाखिला हो जाता है। लक्ष्मी के समझ में पढ़ना आवश्यक है। यह जान लेना ही स्त्री-चेतना का जागृत होना है।

आधुनिक काल के महिला उपन्यासकारों में पुष्पा राई 'भोलिको प्रतिक्षा' (सन् 1990), ईशा शाह के तीन उपन्यास 'एउटा कथाको अन्त' (वि. सं. 2048), 'उजाडिएको सिउँदो' (वि. सं. 2048) एवं 'संकल्प' (वि. सं. 2049), गीता शर्मा द्वारा रचित 'खुशबु' (सन् 1992) आदि प्रमुख है।

अत: नेपाली उपन्यास के इतिहास में महिला लेखन का आरम्भ अम्बालिका देवी कृत राजपूत रमणी से होते हुए पारिजात, भागीरथी, प्रेमा, इंदिरा तक आते-आते काफ़ी कुछ बदलाव दिखने लगता है। सन् अस्सी के दशक यानि 1980 ई० में विन्द्या सुब्बा एक प्रभावी उपन्यासकार के रूप में नेपाली साहित्य जगत् में प्रवेश करती हैं। इक्कीसवी शताब्दी में भी एक स्त्री आज कई क्षेत्रों में प्रतिनिधि बन कर उभरी हैं। वैसे में उसे जो इज्जत मिलनी चाहिए थी वह न मिलकर उसे आज भी भोग की वस्तु समझा जाता है। इस उपन्यास में ऐसे ही संकीर्ण मानसिकता रखने वाले सोच पर प्रहार किया गया है।

भारतीय समाज हो या नेपाली समाज, स्त्री की स्थिति दिन-प्रतिदिन खराब होती जा रही है। वह दुर्गा से लेकर देवदासी तक के बीच झूलती सी नजर आती है। समाज में "स्त्री, परिवार के लिए दासी, धोबी, बच्चे पैदा करने वाली मशीन, नर्स, रसोईया से लेकर पति के लिए वेश्या बनने का कार्य

संपन्न करती है।"[21] उसे केवल आदर्श स्त्री के रूप में देखा जाना एक साजिश है, पितृसत्तात्मक समाज यह कभी नहीं चाहता कि स्त्री उनके बराबरी करें। नारी को हमेशा एक वस्तु के रूप में देखा व समझा जाता है। बचपन से ही एक बालक अपने घर और समाज से यही सीखता आ ररहा है कि नारी का स्थान दूसरा है। वह पुरुष की बराबरी कभी नहीं कर सकती। समाज स्त्री को न प्रेम करने की इजाजत देता है और न ही स्वतंत्र रूप से जीने देता है, भारत हो या नेपाल आज भी अधिकांश स्त्रियाँ ऐसी है जो मुक्ति का अर्थ ही नहीं समझ पाती। यहाँ तक कि उन्हें अपने अस्मिता का भी बोध नहीं है। ऐसी स्थिति में स्त्री-मुक्ति की मुहिम के लिए सबसे बड़ी चुनौती है स्त्रियों में मुक्ति की चेतना जगाना जो इन उपन्यासों के माध्यम से सफल हो सकता है।

अत: प्रस्तुत अध्याय में शक्तिबल्लभ अर्ज्याल कृत 'महाभारत विराटपर्व' (वि. सं. 1827), पृथ्वीनारायण सिंह कृत 'दिव्योपदेश' (वि. सं. 1831) तथा जङ्गबहादुर कृत 'बेलाइत यात्रा' (वि. सं. 1990) से उपन्यास का प्रारूप निर्मित होता है। नेपाली उपन्यास के इतिहास में वि. सं. 1946 से 1990 तक की अवधि को माध्यमिक काल की संज्ञा दी गई है। यह वही काल था जब नेपाल के लोग शिक्षा ग्रहण के उद्देश्य से भारत के प्रसिद्ध शैक्षिक नगरी बनारस जाते थे, जहाँ उन्होंने कई भाषाओं - फारसी, अरबी, उर्दू, हिन्दी, बंगाली, अंग्रेजी आदि स्रोत के आख्यानमूलक रचनाओं को नेपाली भाषा में अनुवाद करना शुरू किया। रुद्रराज द्वारा रचित उपन्यास 'रूपमती' (वि. सं. 1991) द्वारा नेपाली आधुनिक उपन्यास का आरंभ माना जाता है जो अनुवाद परंपरा से हटकर लिखा गया उपन्यास है। यह उपन्यास सामाजिक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी धारा का प्रतिनिधित्व करता है। नेपाली साहित्य के इतिहास को देखा जाए तो अनेक महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों के माध्यम से उपन्यास के विकास क्रम में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। जासूसी उपन्यास के इतिहास में प्रमिला उपाध्याय ('शिवा') एक ऐसा नाम है जिन्होंने सर्वप्रथम इस विधा के उपन्यासों की रचना की है। विजय मल्ल, विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला, इंद्रबहादुर राई के बाद पारिजात उपन्यास जगत् में कदम रखती हैं। वर्गीय

[21] गुप्ता, रमणिका. (2014). ***स्त्री मुक्ति : संघर्ष और इतिहास.*** नई दिल्ली : सामायिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 10.

विषमता एवं द्वंद्व, शोषण के विरुद्ध विद्रोह, शोषणरहित एवं समतामूलक समाज की परिकल्पना, प्रगतिवादी चेतना, मानवतावादी भावना तथा देश-प्रेम और अस्तित्व बोध की भावना आदि को पारिजात ने उपन्यासों का केंद्र विषय चुना।

चूँकि साहित्यकार के प्रत्येक कृति में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कोई न कोई उद्देश्य अन्तर्निहित होता है। अत: निम्नलिखित लेखिकाओं ने उपन्यास के रूढ़ परम्परा का खंडन कर नारी समस्याओं को केंद्र में रखकर उपन्यास का सृजन किया। प्रेमा शाह, भागीरथी श्रेष्ठ, गीता केशरी, वानिरा गिरी, विंध्या सुब्बा, भारती खरेल, नीलम कार्की निहारिका, पुण्यरश्मि खतिवडा, इन्दिरा प्रसाईं, पुष्पा राई के उपन्यासों में निम्नलिखित समस्याएँ प्रमुख रूप से परिलक्षित होते हैं – मानव तस्करी, पारिवारिक विघटन, नारी अशिक्षा, नारी उत्पीड़न, मानसिक द्वंद्व, नारी की आर्थिक सबलता, शैक्षिक उन्नति, स्वतंत्रता एवं समानता, आत्मनिर्णय की आवाज एवं न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था आदि।

***

हिन्दी एवं नेपाली उपन्यासों में स्त्री चेतना

4.1 स्त्री और पुरुष सम्बन्ध

- 4.1.1 पितृसत्तात्मक व्यवस्था
- 4.1.2 हिंदी उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध
- 4.1.3 नेपाली उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध

4.2 स्त्री और समाज परिप्रेक्ष्य

- 4.2.1 नेपाल एवं भारत की जनजातीय स्त्रियाँ
- 4.2.2 ग्रामीण एवं नगरीय स्त्रियाँ

4.3 स्त्री-चेतना और चिंतन-स्वातंत्र्य

- 4.3.1 स्त्री-चेतना का संक्षिप्त परिचय
- 4.3.2 आर्थिक सशक्तिकरण
- 4.3.3 नेपाल में नारीवादी चिंतन

स्त्री पुरुष का सम्बन्ध समाज को बाँधने वाला वह सूत्र है जो अत्यन्त सूक्ष्म तथा दृढ़ होता है। समाज के उन्नति एवं विकास हेतु इनके संबंधों में किसी भी प्रकार की जटिलता नहीं होनी चाहिए। प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की चर्चा करते हुए जनजातीय स्त्रियाँ तथा ग्रामीण व नगरीय महिलाओं के जीवन-संघर्षों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। राजेन्द्र यादव कहते हैं कि दुनिया अगर चार पहाड़ों के बोझ तले पीस रही है तो औरतों पर पाँच पहाड़ों का बोझ है – पाँचवा पहाड़ पुरुषसत्तात्मक विधान का है, किन्तु यह हमेशा से नहीं था। करोड़ो वर्षों पहले आदिम युग में सम्पूर्ण मानव जाति एक-सा जीवन व्यतीत करते थे, स्त्री और पुरुष में भी भेदभाव नहीं था। धीरे-धीरे मानव जाति ने प्रकृति पर नियंत्रण करना सिखा, आग का आविष्कार किया, खेती करना सिखा, जानवरों से काम लेना सिखा। जानवरों को पकड़ने के लिए वे जिन हथियारों का प्रयोग करते थे उसी से मनुष्य को पकड़ना शुरू किया और इस प्रकार पहली बार दास प्रथा का प्रारम्भ हुआ। किसी भी समाज और उसके समय की वास्तविक स्थिति जाननी हो तो उसमें स्त्री की स्थिति पर विचार करना प्रासंगिक होता है।

लेकिन समय-समय पर हमारे पूर्वजों ने कई प्रकार के शोषित, दमित जीवन के बोझ तले जीवन भर दबे रहने को अस्वीकार किया। बौद्ध काल के एक प्रसंग को यहाँ उदाहरण के तौर पर देखना प्रासंगिक हो जाता है। भारत के इतिहास में इतनी सारी महिलाओं द्वारा एक साथ लिया गया स्वनिर्णय शायद ही कभी हुआ है। उनके द्वारा लिखे गए गीतों, मुक्ति के गीतों को 'थेरीगाथा' में संकलित किया गया है। 'थेरीगाथा' प्राचीन साहित्य में से है जो लगभग पच्चीस सौ वर्ष पुराना ग्रन्थ है। इसमें स्त्रियों की मुक्ति की कामनाओं को तरह-तरह से अभिव्यक्त किया गया है। 'थेरीगाथा' में वर्णित सुमंगल माता की कविता की कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत है – "एक पूर्ण मुक्तिवादी / मैं कितनी मुक्त / कितने आश्चर्यजनक रूप से मुक्त / रसोई के खटराज से मुक्त / भूख की छटपटाहट से मुक्त / कंठनाते बर्तनों से मुक्त / मुक्त उस बेईमान आदमी

से।[1] आज से लगभग पच्चीस सौ वर्ष पूर्व स्त्री का यह विद्रोह रूप कहीं न कहीं इक्कीसवीं सदी के स्त्रियों को जागरूक करने में भूमिका निभाता है।

4.1 स्त्री और पुरुष सम्बन्ध :-

स्त्री और पुरुष दोनों समाज के अभिन्न अंग है, एक-दूसरे के परिपूरक है। इसमें कोई दोमत नहीं। एक स्वस्थ समाज के लिए दोनों पक्षों का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है इसलिए दोनों में सामन्जस्य होना अत्यंत आवश्यक है फिर चाहे वो रिश्ता कोई भी हो। पिता-पुत्री, भाई-बहन, माँ-बेटा, पति-पत्नी आदि। अपने-अपने हिस्से की जिम्मेदारियों को सावधानीपूर्वक निर्वाह करना ही स्त्री-पुरुष के स्वस्थ सम्बन्ध की पहली शर्त है लेकिन प्रश्न यह है कि क्या दोनों पक्ष स्वतंत्रता के साथ बिना अपने अधिकार गवाएं समाज के विकास में योगदान दे रहे हैं? यह जितना जटिल प्रश्न है उतना ही सार्थक भी। स्त्री-पुरुष सम्बन्ध को लेकर महादेवी वर्मा का कहना है कि "पुरुष और नारी के प्रकृतियों में उतना ही अंतर है जितना विद्युत और झड़ी में। एक से शक्ति उत्पन्न की जा सकती है बड़े-बड़े कार्य किए जा सकते हैं, परंतु प्यास नहीं बुझाई जा सकती। दूसरी से शांति मिलती है, परंतु पशुबल की उत्पत्ति सम्भव नहीं। दोनों के व्यक्तित्व, अपनी पूर्णता में समाज के एक ऐसा रिक्त स्थान को भर देते हैं जिससे विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों में सामंजस्य उत्पन्न होकर उन्हें पूर्ण कर देता है।"[2]

स्त्री एवं पुरुष के संबंधों को हीगल के मालिक एवं गुलाम के द्वंद्वात्मक संबंध की अवधारणाद्वारा समझा जा सकता है। वे कहते हैं कि "मालिक की सुविधा यह है कि वह जीवन के विकल्प में अपनी आत्मा का स्वीकार इसलिए अधिक पाता है कि वह अपने निजी जीवन को दांव पर लगा सकता है। यह भी सत्य है कि न केवल विजयी मालिक, बल्कि परास्त गुलाम ने भी इसी खतरे को भोगा है। अतः गुलाम

---

[1] कालिया, ममता. (2015). ***भविष्य का स्त्री विमर्श***. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 15.

[2] वर्मा, महादेवी. (2008). ***श्रृंखला की कड़ियाँ***. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ सं. 11-12.

अपनी गुलामी के बारे में सचेत है। वह जानता है कि वह गुलाम है, जबकि औरत वह अस्तित्व है जो जन्म तो देती है, लेकिन इसके अलावा अपने जीवन में कोई खतरा मोल नहीं लेती। वह पुरुष से कहीं संघर्षरत नहीं बल्कि अभिषंगी है।"[3]

स्त्री और पुरुष सम्बन्ध की डोर अजीब-सी कश्मोकश में बँधी रहती है। दोनों विश्वास और अविश्वास के ख़यालों में ताउम्र जीवन व्यतीत करते हैं। दोनों के बीच द्वंद्व-सा बना रहता है कि कौन किससे अधिक प्यार करता है? औरत के जिस सौंदर्य पर रीझकर पुरुष ने जो भी पाया है उसे प्राप्त करने के बाद वह खुद को दुनिया का सबसे ख़ुशनसीब मर्द समझता है। अब उसे उस स्त्री पर भरोसा नहीं है वह सोचता है - "प्रशंसाओं, शब्दजाल, आकर्षण या जिन दूसरे लटकों से खींचकर वह मेरे चंगुल में आ गई थी, ठीक उसी तरह कल किसी और के बाहुपाश में भी जा सकती है।"[4] दूसरी तरफ स्त्री समझती है कि जिस तरह उसपर रीझकर पुरुष ने अपने कमजोरी का प्रदर्शन किया है तथा जिस प्रकार वह उसके प्रति आसक्त हुआ है, उसी प्रकार वह किसी और स्त्री पर भी आसानी से आसक्त हो सकता है। यही डर स्त्री को जिंदगी भर सालती रहती है। वास्तव में देखे तो यह स्त्री-पुरुष के प्रेम की परीक्षा है, विश्वास की परीक्षा है।

स्त्री जीवन की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि उसे हमेशा से दो रूपों में ही देखा जाता रहा है – पहला मातृत्व और दूसरा कामुकता। इससे परे स्त्री की छवि को नहीं देखा गया। ईश्वर के समकक्ष बताने वाले मातृत्व को पल भर में ही बेशर्म करार देकर उसके देह से घृणा किया जाता है, यदि स्त्री ने अपने देह के प्रति सजगता दिखाई भी तो वह कुलक्षणी एवं कलुषित होकर अश्लीलकहलाती है। स्त्री-विमर्श पुरुषों की इसी दोहरी मानसिकता का विरोध करती है। 'अर्की आइमाई' उपन्यास का एक पात्र चेतन दोहरी मानसिकता से ग्रस्त होता है जिसका परिणाम उसकी पत्नी सावित्री को भुगतना पड़ता है। सावित्री कहती है "चेतनले बिहे गरयो। फेरि नयाँ बच्चाको बाबु भएको छ रे ! कहिलेकाहीँ थोमससँग भेट हुन्छ। ऊ स्पष्ट

[3] खेतान, डॉ. प्रभा. (2004). ***स्त्री उपेक्षिता***. नई दिल्ली : हिंदी पॉकेट बुक्स. पृष्ठ सं. 51.
[4] यादव, राजेन्द्र. (2014). ***आदमी के निगाह में औरत***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 243.

छ। जे गर्छ क्लियर गर्छ, देखावटी गर्दैन। मसँग बोल्छ। नदेखे झैं बाटो काटी हिँड्दैन। ठूलो कुरा मेरो शरीरसँग घिनाऊँदैन ऊ।"[5] इस उपन्यास की अन्य एक पात्र तारा के कोख की ज़रूरत पुरुष पात्रों को पड़ती है, वे अपनी ज़रूरतों को देह से जोड़कर देखने में भी नहीं हिचकते। हिंदी साहित्य के विद्वानों कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि ने भी स्त्री के जिस रुप का महिमामंडन किया वह अधिकतर मातृत्व पक्ष से ही जुड़ा है - नागमती, पद्मावती, यशोदा, राधा, सीता, सावित्री, अनुसूया, कौशल्या आदि पात्रों में मातृत्व पक्ष का अधिक प्रचार-प्रसार हुआ देखा जा सकता है।

हिंदी साहित्य में मीरा एक ऐसी रचनाकार हुई जिन्होंने अपने समय की चेतना से कहीं आगे जाकर एक स्त्री की भावों को अभिव्यक्ति दी। मीरा की रचनाओं में विद्रोह की भावना, आत्मपीड़न की विवशता, मुक्ति के लिए छटपटाहट और जो महत्वकांक्षाएं समाहित है वो अन्य समकालीन रचनाकारों की स्त्री पात्रों में नहीं दिखता है। रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं कि "गिरधर का नाम मीरा के भक्ति का परिचायक नहीं है। गिरधर का नाम उन्हें एक आधुनिक स्त्री की संज्ञा देता है जो एक व्यवस्था के शिकंजे में फँसी हुई है उस व्यवस्था को निस्संग भाव से विश्लेषित कर के उसमें से निकलने का मार्ग या नया वातायन खोलने में सक्षम है।"[6] साथ ही कहती हैं कि सूरदास ने तो यशोदा को प्रमोट करते रहे कि "स्त्री प्रथमत: और पूर्णतः माता है, वात्सल्य का परिपाक और यह छवि आश्चर्यजनक रूप से इतनी सदियों की यात्रा तय करके आज भी हमारे समाज में बिल्कुल बीचों-बीच विद्यमान है।"[7] बीसवीं सदी में महादेवी इस सम्बन्ध में प्रश्न कर चुकी हैं – "प्राचीन से प्राचीनतम काल में जब उसने त्याग, संयम तथा आत्मदान की आग में अपना सारा व्यक्तित्व, सारी सजीवता और मनुष्य-स्वभावोचित इच्छाएँ तिल-तिल गलाकर उन्हें कठोर आदर्श

[5] निहारिका, नीलम कार्की. (वि. सं. २०७०). ***अर्की आईमाई***. भक्तपुर : शब्दहार क्रियशंस. पृष्ठ सं.173.
[6] शर्मा, डॉ. हर्षबाला. (2011). ***इक्कीसवीं सदी : औपनिवेशक मानसिकता और भाषा***. गाज़ियाबाद : अंतिका प्रकाशन. पृष्ठ सं. 50.
[7] वही. पृष्ठ सं. 50.

के साँचे में ढालकर एक देवता की मूर्ति गढ़ डाली तब भी क्या संसार विस्मित हुए या मनुष्यता कातर हुई?"[8]

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध का जीवन्त उदाहरण ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले के रूप में हमारे सामने विद्यमान है, जिन्होंने साथ मिलकर तत्कालीन समाज में बढ़ रहे कुरीतियों एवं अंधविश्वासों को दूर किया। जहाँ आज का स्त्री-पुरुष अपने सम्बन्ध विच्छेद की त्रासदी को उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहा है। छोटे-छोटे स्वार्थ के लिए जीवन को जटिलताओं के गर्त में झोंकता जा रहा है। ऐसे में ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले के दाम्पत्य जीवन को देखना तथा समझना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। एक-दूसरे के सहयोग तथा ढाल बनकर प्रताड़ित स्त्रियों, दलितों तथा अछूतों का उद्धार कर दोनों ने समाज-सुधार का कार्य किया। ज्योतिबा स्त्री समानता के समर्थक तो थे ही साथ ही बाल-विवाह के विरोधी भी। उन्होंने विवाह सम्बन्धी कई मंत्रों को बदला जो कन्या को गुलाम बनाए रखने के कथन को सिद्ध करता है और साथ ही पितृसत्तात्मक समाज का समर्थन भी करता है। उन्होंने अंत में विवाह सम्बन्धी ऐसे मराठी मंत्रों की रचना की जिन्हें वर-वधु आसानी से समझ सके। फुले दम्पति के इस कदम ने समाज में विद्यमान कुरीतियों तथा अंधविश्वासों की जड़ें को हिलाया ही नहीं बल्कि उसे उखाड़ फेंका।

आदिवासी समाज में पति-पत्नी के सम्बन्ध में प्रकृति की जीवन्तता मिलती है, उनके रिश्तों में फलों की सुगंध से लेकर नदी की पवित्रता समाहित होती हैं। विवाह के समय वर-वधू को आशीर्वाद देने के लिए वे बोंगाओं को बुलाते हैं, "प्रिय फलानी और फलाना/धरती और आसमान की तरह/ हम तुम्हें जोड़ रहे हैं/हम तुम्हें जोड़ रहे हैं/अग्नि देवता के सामने/आम वृक्ष के समक्ष/पांच भाइयों के बीच/कुटुंब-बंधुओं के मध्य/आज तुम वर-वधू हो.../आम और जामुन के फल/तुम एक साथ चुनो/तुम एक साथ बांधो/अन्न माता, लक्ष्मी माता/खेती कृषि की देवियां/तुम्हारे साथ वास करें/तुम्हारे साथ डेरा डालें/आड़

[8] वर्मा, महादेवी. (2008). ***श्रृंखला की कड़ियाँ.*** इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ सं. 32.

के केले की तरह/मेड़ के बांस की तरह/तुम सदा उगते रहो/तुम सदा बढ़ते रहो।"[9] प्रकृति के इतने समीप और बराबरी के आशीर्वाद शायद ही किसी अन्य समुदाय में मिलते हो।

सन् 1882 में पंडिता रमाबाई ने 'स्त्री धर्म निति' पुस्तक की रचना की जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया कि भारतीय नारी अतीत के गौरव की गाथा से संतुष्ट नहीं हो सकती। स्त्री को उसका अपना अधिकार चाहिए। विवेकानन्द भारतीय समाज में व्याप्त स्त्री-पुरुष असमानता का मूल कारण पुरोहित वर्ग के वर्चस्व को मानते थे, जिसने स्त्रियों को स्वतंत्रता, शिक्षा जैसे मूलभूत अधिकारों से वंचित रखा। उन्होंने वेदांत दर्शन के आधार पर यह साबित किया कि पुरुष और स्त्री के बीच कोई तात्विक भेद नहीं है एवं यह निष्कर्ष निकाला कि स्त्री और पुरुष के बीच लिंग के आधार पर भेदभाव करना निरर्थक है।

ज्योतिबा फुले स्त्री-पुरुष के बीच के असमानता तथा भेदभाव का विरोध करते हुए विधवा पुनर्विवाह का समर्थन करते हैं। वे तत्कालीन सत्ता में रहे अंग्रेजी शासकों से निवेदन करते हैं कि वैदिक धार्मिक कठोर विधान से इन विधवाओं को मुक्त कराया जाए एवं साथ ही प्रश्न करते हैं कि यदि विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं है तो विधुरों को यह अधिकार क्यों है? नयाँ देवी कृत 'युगसन्धि' में विधवा और विधुरों के बीच किये जाने वाले असमानता को इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है – "हाम्रो समाजमा मेरो जस्तै अवस्थामा परेको बिधुरहरूले स्वास्नी मरेको वर्षदिन पनी नभई बिहे गरेर आफ्नो जीवन सम्पूर्ण र सहज बनाएर बसिरहेका छन् तर, हामी नारीहरूले आजीवन समाजको सजा भोग गरेका छौं।"[10] (उपन्यास में एक विधवा काकी कहती है कि समाज में पत्नी की मृत्यु हुए अभी एक वर्ष भी नहीं बीतता है कि बिधुर पुन: विवाह कर सामान्य जीवन जीने लगता है, लेकिन हम औरतें समाज के द्वारा बनाये गए नियम को भोगने हेतु बाध्य किये जाते हैं।) इसी प्रश्न को ताराबाई शिंदे भी उठाती हैं – "उनके बीच ऐसी क्या भिन्नता है कि पत्नी के मरने से पति पर कोई आफत नहीं आती ? वह जब चाहें

[9] गुप्ता, रमणिका. (2014). ***स्त्री मुक्ति : संघर्ष और इतिहास.*** नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 154.
[10] देवी, नयाँ. (2002). ***युगसन्धि.*** तेजपुर : श्री जयनारायण लुइटेल. पृष्ठ सं. 45.

दूसरा विवाह कर ले, पर पति के मरने से विधवा स्त्री को ऐसे-ऐसे दुःख दिये जाते हैं मानों उसी ने पति को मारा हो ?"[11] समाज के इन्हीं असमानताओं एवं विरोधाभासों विचारधारा व मानसिकता के कारण ही स्त्री-विमर्श का दायरा कहीं आगे बढ़कर फलित-फूलित प्रतीत होता है।

लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा कृत 'चम्पा' उपन्यास में पति-पत्नी के रूप में दोनों एक-दूसरे से संतुष्ट नहीं है, जिसके कारण दोनों के बीच अच्छे सम्बन्ध नहीं बन पाते। प्रत्येक दंपत्ति के अपने-अपने स्वतन्त्र विचार होते हैं। भले ही उनके विचार अलग क्यों न हो, लेकिन एक सफल दांपत्य जीवन की पहली शर्त यही होती है कि दोनों के बीच पारस्परिक तारतम्यता हो, समझदारी हो। प्रस्तुत उपन्यास में रमाकांत और चम्पा के बीच पारिवारिक जीवन को लेकर अधिकतर विचार ऐसे थे जो एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न होते हैं। रमाकांत और चम्पा दोनों ने अपने दांपत्य जीवन को लेकर अलग ही परिकल्पना की थी। उनके विचार एक-दूसरे से सर्वथा विपरीत होने के कारण उन्हें प्राय: पारिवारिक कलह का सामना करना पड़ता है। चम्पा और रमाकांत के विचार में असमानताएं होने के कारण एक-दूसरे के प्रेम में अब केवल औपचारिकता ही रह गई है। इस समस्याओं को आधार बनाकर प्रस्तुत उपन्यास में फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत का भी प्रयोग किया गया है।

4.1.1 पितृसत्तात्मक व्यवस्था -

हमारे ऋषि-मुनियों तथा विद्वानों ने नारी की स्थिति एवं मजबूरी को कभी नहीं समझा बल्कि नारी के ऊपर ही सारा दोष देते हुए कहते रहे कि "स्त्रीको चरित्रलाई मान्छेले त के दैवले पनि बुझ्नसक्तैन।"[12] (अर्थात् स्त्री के चरित्र को मनुष्य तो क्या भगवान भी नहीं समझ सकते।)

[11] मालती, डॉ. के एम. (2010). ***स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य***, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 57.

[12] प्रश्रि, मोदनाथ. (1990). ***नारी बंधन र मुक्ति*** . वाराणसी : कल्पवृक्ष प्रकाशन. पृष्ठ सं. 76.

सन् 1885 में प्रकाशित पुस्तक 'ओरिजिन ऑफ़ प्राइवेट प्रॉपर्टी फैमिली एंड द स्टेट' में फ्रेडरिक एंगेल्स ने वर्ग और महिलाओं के विभेद के कारण का पता लगाया। मनुष्य पहले दो चीजों की पूजा करता था या कहे कि डरता था इसलिए पूजा करता था। पहला प्रकृति से और दूसरा नारी से। नारी से इसलिए डरता था क्योंकि वह बच्चे को जन्म दे सकती थी। आदिम युग में पुरुषों को मालूम नहीं था कि बच्चे के जन्म में उसकी भी भूमिका रहती है। मनुष्य प्रकृति की पूजा अभी भी करता है किन्तु नारी के ऊपर अत्याचार करता है इसलिए सम्पत्ति के श्रोत पर पुरुषों का नियंत्रण होने लगा। समाज में जब निजी सम्पत्ति की अवधारणा की शुरुआत हुई तो वहाँ पर एक प्रश्न आया कि सम्पत्ति का उत्तराधिकार कौन होगा? इसी प्रश्न के साथ पुरुषों ने सम्पत्ति का हस्तांतरण अपने पुत्र को देने का फैसला किया लेकिन उसे मालूम नहीं था कि उसका पुत्र कौन है? फिर एकनिष्ठ परिवार की धारणा आयी जिससे पुरुषों को अपने पुत्र की पहचान होने लगी। कार्ल मार्क्स ने लिखा है कि पुरुष और नारी के बीच पहला श्रम विभाजन बच्चा पालन को लेकर हुआ था और एंगेल्स के शब्दों में इतिहास का पहला वर्ग विरोध एकनिष्ठ परिवार के अन्दर पुरुष और नारी के विरोध के बढ़ने के साथ-साथ आता है। इस प्रकार इतिहास का पहला वर्ग उत्पीड़न पुरुष द्वारा स्त्री के उत्पीड़न के साथ होता है। इसी प्रक्रिया में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का आरम्भ माना जा सकता है। इस सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत पुरुषों ने स्त्री की यौनिकता के नियंत्रण के अलावा उसके उत्पादकता या श्रमशक्ति पर भी नियंत्रण करना शुरू किया जिससे पुरुषों ने स्त्रियों को अपने अधीन रखकर उनसे आर्थिक लाभ प्राप्त किया। इस प्रकार पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्रियाँ दोहरे नियंत्रण व शोषण की शिकार होतीं रहीं।

"यसरी पितृसत्ता र एकनिष्ठ विवाहको चलन पाको हुँदै गएपछि आमाका नाममा चल्ने कुल-गोत्रहरू टूटेर बाबुका नाममा चल्न थाले। 'अदितिका सन्तान आदित्य' भन्ने ठाउँमा अत्रिको सन्तान

आत्रेय, भृगुका सन्तान भार्गव हुनथालो।"[13] (अर्थात् इस प्रकार एकनिष्ठ परिवार और पितृसत्ता का चलन बढ़ते जाने से माता के नाम पर चलने वाला गोत्र अब पिता के नाम पर चलने लगा जिससे 'अदिति का पुत्र आदित्य' के स्थान पर 'अत्रि का पुत्र आत्रेय' और 'भृगु का पुत्र भार्गव होने लगा')

समाज में सफल स्त्री का मापदंड उसकी कामयाबी से मापा जाता है लेकिन एक कामयाब स्त्री के जीवन को किस कदर ये पितृसत्तात्मक समाज नीरस कर देता है, यह उपन्यास 'शाल्मली' की शाल्मली के इस कथन से समझा जा सकता है - "मैं केवल एक सूखा वृक्ष भर रह गई हूँ। न फल, न फूल, न शाख, न पत्ती, न छाया, न ठंडक, ऐसे सूखे वृक्ष की शरण में भला कौन आना पसन्द करेगा? धरती ने भी जैसे अपने स्रोत समेट लिए हैं, तभी तो मेरी जड़ें तरावट को तरसती, धरती छोड़ने लगी हैं। ऐसा सुखा, छायारहित, ठूंठ, वृक्ष तो बस जलाने के काम का रह जाता है, लपटों के बीच कोयला बनती काली काया।"[14]

महादेवी वर्मा दो प्रकार की स्त्री जाति के बारे में अपने विचार प्रकट करती हैं - "इस समय हमारे समाज में केवल दो प्रकार की स्त्रियाँ मिलेंगी एक वे जिन्हें इसका ज्ञान ही नहीं है कि वे भी एक विस्तृत मानव समुदाय की सदस्य हैं और उनका भी एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है जिसके विकास से समाज का उत्कर्ष और संकीर्णता से अपकर्ष संभव है; दूसरी वे जो पुरुषों की समता करने के लिए उन्हीं के दृष्टिकोण से संसार को देखने में, उन्हीं के गुणावगुणों का अनुकरण करने में जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति समझती है।"[15]

यह नहीं भूलना चाहिए कि स्त्री और पुरुष दोनों के सहयोग से सृष्टि का निर्माण हुआ है। अत: दोनों की भूमिका अलग-अलग है पर प्रासंगिक भी है। एक-दूसरे की नकल न कर अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व

[13] प्रश्रि, मोदनाथ. (1990). ***नारी बंधन र मुक्ति***. वाराणसी : कल्पवृक्ष प्रकाशन. पृष्ठ सं. 50.
[14] शर्मा, नासिरा. (2018). ***शाल्मली***. नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन. पृष्ठ सं. 09.
[15] वर्मा, महादेवी. (2008). ***श्रृंखला की कड़ियाँ***. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ सं. 13.

के माध्यम से दोनों को समाज के विकास में उत्कृष्ट योगदान प्रदान करना है। विष्णु प्रभाकर ने अपने उपन्यास 'अर्धनारीश्वर' में कहा है कि नर-नारी को न तो एक दूसरे की दासता करनी है, न एक-दूसरे में खो जाना है, न एक-दूसरे पर अपने आपको आरोपित करना है। बस अपना-अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखते हुए एक-दूसरे से जुड़ना है, अर्धनारीश्वर की तरह। समाज में व्याप्त पितृसत्ता की भावना का प्रभाव स्त्री के मन में इस कदर बैठ गया है कि वह स्वयं पुत्र-पुत्री में फर्क करती है। यहाँ तक कि वह पुत्री को जन्म नहीं देना चाहती। एक गर्भवती स्त्री हमेशा मन में यह बैठा के चलती है कि वह एक पुत्र को जन्म देने जा रही है। गर्भवती स्त्री को संबोधित करके जो मंगलगीत गाए जाते हैं वे भी पुत्र जन्म की कामना से गढ़े हुए होते हैं। सिमोन द बउआर कृत 'द सेकेण्ड सेक्स' (स्त्री उपेक्षिता) का यह एक अंश है जिसमें स्त्री के ऐसे सोचने के पीछे का कारण परिलक्षित होता है - "सामाजिक रूप से पुरुष बिल्कुल स्वतंत्र और पूर्ण व्यक्ति होता है। पुरुष का अस्तित्व उसके कामों से निर्धारित होता है जबकि औरत प्रजनन तथा गृहस्थी की परिचय में भूमिका के कारण पुरुष के साथ समानता के स्तर पर नहीं पहुँचती।"[16] चूँकि समाज में पितृसत्ता का दबदबा रहा है इसलिए स्त्रियों की भूमिका और क्षमताओं को भी वही निर्धारित करते आया है।

4.1.2 हिंदी उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध -

हिंदी साहित्य में लेखन के रूप में स्त्री एवं पुरुष दोनों का महत्वपूर्ण योगदान है। आज हिंदी कथा रचना के क्षेत्र में अधिक से अधिक महिलाओं का प्रवेश हो चुका है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् नारी जागरण और स्त्री शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार के फलस्वरूप इस क्षेत्र में सशक्त पीढ़ी का उदय हुआ है। महिला रचनाकारों में कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियवंदा, मंजुल भगत, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, मृणाल पाण्डेय, मेहरून्निसां परवेज, चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा आदि हैं।

[16] खेतान, डॉ. प्रभा. (2004). ***स्त्री उपेक्षिता***. नई दिल्ली : हिंदी पॉकेट बुक्स पृष्ठ सं. 195.

'छिन्नमस्ता' में अग्रवाल और गुप्ता परिवार के भीतरी और बाहरी संघर्षों की कथा के बीच प्रिया के विविध अनुभव एवं प्रसंगों का चित्रण मिलता है। प्रिया अपने चमड़े के व्यवसाय को लगन और मेहनत से ऊँची बुलंदियों तक ले जाती है। उसका जीवन पीड़ा, अभाव, डर, पराजय, अपमान, घुटन, यौन शोषण से भरा होने के बावजूद वह हार न मानने वाले व्यक्तित्व को चुनती है। नरेन्द्र से प्रिया को किसी भी प्रकार का सहयोग नहीं मिलता बल्कि प्रिया के क्षमताओं को ही उसने हमेशा नकारा। फिलिप के शब्दों में - "देखो प्रिया ! नरेन्द्र जैसा पुरुष स्त्री की महत्वकांक्षा को समझ नहीं सकते। वे एक सफल स्त्री की ओर आकर्षित जरूर होते हैं, मगर उनके भीतर का पुरुष बस उस स्त्री को दबोचना चाहता है, यानी उसके अहम को सन्तुष्टि मिलती है कि देखो ऐसी औरत भी मेरे वश में है।"[17] फिलिप के उपरोक्त कथन से यह प्रतीत होता है कि जीवनसाथी के रूप में बंधकर भी दोनों का सम्बन्ध समझौता-सा लगता है।

वर्तमान समय में नारीवादी चिंतन, लेखन एवं नारी मुक्ति के आंदोलनों के माध्यम से स्त्रियाँ अपने बारे में सजग और सचेत हो पायी हैं। नारीवादी चिंतन ने समाज के प्रत्येक वर्ग को अत्यधिक प्रभावित किया है। नारी की वास्तविक स्थिति को समझाने में यह एक सफल आंदोलन साबित हुई है। आज सदियों पुरानी रुढ़ियों और तरह-तरह के अत्याचारों से मुक्ति, अपने अधिकारों की रक्षा और व्यापक रूप में नारी समुदाय की स्वतंत्रता आगे बढ़ रही है। इसी सोच का प्रतिफल ही है कि 'छिन्नमस्ता' की प्रिया पर शोषण के बावजूद अपने अधिकारों तथा स्वतंत्रता के प्रति सजग दिखती हैं।

भारतीय संस्कारों की संरचना ही ऐसी है कि हमें और हमारे बच्चों को परिवार, सम्बन्ध, समाज की जितनी जरूरत है उतना विश्व में कहीं नहीं। हमारे सामाजिक परम्पराएँ हमें हर समय यह सिखाती है कि एकल अभिभावकों द्वारा पालन-पोषण किए गए बच्चों को बेचारा तथा बेसहारा समझना। 'आपका बंटी' का बंटी भी इसी सोच का शिकार होता है और उसमें ईर्ष्या, कुंठा, बेचैनी, संकोच आदि का जन्म

[17] खेतान, प्रभा. (2016). ***छिन्नमस्ता***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 174.

होता रहता है। बंटी को अपने माता-पिता दोनों में किसी एक का चुनाव करना है जबकि वह दोनों के साथ रहना चाहता है। स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध में (माता-पिता) द्वंद्व होने के कारण बंटी जैसे न जाने कितने मासूम बच्चे डिप्रेसन के शिकार होते हैं। 'छिन्नमस्ता' में भी संजू माता-पिता के द्वंद्वों में पिस कर रह जाता है –"बेचारा संजू मियाँ-बीवी की लड़ाई में पिसता जा रहा था। सम्बन्धों का इतिहास होता है, पर घटनाओं की तारीखें नहीं हुआ करतीं।"[18] वहीं 'शाल्मली' उपन्यास में शाल्मली के पिता की सोच एवं चरित्र पितृसत्तात्मक व्यवस्था से विपरीत पाया जाता है। पिता-पुत्री के सम्बन्धों में बहुत मधुरता दिखती है, एक जगह पिता कहता है - "मैं चाहता हूँ कि मेरी बेटी ससुराल में जाकर भी राज करें, अपने पैरों पर खड़ी हो जाए। किसी पत्नी के अतिरिक्त भी उसकी अपनी एक पहचान बन जाए। बस, दूसरे दिन शालमली को ब्याह दूंगा।"[19] पिता का बेटी के लिए यह चाहना कि किसी की पत्नी के अतिरिक्त उसकी अपनी स्वतंत्र पहचान हो, यह कहीं न कहीं पितृसत्तात्मक व्यवस्था को अवश्य चुनौती देती है।

भारत और नेपाल के सीमा से सटे गाँव नरैनापुर की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक स्थितियों की त्रासदी की कहानी 'फिरोजी आँधियाँ' उपन्यास में व्यक्त हुई है। मधुश्री सकारात्मक विचारों की पक्षधर है। वह समस्याओं से रूबरू होने के साथ-साथ उसके समाधान को भी महत्व देती है। ललित की बहन मालती के हित के बारे में सोचकर वह कहती है – "...तुम अकेले नहीं हो जिसे सताया गया है। गाँव के और लोग भी हैं। देखो भावावेश में कोई समाधान नहीं निकलने वाला। तुम मालती की तरफ से निश्चिंत रहो। समय आने पर सब हो जाएगा।"[20] यहाँ पर मधुश्री ललित की बहन, शिक्षक, साथी आदि की भूमिका वहन करती है। ललित और मधुश्री का सम्बन्ध स्त्री-पुरुष से ऊपर ईमानदारी का है, सहयोगी का है, विश्वास का है।

---

[18] खेतान, प्रभा. (2016). ***छिन्नमस्ता***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 133.
[19] शर्मा, नासिरा. (2018). ***शाल्मली***. नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन. पृष्ठ सं. 20.
[20] निहाँ, हुस्न तबस्सुम. (2018). ***फिरोजी आँधियाँ***. दिल्ली : मनीष पब्लिकेशन, पृष्ठ सं. 82.

आज का समय इक्कीसवीं शताब्दी का समय है। यहाँ पहले से काफी कुछ बदल चुका है, लेकिन कुछ समस्याएँ आज भी जस की तस बनी हुई है। आज भी स्त्री और और पुरुष की भूमिका सामाजिक स्तर पर समान नहीं है। समाज में पुरुष ही प्रधान कहलाता है। यह कथन कड़वा होते हुए भी सत्य है। समाज ने पुरुष वर्ग को ही परिवार का कर्ता-धर्ता का दर्जा दिया है। पुरुष ही सभी चीजों के निर्माता माने जाते रहे हैं स्त्री तो केवल उसकी अनुगामिनी रही है। वैज्ञानिक रूप से तो हमारा समाज बदल चुका है, लेकिन कुछ समस्याएँ जो देश की आजादी से पहले हमारे समाज में थीं वो आज भी बरक़रार हैं केवल उनका रूप बदल गया है। इससे साहित्य पर भी अधिक प्रभाव पड़ा है क्योंकि साहित्य समाज के यथार्थ की बात करता है। समाज में जो कुछ भी बदलाव होते हैं उससे कोई भी साहित्यकार बिना प्रभावित हुए नहीं रह सकता। वह अपने कलात्मक ढंग से किसी भी घटना को प्रस्तुत करता है जिससे कि पाठक वर्ग अधिक प्रभावित हो। उनके मन में अनेकों प्रश्न उभरते हैं कि आखिर समाज में यह सब क्यों हो रहा है? क्या होना चाहिए? यही सब उसके उपन्यासों/रचनाओं में देखा जा सकता है।

सिमोन द बोउवार ने कहा है कि 'स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है।' इन सभी बदलावों का प्रभाव स्त्री लेखन पर पड़ चुका है। भारतीय समाज में स्त्री की गुलामी का इतिहास जितना पुराना है, उस गुलामी से मुक्ति के लिए स्त्री के संघर्ष का इतिहास भी उतना ही पुराना है। आधुनिक काल में स्वाधीनता आंदोलन और भारतीय नवजागरण और स्त्री मुक्ति के स्वर सुनाई पड़ते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा अपने समस्त उपन्यासों में नारी चेतना को उजागर करती हैं। उनका उपन्यास 'इदन्नम' नारी चेतना के सामाजिक परिवेश को बख़ूबी उभारता है। इसमें देश के स्वतंत्र होने के बाद का पूरा सामाजिक यथार्थ अपने अंतर्विरोधों के साथ विद्यमान है। 'इदन्नम' में नारी व्यापक सामाजिक परिवेश में उभारा गया है। भ्रष्ट राजनीति, नौकरशाही का अमानवीय चरित्र, नए नेता और शोषण के नए तरीके, वोट की राजनीति, आरक्षण की राजनीति आदि सभी समस्याओं के बीच स्त्री के संघर्ष का चित्रण किया गया

है। कृष्णा सोबती के उपन्यास 'सूरजमुखी अंधेरे के' में नारी जीवन की मनोवैज्ञानिक समस्या को दर्शाया गया है। उषा प्रियवंदा के उपन्यासों में स्त्री का अकेलापन, संत्रास, घुटन विद्यमान है। 'पचपन खंभे लाल दीवारें' उपन्यास में सुषमा नामक एक मध्यमवर्गीय नारी को केंद्र में रख कर आधुनिक नारी के मानसिक संत्रास को व्यक्त करती है। नासिरा शर्मा का उपन्यास 'ठीकरे की मंगनी' में रूढ़ियों से जकड़े हुए एक मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार की शिक्षित व संवेदनशील युवती महरूख की संघर्ष गाथा है। वह गाँव के लोगों को साहस के साथ अन्याय से लड़ना सिखाती है। वह अपने जीवन के सारे अनुभव सामने रख कर सोचती है कि सारे संवैधानिक और कानूनी अधिकारों के बावजूद आज भी स्त्री दासी है और पुरुष स्वामी। वह इस निर्णय पर पहुँचती है कि - यह लड़ाई एक दो नहीं पूरे सदी तक लड़ी जाने वाली है। जब सब बदल कर एकदम नए की बुनियाद डाली जाएगी। वरना पैबंद लगाते-लगाते यह खस्ता इमारत कब तक खड़ी रखेंगे।

'आज बाजार बंद है' उपन्यास में यह दर्शाया गया है कि स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के योग से ही समाज का विकास हुआ है, इसमें दोमत नहीं है। दोनों को एक-दूसरे की आवश्यकता होती है। इसी दृष्टिकोण से लेखक ने यहाँ लिखा है कि "औरत लाख चाहे पुरुष से नफरत करें, पर पुरुष की मौजूदगी उनके बीच सम्मोहन की स्थिति भी पैदा करती है। वैसा ही इन महिलाओं के बीच भी हुआ वह वेश्या भले ही हों आख़िर थीं तो वे औरत ही। वैसी औरतें जो सिर्फ हाड़ मांस की नहीं थी। उनमें खूब-सारी संवेदनाएं थीं। अधिकांश पकी हुई उम्र की। अच्छी-बुरी बातों को समझती थीं।"[21] उन महिलाओं ने अपने जीवन में एक पुरुष के उपस्थिति को पाकर स्वयं को सुरक्षित महसूस किया और उन्हें खास प्रकार के लगाव का भी एहसास हुआ।

[21] नैमिशराय, मोहनदास. (2004). ***आज बाजार बन्द है***. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 80.

इक्कीसवीं सदी में आज महानगरों में 'लिव इन रिलेशनशिप' की जीवन शैली अपनायी जा रही है। ऐसे रिलेशनशिप में स्त्रियाँ अपने अस्तित्व को अधिक सुरक्षित महसूस करती हैं पति नाम के बंधन में बंधना उन्हें मंजूर नहीं क्योंकि पुरुष पत्नी के अतिरिक्त कई प्रेमिकाएं रख कर उसके साथ विश्वासघात कर सकता है। इसलिए सुगंधा और रितिक 'लिव इन रिलेशनशिप' में विश्वास रखते हैं। सुगंधा कहती है - "इसमें मुझे अपनी स्वतंत्रता दिखाई दी। मैं जब चाहे तब मुक्त हो सकती थी...।"[22] यहाँ पर एक स्त्री और पुरुष के बीच सम्बन्ध इस शर्त पर बनती है कि वे एक-दूसरे के साथ होकर भी अपने-अपने जीवन के लिए स्वतन्त्र निर्णय ले सकेंगे।

अत: कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में प्राय: स्त्री की छवि एक विद्रोही, आंदोलनकारी, अपने अधिकारों के प्रति सचेत, गंभीर और संवेदनशील रूप में दिखाई देता है। प्रेमचंद उस समय लिखते हैं जब महात्मा गाँधी स्वाधीन भारत के लिए संघर्ष हेतु महिलाओं को भी जागृत कर रहे थे। ये महिलाएँ पहली बार परंपरागत ढाँचे को तोड़कर गाँधी जी के अगुवाई में देश के स्वाधीनता आंदोलन में उत्साह साथ योगदान दे रही थीं। प्रेमचंद भी नारी की स्वतन्त्रता के पक्षधर थे तथा वे देश के स्वाधीनता संघर्ष में महिलाओं की भागीदारी के भी समर्थक थे, परन्तु उनका मानना था कि वे पश्चिम के स्वाधीनता आंदोलन की भाँति भारतीय स्त्री को नहीं देखते हैं। प्रेमचंद के दृष्टि में वे अब तक (सेवासदन और निर्मला) स्त्री के आर्थिक पराधीनता में दो विकल्प दिखा चुके हैं। वह वेश्या बन सकती है या फिर आत्महत्या कर सकती है, लेकिन प्रतिज्ञा में प्रेमचंद ने अन्य विकल्प ढूँढ निकाला है। पूर्णा के लिए प्रेमचंद सुमित्रा की मदद लेते हैं जो स्वयं स्त्री मुक्ति आंदोलन से प्रभावित है। उसके माध्यम से पूर्णा को नई दिशा मिलती है।

'छिन्नमस्ता' में स्त्री-पुरुष के सकारात्मक सम्बन्ध को लेकर प्रिया द्वारा यह धारणा अभिव्यक्त हुई है कि "हर व्यक्ति अपने-आप में एक इकाई अवश्य होता है पर उसमें सच्चे स्त्री और पुरुष वही हो पाते हैं

[22] सिंह, शरद. (2017). ***कस्बाई सिमोन***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 31.

जो पुरुषप्रधान समाज की सीमाओं को पार करके अपने स्वभाव में स्त्री की करुणा को संचित कर पाते हैं, वे ही जीवन का सच्चा सृजन कर पाते हैं।"[23] वह यह भी कहती है कि "स्त्री-पुरुष के इस सम्बन्ध की अपनी परम्परा है और इस परम्परा से विश्वास उठने का अर्थ यह कतई नहीं कि मेरा जिन्दगी से विश्वास उठ गया।"[24]

सुगंधा और रितिक वैचारिक स्तर पर वादप्रतिवाद करते, स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के बारे में खुलकर चर्चा करते-करते रितिक अक्सर व्यक्तिगत स्तर पर आ जाता था। यह एक पैटर्न-सा है कि जब पुरुष के अहं को चोट लगती है तो वह व्यक्तिगत व्यंग्य करने पर उतारू हो जाता है और अपने ही सहयात्री के चरित्र को गंदे चश्मे से देखना शुरू कर देता है। किसी मुद्दे पर बहस करते-करते वह सेक्स पर व्यंग्य करता, उसे अपमान करना शुरू कर देता है। प्रस्तुत उपन्यास में ऋतिक और सुगंधा के अलग होने का मुख्य कारण यह भी रहता है। सुगंधा पर सिमोन द बउआर के उन्मुक्त स्त्री-स्वातंत्र्य विचारों का प्रभाव देखा जाता है। वह स्वयं भी कहती है कि "अपने ढंग से अपना जीवन जीने का साहस मेरे अवचेतन में कहीं न कहीं मौजूद सिमोन की उन्मुक्त जीवन यात्रा के तूफानों से मिला था मुझे।"[25]

जब तक पति-पत्नी के सबंधों में मधुरता न हो, एक लय न हो, तब तक वह रिश्ता बोझिल-सा लगता है। जब पति-पत्नी के संबंधों में पत्नी अपना अस्तित्व भूलजाए, वह स्वयं को एक भोग की वस्तु महसूस करने लगे तो उस सम्बन्ध को तो बिखरना ही है। शाल्मली और नरेश के संबंधों में बारम्बार यही घटित होता है। "उसे लगता है, जैसे वह एक बेजान लिबास है, जिसे जरूरत पड़ने पर पहना जाता है और जरूरत खत्म होते ही उतारकर रख दिया जाता है। रोज-रोज की इस लिबासपोशी से वह थकने लगी है। प्यास बुझने की जगह भड़कती है। देह से हटकर भी तो आवश्यकता होती है मनुष्य की वरना कान,

[23] खेतान, प्रभा. (2016). ***छिन्नमस्ता***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 181.
[24] वही. पृष्ठ सं. 183.
[25] सिंह, शरद. (2017). ***कस्बाई सिमोन***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 130.

आँख, जबान और दिल मनुष्यों को क्यों मिले हैं? अच्छा सुनने और बोलने-समझने और महसूस करने को, अपनी इस शक्ति को किस पत्थर के नीचे दबा दे, जो अपना सिर उठा न सके?”[26]

प्रेमचंद ने उपन्यास के क्षेत्र में केवल दो दशकों तक कार्य किया है परंतु इतने कम समय में उनकी रचनात्मकता सक्रियता अधिक रहा है। ‘सेवसादन’ से लेकर ‘गोदान’ तक प्रेमचंद ने स्त्री पात्रों को स्थान दिया है। उनकी उपस्थिती को न सिर्फ स्वीकारा है बल्कि उनके स्थिति को सुधारने का भरसक प्रयास किया है। प्रेमचंद ने सर्वप्रथम उपन्यास के सही अर्थ को स्पष्ट किया तथा मनोरंजनपूर्ण उपन्यासों की परंपरा को तोड़कर सामाजिक मुद्दों को उपन्यासों में उठाया एवं समाज में व्याप्त कुरीतियों को अपने लेखनी के माध्यम से बदलने की कोशिश की।

4.1.3 नेपाली उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध -

नेपाली साहित्य में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की स्थिति भी लगभग यही है। वहाँ भी स्त्रियों की दुर्दशा पर खूब लिखा गया है। यहाँ लड़कियों की स्थिति इतनी बुरी है कि सरकार द्वारा संचालित कई ट्रस्ट ऐसे हैं जिसके अंतर्गत लड़कियों का खूब शोषण होता है। स्वयं माता-पिता गरीबी के कारण अपनी बेटियाँ बेचने को बाध्य होते हैं। आज भी बेटे के पैदा होने पर सोहर गाना, केवल लड़का होने पर छैठो मनाना आदि पितृसत्तात्मक समाज में मौजूद लड़के-लड़की के बीच मौजूद अंतर को दर्शाता है। इसके अलावा नेपाल में चली आ रही एक धार्मिक परंपरा है - नेपाल के शासक वहाँ एक नन्हीं, जीवित देवी से आशीर्वाद ग्रहण कर राज्य संभालते हैं। नेपाल के राजा पृथ्वीनारायण शाह ने सन् 1768 में राजधानी जीती थी। उन्होंने ‘हनुमान धोका मंदिर’ के कुमारी गृह में नन्हीं देवी से आशीर्वाद मांगा था। तभी से यह राजकीय परम्परा चली आ रही है। यह देवी तीन या चार वर्ष से लेकर ग्यारह या बारह वर्ष की कोई कन्या होती हैं। 1768 से चली आ रही इस परंपरा को माओवादी सरकार की भी मान्यता मिली हुई थी। प्रस्तुत समस्या

[26] शर्मा, नासिरा. (2018). ***शाल्मली***. नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन. पृष्ठ सं. 26.

को विजय मल्ल ने उपन्यास 'कुमारी शोभा' (वि. सं. 2039) के माध्यम से नेवारी समाज में होने वाली परम्परा तथा अंधविश्वास का विश्लेषण किया गया है। नारी को देवी के रूप में प्रदर्शन कर उससे उसके बाल्यकाल को किस प्रकार छिना जाता है इसका मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में हो पाया है। धार्मिक अन्धविश्वास का दुष्परिणाम शोभा को भुगतना पड़ता है। जिसके कारण अंत में वह हिस्टेरिया रोग से पीड़ित होती है।

सभी चीजें पुरुषों द्वारा निर्धारित नहीं की जा सकती। आख़िर स्त्री भी एक मनुष्य है, उसके पास भी मन है, चेतना है, यौन इच्छा है, वह कोई पत्थर नहीं, निष्प्राण नहीं है। उसे कितना भी कुंठित करने का प्रयास करो या संकुचित दायरों में बांधो, वह अपने तन-मन से विद्रोह करेगी ही। समाज में जहाँ पुरुष एक ही स्त्री के साथ विवाह कर रहता है वहाँ दोनों में प्यार, समझ और इज्ज़त अवश्य होती है। वहाँ स्त्री विद्रोह नहीं करती। स्त्री द्वारा किए जाने वाले विद्रोह के कारणों में प्रमुख कारण है – पत्नी के रहते पति द्वारा किसी दूसरी औरत को लाना। पति द्वारा अपनी गलती को जस्टिफाई करने हेतु पत्नी को ही चरित्रहीन की संज्ञा दिया जाना आदि। 'स्वास्नीमान्छे' में मोतीमाया के साथ उसका पति जिस प्रकार का रवैया अपनाता है वह नेपाली समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक व्यवस्था के जीवंत रूप को स्पष्ट करता है।

आमा ठूलो कि बा ठूलो? (माँ और पिता में कौन बड़ा?) इस प्रश्न के सामने आते ही हमारे मन में झट से एक ही जवाब आता है - बराबर। क्योंकि माँ और पिता के समान महत्व को हमने स्वयं अनुभव किया है। उनके प्यार में किसी भी प्रकार से कोई कमी नहीं महसूस की है इसलिए उत्तर भी समान होते हैं। स्त्री-पुरुष के इस समान महत्व को मानव समाज के इतिहास में भी हम देखते आयए हैं। स्त्री और पुरुष के बीच असमानता का बीजारोपण कर तथा उन्हें पृथक रूप में देखने व एक-दूसरे को कमतर आंककर मानव समाज की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इसलिए स्त्री-पुरुष को जीवन की गाड़ी के दो पहियो के रूप में देखा जाता है। नेपाली समाज में स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध कई मायनों में अत्यंत जटिल है।

'अर्की आइमाई' उपन्यास की तारा का अपने पति सुवर्ण के साथ सम्बन्ध एक दायित्व भर का है या कहे एक जरूरत भर का है, सौदा है। दूसरी तरफ तारा अपने पति को सर्वस्व मानती है तथा उसके जीवन के प्रत्येक पहलुओं/गलतियों को स्वीकारती है। सत्रह वर्ष की तारा का विवाह उससे लगभग तिगुने आयु के आदमी, दो बच्चों के पिता से कर दिया जाता है। तारा सुवर्ण के जीवन में दूसरी औरत कहलाती है, प्रथम पत्नी ईभा के अभाव में तारा को लाया गया है। पति-पत्नी के रूप में इन दोनों का रिश्ता समझौता भर का ही है जिसके कारण वह मातृत्व का सुख जीवन भर नहीं भोग पाती है। वह सुवर्ण से अपना अधिकार मांगती है, मातृत्व का सुख चाहती है लेकिन वह कहता है – "के वाहियात कुरा गरेकी तिमीले? स्यान्टियागोहरु तिम्रै सन्तान होइनन् र ? तिमीले म यिनैका आमा हुँ भनेर सोचेर त हेर।"[27] (क्या बकवास कर रही हो? क्या स्यान्टियागो और डेस्टेनी तुम्हारे बच्चे नहीं? खुद को इनकी माँ मानकर तो देखो।) इसके अतिरिक्त प्रस्तुत उपन्यास में अन्य पुरुष पात्र तारा से प्रेम करने का दावा तो करते हैं लेकिन समाज के रीति अनुसार उससे विवाह नहीं करना चाहते। इस प्रकार 'अर्की आइमाई' में स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध सहयोगी के रूप में नहीं बल्कि स्वार्थ के लिए जुड़ा हुआ है।

पुरुषों द्वारा बहुविवाह और परस्त्रीगमन कभी छोड़ा नहीं गया लेकिन स्त्रियों को ही ताउम्र अपमान और गुलामी की जिंदगी जीनी पड़ी क्योंकि पुरुषों ने बड़ी चालाकी से स्त्रियों के चरित्र पर ही दोष लगाना सिख लिया है – "नारीमा पुरुषभन्दा आठगुणा बढ़ी कामवासना हुन्छ"[28] (पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक कामवासना होती है)

हमारे समाज में हमेशा से पुरुषों को ही तमाम अधिकार दिए गए हैं जो किसी भी स्त्री को जीवन भर अपने अधीन रखने की मानसिकता का समर्थन करती है एवं उसका भरण-पोषण करने मात्र से वह सारी जिंदगी उसके गुलाम हो जाएगी जैसी सोच को भी विकसित करता है। पति-पत्नी के रूप में तारा

---

[27] निहारिका, नीलम कार्की. (वि. सं. २०७०). ***अर्की आईमाई***. भक्तपुर : शब्दहार क्रियशंस. पृष्ठ सं. 74-75.

[28] प्रश्रि, मोदनाथ. (1990). ***नारी बंधन र मुक्ति***. वाराणसी : कल्पवृक्ष प्रकाशन. पृष्ठ सं. 76.

और सुवर्ण का जीवन अंदर से खोखला है। नेपाली समाज की सबसे बड़ी विडंबना है यह है कि पुरुष विवाहित होते हुए भी दूसरी औरत आसानी से रख सकता है। इसी सोच की परिणति है कि 'अर्की आइमाई' की तारा की विवशता और विडम्बना की बात यह है कि ये मान्यता समाज में स्वीकार्य है।

'माइत घर' उपन्यास में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध को देखा जाए तो वहाँ प्रेम से अधिक कर्तव्य, मर्यादा एवं दायित्व को महत्व दिया गया है। यहाँ प्रेम का दूसरा रूप ही है कर्तव्य। सानी और हरी का सम्बन्ध दोस्त से बढ़कर है। शारीरिक आकर्षण से परे दोनों एक-दूसरे के सुख-दुःख के साथी होते हैं। सानी की जिंदगी के हर पहलुओं को हरी न सिर्फ जानता है बल्कि समझता भी है। दोनों के सम्बन्ध में पवित्रता और स्वच्छंदता निहित है। नारी की इज्ज़त करने वाला हरी के जीवन में फिर कभी कोई और नारी नहीं आ पायी। हरि अपनी बेबसी को निम्न शब्दों के माध्यम से उजागर करता है – "संसारले हामीलाई चेली-माइतीका रूपमा देखेको छ। त्यो पवित्र बन्धन तोडेर हामी कसरी संसारको सामु बाँच्न सक्छौं।"[29] (अर्थात् समाज ने हमें मायके वालों की भूमिका में देखा है। इस पवित्र रिश्ते को तोड़कर क्या हम समाज से नज़रे मिला सकेंगे?)

'कारागार' उपन्यास में स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को सामाजिक मान्यता न मिलने के कारण उनका जीवन प्रश्न-सा बन कर रह जाता है। समाज की नज़रों में उनका रिश्ता पाप है। बहुत समय बाद जब वे दोनों बाहर वक्त बिताने निकलते हैं तो प्रेमिका प्रश्न करती हुई कहती है –"मेरो-तिम्रो सम्बन्ध खुला पुस्तक भए पनि यसलाई बाहिर बसी पढ्न सक्छौ?"[30] (हमारे सम्बन्ध खुली पुस्तक की तरह है लेकिन क्या इसे सबके सामने पढ़ पाओगे ?) उनके इस सम्बन्ध से जीवन द्वंद्व-सा बना रहता है। जीवन ख़ुशहाल तरीके से बिताने की अपेक्षा वे इस बात पर अपना समय गवाते हैं कि कहीं हमारे द्वारा पाप तो नहीं हुआ है?

---

[29] बाङ्देल, लैनसिंह. (२००६). ***माइतघर***. काठमांडो : रत्न पुस्तक भण्डार. पृष्ठ सं. 48.

[30] गिरी, वानीरा. (२०६६). ***कारागार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 57.

यदि किसी स्त्री के पति की मृत्यु हो जाती है तो वह हमेशा के लिए बेवा कहलाती है। उसका सर्वस्व - भूमिका, महत्ता, दायित्व आदि का रूप पलभर में ही बदल जाता है। स्त्री के सामने कई प्रश्न उभर कर आते हैं जैसे कि उसकी रक्षा कौन करेगा? किसके सहारे जियेगी? और न जाने क्या क्या.. वही समाज में यदि किसी स्त्री (पत्नी) की मृत्यु होती है तो वह पुरुष अपने जीवन में केवल एक पात्र खो बैठता है क्योंकि समाज में उसे स्वतंत्र इकाई की मान्यता प्राप्त है। वह किसी पर भी निर्भर नहीं है, न आर्थिक रूप से और न ही शारीरिक रूप से। "बूढ़ो उमेरमा लोग्ने मर्ने नारीका निम्ति 'विधवा धर्म' ठिकै थियो भन्न सकिन्छ. तर बुढ़ेसकालसम्म पनि तरुणी स्वास्नी थुपार्ने लोग्नेका विधुर भक्ति कहीं पनिबनाईएन।"[31]

इसी प्रकार 'कारागार' में स्त्री जब अपने प्रेमी को खो बैठती है तो उसके पास प्रेमी के नाम पर न सिंदूर होता है और न ही मंगलसूत्र। अपने दर्द को बताते हुए वह कहती है - "उसो भए उनको मृत्युद्वारा मेरो अस्तित्वमा कुनै पनि पृथकता आउँदैन भने मेरो निम्ति यही एउटा शब्द सार्थक छ त? बूढीकन्ने।"[32] अर्थात् यदि उनकी मृत्यु से मेरे अस्तित्व पर कोई फर्क नहीं रह जाएगा तो मेरे सन्दर्भ में 'बूढी कन्या' (अविवाहित लड़की) शब्द का प्रयोग करना ही सार्थक होगा तो?)

निहारिका द्वारा लिखा गया अन्य उपन्यास 'योगमाया' एक ऐतिहासिक उपन्यास है लेकिन इसमें वर्णित नारी समस्या आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कल था। नेपाल के इतिहास में योगमाया को एक सशक्त नारी के रूप में देखा गया है। योगमाया का विवाह बाल्यकाल में ही हो जाता है। ससुराल में अनेकों कष्ट झेलने के बाद वह मायके लौटती है लेकिन रास्ता भूल जाने के कारण जंगल में ही भटकती है। अगले दिन जब मायके पहुँचती है तो उसके ही चरित्र पर आरोप लगाते हुए घर के, समाज के पुरुष वर्ग व पुरुषवादी मानसिकता से ग्रसित लोग उसे बहिष्कार कर देते हैं। योगमाया की माँ तथा अन्य महिलाएँ उसके दुःख को समझती हैं लेकिन पुरुषवादी समाज की व्यवस्था के आगे वे भी विवश हैं। इस सन्दर्भ में

---

[31] प्रश्रि, मोदनाथ. (1990). ***नारी बंधन र मुक्ति***. वाराणसी : कल्पवृक्ष प्रकाशन. पृष्ठ सं. 84.

[32] गिरी, वानीरा. (२०६६). ***कारागार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं पृष्ठ सं. 136.

एक महिला कहती हैं – "जे भो भो । न फेर्न साट्ना मिल्ने न केही । भाबीले लेखा त्यही रछ । फेरि घर खान सजिलो कहाँ हुन्छ र ? फलामको चिउरा चबाउने हो नानी सबैले ।"[33] (जो होना था हो गया। अब होनी को टाला नहीं जा सकता और पुनर्विवाह भी संभव नहीं।) इस प्रकार भाग्य के सहारे स्त्री की समस्याओं को छोड़ देने की परम्परा चलती आ रही है।

'कारागार' उपन्यास की स्त्री पात्र दफ़्तर में काम करती है जहाँ उस पर प्राय: सभी पुरुषों की नजर रहती है। उसके बॉस द्वारा नए-नए बहाने कर उसे ऑफिस के कमरे पर बुलाकर कहा जाता है कि "खोइ एउटै विभागमा यात्तिका वर्ष काम गरियो, यहाँले डेरासम्म देखाउनुभएको छैन।"[34] (एक ही डिपार्टमेंट में इतने वर्षों तक हमने साथ काम किया, लेकिन अभी तक अपने घर पर आने का निमंत्रण नहीं दिया आपने) ऐसे असहज प्रश्नों का सामना कामकाजी स्त्रियों को प्राय: करना पड़ता है, यह जानते हुए भी कि उनके उद्देश्य सही नहीं होते हैं।

इस प्रकार देखा जाए तो स्त्री-पुरुष के बीच जो सम्बन्ध भारत में घट रहे हैं वैसे ही सम्बन्ध नेपाल की महिलाओं और पुरुष के बीच भी घट रहे हैं। स्त्री और पुरुष के बीच घट रहे सम्बन्ध को नहीं नकारा जा सकता, लेकिन उनका अपना स्वतंत्र अस्तित्व होना चाहिए। दोनों की अपनी स्वायत्ता होनी चाहिए। वास्तव में प्रचीन काल से ही भारतीय नारी ने पुरुष के कंधे से कंधा मिला कर सदैव साथ दिया है। यही नहीं विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान भी दिया है। जैसे गार्गी, विद्योत्तमा, सरोजिनी नायडू, सावित्रीबाई फुले, विजय लक्ष्मी पंडित, इंदिरा गांधी, साईना नेहवाल, सानिया मिर्जा, मेरीकोम इत्यादि। स्त्रियाँ साहित्य रचना में भी पीछे नहीं रही हैं। उपन्यासों, कहानियों अथवा नाटकों के लेखन में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनमें सुधा अरोड़ा, ममता कालिया, सुधा मूर्ति, महाश्वेता देवी, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग आदि हैं।

---

[33] ढकाल, यादेवी. (2018). ***नीलम कार्की निहारिकाका उपन्यासमा नारी संचेतना*** . Cognition Journal. पृष्ठ सं. 39.

[34] गिरी, वानीरा. (२०६६). ***कारागार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 33.

आज नारी के सामने कठिन चुनौती है जिसका सामना वह कर रही है। स्त्रियाँ आज हाथ में हाथ रखकर चुपचाप अपने अधिकार को यूँ जाने नहीं दे सकती, उसकी चेतना जग चुकी है तभी तो वह अपना अधिकार माँगती है – "ए आमा ! म छोरी हैन र, दाईलाई अंश मलाई क्यै छैन र?"[35] नारी के सम्बन्ध में पुरूषों ने भी लिखा है लेकिन वह वैसा ही है जैसा सीमोन लिखती हैं कि अब तक औरतों के बारे में पुरुष ने जो कुछ लिखा है उस पूरे पर शक किया जाना चाहिए क्योंकि लिखने वाला न्यायाधीश भी है और अपराधी भी।

4.2 स्त्री और समाज परिप्रेक्ष्य :-

किसी भी देश की सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास यात्रा में स्त्रियों की भूमिका, दशा और समाज में उसकी स्थिति का विशेष महत्व रहा है। भारत में इसका अपवाद नहीं है। यहाँ महिलाओं की दशा में युग के उतार-चढ़ाव के अनुरूप परिवर्तन होता रहा है। वैदिक युग में जहाँ उसकी अवस्था अत्यंत उन्नत और परिष्कृत थी। वहीं बाद के कालखंडों में धर्म और परम्परा के नाम पर स्त्रियों को सुरक्षित रखने की ऐसी अनेक व्यवस्थाओं का नियमन हुआ, जिससे महिलाओं की स्थिति निरंतर दयनीय होती गई। उनकी अनेक ऐसी परिभाषाएँ निश्चित कर दी गई जिनमें वह कभी देवी बनी तो कभी दानवी, कभी पत्नी, कभी पुत्री तो कभी माँ। यानी उसके तमाम व्यक्तित्व को पुरुष-निर्भर संबंधों में बांट दिया गया। अजीब विरोधाभास है पुरुष की काम-इच्छा समाज में मान्य है, जबकि स्त्री की काम भावना को उसकी लज्जा तथा आबरू से जोड़कर देखा जाता है। पुरुष स्त्री से प्रेम भी करता है और घृणा भी। स्त्री में वह माँ का भी प्रतिरूप देखता है। शुरू से ही नारी अपने सौंदर्य के प्रति जागरूक होते हुए पुरुष के अनुकूल साज-श्रृंगार करती आयी है। उसने अपने अस्तित्व को कभी प्राथमिकता नहीं दी और न ही उसे सिखाया गया।

[35] प्रश्रित, मोदनाथ. (१९९०). ***नारी बंधन र मुक्ति.*** वाराणसी : कल्पवृक्ष प्रकाशन. पृष्ठ सं. 20.

आरंभिक काल से ही साहित्य और समाज एक-दूसरे से गहरे रूप में जुड़े रहे हैं। इसका सबसे बड़ा परिणाम यह माना जाता है कि समाज में घटने वाले परिवर्तन का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव साहित्य में भी अवश्य लक्षित होता है। कई बार साहित्य ही समाज में बदलाव की भूमिका तैयार करता है। समाज और साहित्य के बुनियादी सवालों से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण सरोकार सामाजिक-साहित्यिक आंदोलन का रूप तक धारण कर लेता है। ऐसा ही एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध स्त्री सम्बन्धी दृष्टि का रहा है। पिछले कई सालों से स्त्री विचार के केंद्र में रही है। नारीवादी आलोचकों ने स्त्री के दोयम दर्जे की सामाजिक स्थिति के लिए धर्म की केंद्रीय भूमिका को माना है। किसी भी समाज में वहाँ के मनुष्य के सामाजिक अस्तित्व से ही उसकी चेतना निर्धारित होती है। स्त्री अस्मिता के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। उन्नीसवीं सदी के नवजागरण में सामाजिक पहचान, अस्मिता की पहचान की छटपटाहट है, अपने अधिकारों की मांग को लेकर भी जबरदस्त छटपटाहट है। इस सदी में स्त्री-प्रश्न महत्वपूर्ण होकर सामने आया है। स्त्री की स्थिति पुनः व्याख्यायित हुई है। राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम उन सुधारकों में सबसे पहले आता है जिन्होंने सतीप्रथा की समाप्ति एवं विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तो समझ चुके थे कि "समाज में स्त्रियों की दुर्दशा के मुख्य कारण उनकी अशिक्षा, बहुविवाह और बाल विवाह की प्रथा है।"[36]

स्वामी विवेकानंद ने भी स्त्री की दयनीय स्थिति को समाज की प्रमुख बुराई माना। हिन्दी प्रदेश में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने शिक्षा का बिगुल फूंका और 'नारी नर सम होंहिं' का नारा दिया। लेखन के माध्यम से अपने विचार लोगों तक पहुँचाया। इसी प्रकार 'कवि वचन सुधा' के 3 नवंबर 1873 के अंक में स्त्री शिक्षा पर एक महत्वपूर्ण लेख में उन्होंने कहा है कि यह बात तो सिद्ध है कि पश्चीमोत्तर देश की तरह कदापि उन्नति नहीं होगी जब तक कि यहाँ की स्त्रियाँ शिक्षित न होंगी। इन लोगों ने सामाजिक रूढ़ियों, परंपराओं,

[36] मालती, डॉ. के एम. (2010). ***स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य***, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 29.

कुरीतियों आदि के खिलाफ जो आंदोलन चलाया था वह स्त्री-मुक्ति का आधार बना। आज समकालीन महिला आंदोलन का इतिहास काफी संपन्न है। इनकी जड़ें बौद्ध काल में भी दिखाई पड़ती हैं। जब माता सुमंगला और भुट्टा ने घरबार छोड़ कर सामाजिक नीतियों को नकारते हुए भिक्षुणी बनने का निर्णय लिया था। महाभारत की द्रौपदी की दंतकथा हमारे सम्मुख है जिसने अपने पाँच पतियों को भरी सभा में चुनौती दी थी। इसी कड़ी में मीरा बाई और अक्कमहादेवी भी हैं, जिन्होंने समाज के बंधनों को तोड़ कर सड़कों पर भक्ति के गीत गाए। इस प्रकार के कई उदाहरण हैं जिनके आधर पर कहा जा सकता है कि महिला आंदोलन की शुरूआत अभी हाल ही में नहीं हुई है।

स्त्री के आत्मसंघर्ष की निरंतरता प्रत्येक युग में विद्यमान रहा है। स्त्री का प्रमुख नारा 'पर्सनल इज पॉलिटिकल' स्त्री के संघर्षों, व्यक्तिगत अनुभवों और सत्य का खुलासा स्त्री की जुबानी करने का पक्षधर है ताकि उसकी त्रासद स्थितियों का बोध समाज को हो सके। सामाजिक अस्मिता का सवाल केवल अन्य के बरअक्स स्वयं को परिभाषित करने तक सीमित नहीं है। कोई भी समाज अपने किसी अंश के साथ जो व्यवहार करता है यह अस्मिता के संदर्भ में गहरे अन्वेषण का सवाल है। स्त्री विमर्श के अंतर्गत स्त्री साहित्य ही इसकी चेतना का प्रतीक है। इसके तीन प्रमुख आयाम हैं - स्त्रीत्व, स्त्रीवाद और स्त्री। स्त्री सांस्कृतिक निर्मिति है, स्त्रीवाद राजनीतिक दृष्टि और लक्ष्यों की अभिव्यक्ति है और स्त्री लिंगाधिकारिक शारीरिक पहचान का प्रतीक। लिंग की अवधारणा इतिहास की दृष्टि से सबसे अधिक बीसवीं सदी में उभरी है। 'सेक्स' शब्द का प्रयोग स्त्री के संदर्भ में ही किया जाने लगा है। स्त्री साहित्य परंपराओं के नाम पर तैयार की गई गुलामी को अस्वीकार करता है। स्त्री की मजबूती की बात करता है। उसे पूरे इंसान के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

स्त्रीवादी साहित्य विमर्श में जगदीश्वर चतुर्वेदी ने लेखिकाओं की व्यापक सूची प्रस्तुत कर इस विमर्श को अंकित किया है। इस परंपरा में पहली पीढ़ी में चंद्र किरण सौनरेक्सा, रजनी पाणिकर, सुमित्रा

कुमारी सिंन्हा, यषोवती देवी, प्रेम भटनागर आदि का व्यापक महत्व रहा। इस युग की लेखिकाओं को पुरुषवादी मानसिकता के साथ-साथ अन्य कई गंभीर संकटों का, चुनौतियों का सामना करना पड़ा था। इस पीढ़ी के बाद लेखिकाओं में कृष्णा सोबती, कंचनलता सब्बरवाल, हेमलता पंत, शिवबोला रानी माथुर, शांता सक्सेना, मन्नू भंडारी, उषा प्रियवंदा, राजी सेठ, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, सूर्यबाला, देवयानी, नासिरा शर्मा, रमणिका गुप्ता, मैत्रेयी पुष्पा, मंजुल भगत, मीरा सीकरी, सुधा अरोड़ा, अलका सरावगी आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान समय में साहित्य विमर्श का सबसे पहला कार्य स्त्री की चेतना का विकास है। स्त्री के विकास के रूप में प्रकाशित अपनी संपूर्णतः में जी सकना मनुष्य जाति के बचे रहने की शर्त है। वर्तमान समय में स्त्री समाज का हिस्सा बन रही है।

नारी विमर्श का प्रारंभ कब हुआ इसके सम्बन्ध में विद्वानों में सुनिश्चित एकमत नहीं है लेकिन कुछ लोगों के अनुसार इसका प्रारंभ 19वीं सदी में हुआ माना जाता है, जब पश्चिम में स्त्रियों के मताधिकार और पाश्चात्य संस्कृति में स्त्रियों के योगदान पर चर्चा होने लगा था। वास्तविकता यह है कि स्त्री विमर्श बीसवीं शताब्दी की देन है। बीसवीं शताब्दी में कुछ लोग इसका प्रारंभ फ्रांसीसी लेखक सिमोन द बुआ की पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' के प्रकाशन से मानते हैं और कुछ मेरी एल्बम कृत 'थिंकिंग अबाउट विमेन' के प्रकाशन वर्ष से मानते हैं। अधिकांश विद्वानों की माने तो किसी वर्ग विशेष का प्रस्थान बिंदु मानना उचित नहीं समझते क्योंकि बीसवीं शताब्दी में इससे पहले विश्व में स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व और उसके अधिकारों की समस्या को उठाया जाने लगा था।

भूमंडलीकरण के इस दौर में जब समाज में नारी सशक्तिकरण की चर्चा की जाती है तो विश्व स्तर पर ऐसी चार घटनाओं की पुनरावृत्ति मन में उतरने लगती है जिन्होंने स्त्री विमर्श को सशक्तता प्रदान की। सन् 1789 की फ्रंसिसी क्रांति जिसने समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व के नैसर्गिक अधिकारों को लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के रूप में प्रतिष्ठित किया। सन् 1929 का राजा राममोहन राय का सतीप्रथा विरोधी कानून

जिसने स्त्री को मानव रूप में स्वीकार करने का अवसर दिया। तीसरी घटना यह कि सन् 1848 में ग्रिमके बहनों द्वारा तीन सौ स्त्री-पुरूषों द्वारा नारी दासता को चुनौती देते हुए नारी सशक्तीकरण की आधारशिला रखी। चौथी घटना सन् 1868 की है जब जॉन स्टुअर्ट मिल द्वारा बिटिश पार्लियामेंट में स्त्री के वयस्क मताधिकार पर प्रस्ताव रखा गया जिसने स्त्री को भी मिलने वाले कानूनी एवं संवैधानिक अधिकारों को बल दिया। लेकिन इतने अधिकारों के बावजूद महिलाओं से सम्बन्धित नकारात्मक खबर प्रमुख अखबारों में प्रकाशित हुई। इस प्रकार भारतीय समाज में स्त्री का संघर्ष आज भी जारी है।

नेपाल की बात करें तो नेपाल आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण अल्प विकसित देश माना जाता है। इसके बावजूद सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आधार पर देखें तो अपने पड़ोसी देशों की तुलना में वहाँ स्त्रियों की स्थिति कुछ मायनों में बेहतर है। इसका यह अर्थ नहीं कि उनके ऊपर अत्याचार, घरेलु हिंसा, सामाजिक अत्याचार आदि नहीं होते। अत: यह कहना अनुचित न होगा कि नेपाल में नारी के विकास तथा जागरण के कार्य को चुनौतीपूर्ण उतना नहीं माना जाता जितना कि आर्थिक चुनौती को। नेपाल में आर्थिक चुनौती एक जटिल समस्या के रूप में हमारे सामने विद्यमान है। इसलिए हम कह सकते हैं कि आर्थिक रुप से कमजोर होने के कारण वहाँ की स्त्रियों का संघर्ष अन्य देशों से भिन्न हो जाता है। हाल में महिलाओं के ऊपर होने वाले सामाजिक विभेद के अंत के लिए सर्वप्रथम वि. सं. 1977 में सामाजिक मान्यता प्राप्त सतीप्रथा को ग़ैरकानूनी घोषित किया गया। ऐसे आंदोलन में योगमाया, मंगला देवी, साधना प्रधान, सहाना प्रधान, तारा देवी जैसे प्रबुद्ध महिलाओं ने विशेष भूमिका निभायी थी। यह सत्य है कि विश्व के सभी देशों में स्त्री के विकास एवं जागृति के समान रुप नहीं है। विकासशील देशों के मुकाबले नेपाल में अभी भी महिला विकास और जागरण की अवस्था धीमे गति से चल रहा है। बावजूद कानून सम्बन्धी अधिकारों के पालन करवाने की प्रक्रिया से संतोष किया जा सकता है।

कुछ वर्षों से नेपाल में महिलाओं के प्रति होने वाले हिंसा पर ध्यान गया है। "प्रगतिशील एवं सशक्तिकरण सम्बन्धित महिला कानून पालन करने की सूची में नेपाली महिलाओं ने अपना नाम दर्ज करवाया है, लेकिन भारत तथा दक्षिण एशियाई देशों में कानून और अधिकार का पालन जमीनी स्तर में उतना नहीं हो पाया है जबकि वाहवाही जोर-शोर से की जाती है।"[37]

नेपाल में महिलाओं की सामाजिक स्थिति कुछ अलग नहीं है। वहाँ के गांवों और कस्बों में स्त्री आज भी एक शापित जिंदगी जी रही है। परंपरागत समाज में मासिक धर्म के दौरान महिलाओं को अपवित्र समझा जाता है। अन्धविश्वास के चलते उन्हें इस दौरान अलग कुटिया में रहना पड़ता है, यही नहीं इस अवस्था में उन्हें बलात्कार का शिकार भी होना पड़ता है। उपन्यास 'युगसन्धि' में लक्ष्मी के आस-पास का जीवन अंध-विश्वास, अंध-परम्परा, कुरीति तथा रुढ़िवादी मानसिकताओं से भरा हुआ है। लक्ष्मी के परिवारवाले भी इसी मानसिकता के शिकार थे, उन्हें लक्ष्मी के शिक्षा से आपत्ति थी। लक्ष्मी का व्यक्तित्व हार न मानने वाला था, उसे जीवन में अनेक संघर्षों तथा चुनौतियों से जूझना पड़ता है, अंततः उच्च शिक्षा ग्रहण कर वह कोर्ट में एडवोकेट बनती है। इस प्रकार लक्ष्मी में आधुनिक स्त्री का परिचय मिलता है। "नारी जीवनको अर्थ सन्तान जन्माउनु, हुरकाउनु अनि पतिगृहमा भएका मान्छेको सेवा गर्नु मात्र होइन। युगसँग दाँजिनुकोलागि पुरुषको जति अधिकार र स्वाधीनता छ, नारीको पनि त्यति नै छ। लक्ष्मीको जीवनले यही आदर्श खड़ा गरेको छ।"[38]

प्रस्तुत उपन्यास में दो नारी चरित्र ऐसे हैं जिन्हें अंधकार युग का प्रतीक एवं परम्परावादी संस्कार का कट्टर समर्थक कहा जा सकता है। हरीप्रिया और सविता परम्परागत रूप से रूढ़िवादी होने के कारण लक्ष्मी को पढ़ने से रोकती हैं क्योंकि उनकी सोच दकियानूसी है। शादी के बाद भी लक्ष्मी को ससुराल में सास से उलाहना, व्यंग, अत्याचार आदि का सामना करना पड़ता है तथापि वह अपनी पढ़ाई पूरी करती

[37] Sharma, Mandira & Tamang, Seira (2016). ***A Difficult Transition***. New Delhi : Zuban. Page no. 54.
[38] देवी, नयाँ. (2002). ***युगसन्धि***. तेजपुर : श्री जयनारायण लुइटेल. भूमिका

है। सास का मानना है कि बहू का धर्म सास-ससुर की सेवा करना और घर-परिवार को संभालना भर है। दिन-प्रतिदिन के मानसिक प्रताड़ना और शोषण से परेशान होकर लक्ष्मी अपने पति का घर त्याग देती है। उसे अपनी आत्मरक्षा का ज्ञान है इसलिए वह यह निर्णय लेती है। अंततः जब लक्ष्मी हर तरह के संघर्षों के बाद अपने सपने को पूरा करती है तब सविता (सास) की आँखें खुलती हैं।

यह प्रश्न आज भी अत्यंत आश्चर्य करती है एवं यह मूर्खता की बात ही होगी कि स्त्री वेश्यावृत्ति क्यों अपनाती है? किसी शारीरिक दोष या वंशगत कारण से सामान्य स्त्री वेश्यावृत्ति नहीं अपनाती। सत्य तो यह है कि आज के विश्व में जहाँ बेकारी की समस्या बड़ी प्रबल है। लोग किसी भी ऐसे धंधे को अपना लेंगे जो उन्हें सहजता से मिल जाए। पेरेंट डचलेट (Parent Dutchatelet) ने अपने 1857 की रिपोर्ट में लिखा है कि "वेश्यावृत्ति का मुख्य कारण बेकारी और गरीबी है।"[39] लेकिन ताराबाई शिंदे मानती है कि "वेश्या समस्या का मूल कारण पुरुषों द्वारा निर्मित वे नियम हैं जो स्त्री को गुलाम बना कर रखती हैं, पुनर्विवाह की मान्यता रहती तो इनकी ऐसी दुर्दशा कभी नहीं होती। समाज में वेश्यावृत्ति पुरुषों की वजह से ही पनपती है।"[40]

नेपाल की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय होने के कारण समय-समय पर नेपाल अपने पड़ोसी देशों पर निर्भर रहा है। देश की आर्थिक स्थिति खस्ताहाल होने के कारण निश्चित तौर पर वहाँ के नागरिक आर्थिक समस्याओं से जूझते हैं। बहुत छोटी-छोटी लडकियाँ इसका शिकार अधिक मात्रा में एवं आसानी से होतीं हैं। अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि स्त्रियाँ आर्थिक कारणों से वेश्यावृत्ति अपनाती हैं। नेपाल में घरेलू हिंसा भी बड़े स्तर पर होती है। माना जाता है कि किसी संघर्ष से गुजर रहे देशों में ऐसी घटनाएँ अधिक देखने को मिलती हैं, जैसे कि कांगो, युगांडाआदि।

[39] खेतान, डॉ. प्रभा. (2004). ***स्त्री उपेक्षिता***. नई दिल्ली : हिंदी पॉकेट बुक्स पृष्ठ सं. 275.
[40] मालती, डॉ. के एम. (2010). ***स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य***, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 59.

नेपाल ने अपने यहाँ पहला 'एकद्वार संकट केंद्र' 2011 में खोला। इसकी शुरूआत मध्य नेपाल से हुई थी। अब इस केंद्र को कई अस्पतालों से जोड़ दिया गया है। 2015 में नेपाल की सरकार ने ऐसे केंद्रों को लेकर नियम बनाया, तय हुआ कि अस्पतालों के कर्मचारी ऐसी महिलाओं को देखें तो उन्हें इन मददगार केंद्रों तक पहुँचाएँ। इसमें स्वयं सेवी संगठनों ने भी सहयोग किया।इसके अंतर्गत नेपाल में अब तक सैंकड़ों स्वास्थ्य कर्मचारियों को महिलाओं की मदद की ट्रेनिंग दी जा चुकी है। इनमें महिलाओं की डॉक्टरों से लेकर पारिवारिक डॉक्टर और अस्पतालों के छोटे कर्मचारी भी शामिल हैं।

4.2.1 नेपाल एवं भारत की जनजातीय स्त्रियाँ -

आदिवासी समाज में महिलाओं की स्थिति सदैव से सोचनीय रही है। भारतीय परिपेक्ष्य में जनजातियों के बारे में स्पष्ट कर पाना थोड़ा कठिन है। भारतीय समाज में सांस्कृतिक संपर्क की प्रक्रिया ने जनजातीय समाजों में स्त्रियों की स्थिति को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। जिस तरह से आधुनिक समाज में स्त्री-पुरुष के मध्य अंतर्द्वंद्व देखने को मिलता है जनजातीय समाज इस व्यवस्था से कोसों दूर हैं। जनजातीय स्त्रियों को पुरुष के समान प्रस्थिति प्रदान की गई है और लैंगिक भेदभाव नहीं के बराबर है। परंतु वर्तमान समय में ये मानदंड धूम्लि होता जा रहा है। इसका मुख्य कारण ग़ैर-समुदायों का प्रकृति पर हस्तक्षेप, परिणामस्वरुप भोले-भाले जनजातीय समाजों में भी जटिलताएँ एवं विरोधाभास दृष्टिगत होने लगी। पूर्वोत्तर प्रदेश की कुछ मातृवंशी जनजातीय समुदायों में आत्मसातीकरण, सांस्कृतिक संपर्क और अंधानुकरण की प्रवृत्ति के कारण जनजातीय समाज में लैंगिक भेदभाव अधिक गहराया है। विशेषकर स्त्रियों के जीवन में इस बदलाव का अधिक प्रभाव देखा जा सकता है। आदिवासी समाज में स्त्रियों की स्थिति हमेशा से ऐसी न थी। यहाँ स्त्री-पुरुष दोनों को अपने पसंद का जीवन साथी चुनने का पूर्ण अधिकार था। इतना ही नहीं पति से मन न मिलने पर स्त्रियाँ उन्हें छोड़ भी सकती थीं। जनजातीय समाज में पति द्वारा

परित्यक्ता अथवा पति को छोड़ने के पश्चात् स्त्री को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता था जबकि ग़ैर आदिवासी समाज में स्त्री को ऐसा कोई भी अधिकार प्राप्त न था।

नेपाल के जन (कबिला) समाज में प्रारम्भ में मातृसत्ता कायम थी। छोटे-मोटे झगड़ों को महिलाएँ ही निपटारा किया करती थीं। धीरे-धीरे खेत खलिहान विस्तार होते गए, अन्न-अनाज की मात्रा बढ़ने लगी फलस्वरूप पशुओं का शिकार कम होने लगा। तत्कालीन जन समाज में लड़ाई में पकड़े गए बाहर के लोगों को प्रवेश दिया जाने लगा तथा उनसे ही खेती, चौकीदारी, ग्वाला आदि के काम कराये जाने लगे। साथ ही उन लोगों के आने से जन समाज में स्त्रियों की सुरक्षा पर प्रश्न उत्पन्न होने लगा जिसके फलस्वरूप महिलाओं के ऊपर एकाधिकार होने लगा। पुरुषों द्वारा अपने-अपने स्त्री और बच्चों को चिन्हित किया जाने लगा। इस नए सामाजिक व्यवस्था से स्त्रियों का स्वतंत्र व्यक्तित्व बाधित होने लगा एवं उसकी शक्ति भंग होने लगी।संख्या में भी कमी आने के कारण वे विरोध नहीं कर सकीं एवं धीरे-धीरे पुरुषों के अधीन रहने हेतु बाध्य होती गईं। इस सम्बन्ध में साहित्यकार मोदनाथ प्रश्रित अपने पुस्तक 'नारी बन्धन र मुक्ति' में लिखते हैं - "जंगली अवास्थादेखि चलेको सामूहिक उत्पादन र वितरणको साम्यवाद (साझा जीवन) टुट्‌दै गयो। उत्पादन र सम्पत्ति अलग-अलग परिवारको निजी हुन थाल्यो। यसरी समाजमा मातृसत्ताको ठाउँमा पितृसत्ता (बाबुको हैकम्) र साम्यवादी सामूहिक जीवनको ठाउँमा व्यक्तिगत निजी जीवनको उदय हुँदैगयो।"[41]

'जन' (कबिला) समाज आज प्राय: लुप्त हो चुका है लेकिन इसके कुछ गुण अभी भी नेपाल के कुछ जातियों – मगर, गुरुङ्ग, तामांङ्ग, राई-लिम्बू और थारू में देखने को मिलती है। नेपाल की जनजाति थारू जनजाति है जो नेपाल-भारत के सीमावर्ती क्षेत्रों में पायी जाती है। वैसे यह नेपाल और भारत के सीमावर्ती तराई क्षेत्र में पायी जाने वाली एक जनजाति है। भारत में बिहार के चम्पारण जिले में

[41] प्रश्रित, मोदनाथ. (1990). ***नारी : बन्धन र मुक्ति.*** वाराणसी : कल्पवृक्ष प्रकाशन. पृष्ठ सं. 34.

और उत्तराखण्ड के नैनीताल में थारू पाए जाते हैं। थारूओं का मुख्य निवास स्थान तथा जलोढ़ मिट्टी वाला हिमालय का संपूर्ण उपपर्वतीय भाग तथा उत्तर प्रदेश के उत्तरी जिले वाला तराई प्रदेश है। ये हिंदू धर्म को मानते हैं तथा हिंदुओं के सभी त्योहार मनाते हैं लेकिन अन्य समुदाय की अपेक्षा थारू महिलाएँ काफी जीवट और परिश्रमी होती हैं। इन्हें अधिक यातनाओं का सामना नहीं करना पड़ता है। जनजातीय महिलाएँ प्राय: सरल स्वभाव की होती हैं।

जनजातीय समाज प्रायः पर्वतीय पठार पर निवास करते हैं। प्रारंभ में ये समाज उदरपूर्ति के लिए पशुओं व पक्षियों का शिकार करता था वहीं बाजार में बेचने, पकाने और ईंधन इकट्ठा करने का काम स्त्रियाँ करती थीं। जल-जंगल-जमीन के संघर्ष ने स्त्रियों को बहुत हद तक प्रभावित किया। जनजातीय महिलाएँ हस्तशिल्प में दक्ष होती हैं। इनके द्वारा बनाई गई वस्तुएँ कलात्मक गुणों से भरी होती हैं। जादू और देवी-देवताओं में इनका अटूट विश्वास होता है। आम समाज में तो कृषि के लिए महिलाओं को उपयुक्त नहीं माना गया है लेकिन आदिवासी समाज में खेती के कार्य भी महिलाएँ ही करती हैं। इसे यहाँ की परंपरा मानी जाती है।

जनजातीय समाज में बेटी के जन्म को शुभ माना जाता है। शरद सिंह कृत 'पिछले पन्ने की औरतें' में बेडिया जनजातियों को एक स्त्री के जन्म की खुशी मनाते हुए देखा जा सकता है क्योंकि इस जाति में स्त्रियाँ ही परिवार का मुख्य आधार और पालनकर्ता होती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका लिखती हैं - "आज एक बेड़नी उस समय फूली नहीं समाती जब वह एक स्त्री शिशु को जन्म देती है। वह और उसके परिवार जन स्त्री-शिशु के जन्म पर खुशियां मनाते हैं। इसका सबसे बडा कारण यह है कि एक बेड़नी को अपने बेटी के भविष्य में ही अपना सुरक्षित भविष्य दिखाई देता है।"[42] बेडिया समाज के अतिरिक्त अन्य जनजातीय समुदायों में पुत्री को कम से कम बोझ या पिछले जन्म का पाप नहीं समझा जाता।

[42] सिंह, शरद. (2010). ***पिछले पन्ने की औरतें***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 167.

लिविंग-इन-रिलेशनशिप जैसी प्रथा आदिवासी समाज में प्रारंभ से ही अस्तित्व में था। उन्हें घोटुल प्रथा कहा जाता था। अपने वर का चयन करने हेतु आदिवासी स्त्री स्वतंत्र है। इस प्रथा के अंतर्गत जवान लड़के-लड़कियाँ एक साथ रहते हैं। एक-दूसरे को परखते हैं और दोनों के रजामंदी से ही शादी की मान्यता दी जाती है और यदि किसी कारणवश स्त्री द्वारा पति को छोड़ना चाहे तो भी वे पूर्ण रुप से स्वतंत्र होती हैं। आदिवासी स्त्री का जीवन ग़ैर आदिवासी स्त्री के जीवन से कई स्तरों पर भिन्न तथा स्वतंत्र माना जाता है। ग़ैर आदिवासी स्त्री को अपने होने वाले पति का चयन करना तो दूर बिना देखे उनका विवाह कर दिया जाता है जबकि आदिवासी स्त्री अपने पति स्वयं चुनती है। इसके अतिरिक्त पति नाम के बंधन से वह भी किसी भी वक्त मुक्त हो सकती है, उन पर किसी का दबाव नहीं होता। वहीं 'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा और रितिक के सहजीवन के फ़ैसले को लेकर सुगंधा का ही चरित्र बार-बार दोषी पाता है।

वानिरा गिरी कृत 'कारागार' में एक शादीशुदा आदमी के मनोविज्ञान का विश्लेषण किया गया है जो अपनी पत्नी से क्षुब्ध रहता है, पत्नी उसे रत्ती भर भी इज्जत नहीं देती है जिससे दुखी होकर वह उपन्यास की नायिका के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है। दूसरे तरफ उपन्यास की नायिका भी जीवन में अकेलेपन का एहसास करती है। उसे एक साथी की ज़रूरत है जो मानसिक तथा शारीरिक रूप से उसको साथ दे सके। अत: दोनों साथ एक प्रकार से लिव-इन-रिलेशनशिप जैसा जीवन-यापन करते हैं। अपनेपन के अभाव में मनुष्य किस तरह त्रासदी भरा जीवन जीने हेतु बाध्य होता है इसका चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हो पाया है तथा जगह-जगह पर देह की आवश्यकता पर एवं यौन-सम्बन्ध के बारे में खुलकर चर्चा की गई है। गोविन्दबहादुर मल्ल गोठाले कृत 'पल्लो घरको झ्याल' में मिसरी नाम की केन्द्रीय महिला पात्र हैं जिसके यौन-मनोविज्ञान का विश्लेषण प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है। "मिसरी पोइबिना र हीरामानबिना र अझ गोल्सनबिना पनि अविश्लेषित हुन्छे। यसरी भन्दा अझ स्पष्ट होला – मिसरी एउटा आदर्श हो, एउटा

भोक हो र एउटा अतृप्ति हो।"[43] एक नारी के यौन अतृप्ति का इतने खुले रूप में विश्लेषण कर तत्कालीन समाज में उपन्यासकार ने बड़ा ही साहसिक कार्य किया है।

'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा और रितिक लिव-इन-रिलेशनशिप में रहते तो हैं लेकिन उनके इस जीवन शैली को समाज पचा नहीं पाता। एक तरफ सुगंधा स्वाभिमानी, स्वालम्बी और आत्मनिर्भरता के साथ जीवन को अपने ढंग से जीती है, बिना शादी किए जिन्दगी को अपने शर्तों पर जीना चाहती है। दूसरी तरफ समाज के लोग उसे विवाह कर घर बसा लेने की सलाह देते दिखते हैं। रितिक के पिता ने तो सुगंधा के चरित्र पर ही प्रश्न चिह्न लगा डाला - "देखो सुगंधा! तुम दोनों इस तरह बिना विवाह किए साथ-साथ रह रहे हो, यह ठीक नहीं है। ये तो लड़का है किन्तु तुम तो लड़की हो, तुम्हें तो समझना चाहिए कि यह ठीक नहीं है।"[44] अत: यहाँ स्पष्टत: दिखाई देता है कि आदिवासी समाज की स्त्रियों की भाँति सुगंधा पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं है।

पूर्वोत्तर भारत की बात करें तो वहाँ की जनजातियाँ ऐसे हैं जो मातृसत्ता प्रधान है। खासी, बोडो, कार्बी, राभा, आपातानी आदि समुदायों में स्त्री को कहीं अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है। वहाँ की स्त्रियाँ पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर साथ काम करती हैं। त्योहारों, विवाह या अन्य सामाजिक कार्यों में भी स्त्री और पुरुष एक साथ मिलकर काम करते हैं। हल चलाने से लेकर घर परिवार के हर छोटे-बड़े काम स्त्रियों के लिए आम बात हैं।

आदिवासी स्त्रियों के स्वच्छन्द जीवन का एक नमूना 'फिरोज़ी आँधियाँ' उपन्यास में देखा जा सकता है। जब ललित और उसके साथी काठमांडू से नरैनापुर की ओर जंगल के रास्ते भूखेप्यासे आते हैं तब लेपचा जनजाति के क्षेत्र में पनाह पाकर वे भूख और थकान दोनों मिटा पाते हैं। इसी दौरान एक आदिवासी स्त्री रामसमुझ पर आसक्त होती है और अपने प्यार का इजहार करती है। "उसे जगा हुआ देख

---

[43] प्रधान, कृष्णचन्द्र सिंह. (च.सं. २०६१). ***नेपाली उपन्यास र उपन्यासकार***. पुलचोक : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 278.

[44] सिंह, शरद. (2017). ***कस्बाई सिमोन***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 92.

वह मुस्कुराई फिर रामसमुझ की बांहों पर अपना हाथ रगड़ने लगी।"[45] अर्थात् किसी युवती को किसी युवक पर प्यार आ जाए या शारीरिक सम्बन्ध की इच्छा जाहिर करनी हो तो उसे किसी से अनुमति लेने की जरुरत नहीं होती और न ही समाज इसका विरोध करता है। वही दूसरी तरफ मालती (ग़ैर जनजाति) जैसी युवती का जबरन बलात्कार होता है तो मालती ही किसी को अपना मुँह नहीं दिखा सकती, रमेस की पत्नी को जूठा कहा जाता है। तथाकथित सभ्य समाज के इस विरोधाभास रवैये को लेखिका उपन्यास के माध्यम से उजागर करने का सफल प्रयास करती हैं।

अतः जनजातीय स्त्रियों की बात करें तो वे ग़ैर जनजातीय स्त्रियों से अधिक स्वतंत्र और स्वालम्बी मानी जा सकती हैं, लेकिन धीरे-धीरे उन पर ग़ैर जनजातीय समाज के पितृसत्तात्मक व्यवस्था का प्रभाव पड़ने लगा है। इस संदर्भ में बिटिया मुर्मू लिखती हैं – "स्त्री और पुरुष की शारीरिक बनावट के आधार पर काम में बंटवारा समझ आ सकता है, लेकिन आदिवासी पुरुष समाज ने कार्य का बंटवारा शारीरिक बनावट या क्षमता के आधार पर न करके स्त्री पर अधिकार जताने के दृष्टिकोण से, कड़े-कड़े नियम-कानून बनाकर उन्हें कुछ कामों से वर्जित कर दिया, जैसे हल चलाना, घर का छप्पर छाना या धनुष छूना अर्थात् जमीन और घर, जो आज की परिभाषा में संपत्ति के प्रतीक हैं, पर आदिवासी पुरुष समाज का ही अधिकार रहे।"[46]

[45] निहाँ, हुस्न तबस्सुम. (2018). ***फिरोजी आँधियाँ***. दिल्ली : मनीष पब्लिकेशन. पृष्ठ सं. 67.

[46] गुप्ता, रमणिका. (2014). ***स्त्री मुक्ति : संघर्ष और इतिहास***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 157.

4.2.2 ग्रामीण एवं नगरीय महिला -

ग्रामीण और नगरीय समाज में स्त्रियों की स्थिति कुछ अलग नहीं है। गाँव में महिलाओं की स्थिति दोयम दर्जे का माना जाता है। वहाँ भी महिलाएँ खेत-खलिहान में काम करने जाती हैं, बाजार-हाट भी करती हैं, मजदूरी भी करती हैं। वहीं उनकी सुरक्षा को लेकर आज भी सवाल बना हुआ है। घर से लेकर बाहर की दुनिया में उसका हर जगह शोषण होता है।

ग्रामीण नारी की बात करें तो उनकी स्थिति शहरी और शिक्षित वर्ग से भिन्न तथा दयनीय है। शिक्षा का अभाव होने के कारण उन महिलाओं का शोषण, परिवार और समाज में कई कारणों से निरंतर होता आ रहा है। इसके कुछ प्रमुख कारण हैं - बाल विवाह, बेमेल विवाह, दहेज प्रथा, विधवा पुनर्विवाह निषेध आदि। घर, परिवार ही किसी स्त्री के भविष्य में सबसे बड़ी भूमिका निभाती है। परिवारवालों की मानसिकता ही तय करती है कि उसे उनसे सहयोग मिलेगा या प्रतिकार। उसके बाद समाज और अन्य संस्थानों का दखल रहता है, लेकिन परिवार तो समाज से ही बनता है। दोनों एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इस स्थिति में स्त्री करें तो क्या करें? कुछ जागरूक महिलाएँ यह जान चुकी है कि अशिक्षित होना ही उनके शोषण का मुख्य कारण है इसलिए वे अपने प्रयास से गाँव की लड़कियों को शिक्षित करने का बीड़ा उठाती हैं। भगवानदास मोरवाल कृत 'बाबल तेरा देस में' नामक उपन्यास की शकीला एवं विद्यावती दुबे कृत 'शेफाली के फूल' की सावित्री अपने-अपने गांव की लड़कियों को शिक्षित करने का प्रयास करती है परंतु इनकेप्रयासों को पुरुषों द्वारा विरोध किया जाता है।

रमणिका गुप्ता धर्म को पुरुष-स्त्री के बीच की असमानता का मूल कारण मानती हैं फिर चाहे वो ग्रामीण से हो या शहर से। वे लिखती हैं -"स्त्री की असमानता का मूलमंत्र धर्म ही है। पर यह समझना भी जरूरी है कि धर्म व जाति में पितृसत्ता का रिश्ता चोली-दामन का रहा है। परंपरा, संस्कार और सामाजिक-राजनैतिक व्यवहार धर्म और जाति की देन हैं तो विशुद्ध पितृसत्ता के पोषण का औजार भी हैं। पितृसत्ता ने

स्त्री के लिए जहां एक तरफ सारे पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक मानदंड धर्म और जाति की आड़ में ही तय किए हैं जो यथास्थिति के समर्थक हैं, तो उसने परिवार के रूप में भी एक पूरा का पूरा ढांचा तैयार कर दिया है, जो पितृसत्ता के अधिकारों की रक्षा करता है और स्त्री को जीवन-पर्यंत गुलाम बनाए रखता है।"[47]

4.3 स्त्री चेतना और चिंतन-स्वातंत्र्य :-

हिन्दी साहित्य में स्त्री चिंतन और स्वातंत्र्य को लेकर यू तो कई उदहारण मौजूद है लेकिन इस क्षेत्र में पहला स्वर भक्तिकाल की मीरा द्वारा सुनाई पड़ता है। मीरा हर प्रकार से सामाजिक तथा धार्मिक परम्पराओं से टकराती हुई अपने व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करती है। अपने स्व निर्णय के अधिकार के लिए वे अपने समय की हर सीमा से संघर्ष करती हैं। इसलिए मीरा को आधुनिक स्त्री-चेतना की पूर्व पीठिका के रूप में देखा जा सकता है। परंपरागत सामाजिक रूढ़ियों और अवधारणाओं के खिलाफ आवाज उठाने का साहस मीराबाई ने किया है जो कि सराहनीय है। मध्ययुगीन समाज के राजघराने की रानी मीरा ने सती होने से इंकार किया, उनके सामने पूरा राजघराना तथा पुरुष सामंती समाज विरोध में खड़े थे। महादेवी जी ने अपने व्याख्यान में मीरा के संदर्भ में कहा है कि "मीरा के पदों की उड़ान समूचे भारतीय आकाश में व्याप्त है, मानों कोई मुक्त पंक्षी असीम आसमान में उड़ रहा है........ वे राजस्थान की हैं, गुजरात की हैं, बंगाल की हैं, समूचे भारत की हैं। वे भक्ति आंदोलन की प्रेरक शक्ति हैं जिसने ब्राह्मण और शूद्र का भेदभाव ही मिटा डाला है। अत: वह सभी जतियों की हैं, सभी धर्मों की हैं, सर्वकालीन सर्वदेशीय हैं।"[48]

'फिरोज़ी आँधियाँ' की मधुश्री गाँव की औरतों के लिए प्रेरक की भूमिका अदा करती है। उसमें स्त्री-स्वातंत्र्य का परिचय मिलता है। गाँववालों की स्थिति दिन-प्रतिदिन बद्तर होती जाती है। ऐसे में

[47] गुप्ता, रमणिका. (2014). ***स्त्री मुक्ति : संघर्ष और इतिहास.*** नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 48.
[48] वर्मा, महादेवी. (2008). ***श्रृंखला की कड़ियाँ.*** इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ सं. 22.

मधुश्री अपनी सुरक्षा की परवाह किए बिना उन्हें संभालने का जिम्मा उठाती है, आने वाली समस्याओं से सचेत करती है। मास्टर जी मधुश्री को सलाह देते हैं कि वह कुछ दिनों के लिए अपने शहर लौट जाए, लेकिन गाँववालों को यूँ छोड़कर वह कहीं नहीं जाती। गाँववालों को इस स्थिति में छोड़कर न जाने के पीछे जिस प्रकार मधुश्री में सामाजिक चेतना की भावना निहित है उसी प्रकार बलात्कृत स्त्रियों के लिए आवाज उठाने के पीछे उसमें स्त्री चेतना की भावना निहित है। ललित के लिए भी मधुश्री के हृदय में प्रेम की भावना जागृत होती है। वह ललित को उसके द्वारा किए गए गलत कार्यों के पश्चाताप हेतु अवसर देना चाहती है और सरकार के समक्ष आत्मसमर्पण के लिए उसे मनाती भी है। परन्तु सेना द्वारा छल से ललित को मार दिया जाता है क्योंकि सेना और सरकार विद्रोह को दबाने का केवल एक ही रास्ता जानती है और वह है मृत्यु। ललित मरकर भी जीवित है, सशरीर ललित मर चुका है लेकिन विचारों में जिंदा है। मधुश्री कहती है – "...नहीं दरोगा जी वह मरा नहीं है। वह जिंदा है..."[49]

'अर्की आइमाई' में सुवर्ण का तारा के साथ विवाह करने का मुख्य उद्देश्य बच्चों का पालन-पोषण, घर का काम एवं यौनदासी की व्यवस्था करना होता है। "हो म उनीहरुको आमा हुन सकिन । लाग्थ्यो, उनीहरुको लागि म केही पनि थिइन, केवल उनीहरुको ड्याडको बेड पार्टनर सिवाय ।"[50] (मैं उनकी माँ कभी नहीं बन सकी। उनके नज़रों में कुछ नहीं थी सिवाय उनके डैड के बेड पार्टनर के) अत: तारा को कभी भी पूर्ण पत्नी (स्वास्नीमान्छे) एवं माँ का दर्जा नहीं मिलता। "मेरी सासूले जन्म दिने आमाको अधिकार मलाई बेला-बेला समझाई रहन्थिन्।"[51] अन्य पुरुषों के साथ तारा की बात होती है, लेकिन वे किसी भी अर्थ में सुवर्ण से भिन्न नहीं होते। उसे संसार के सभी पुरुष अब एक-जैसे लगते हैं, जिन्हें परखने के लिए तारा उनसे सिंदूर का हक़ माँगती है क्योंकि कोई भी उससे विवाह कर पत्नी का दर्जा

[49] निहाँ, हुस्न तबस्सुम. (2018). ***फिरोजी आँधियाँ***. दिल्ली : मनीष पब्लिकेशन. पृष्ठ सं. 112.

[50] निहारिका, नीलम कार्की. (वि. सं. २०७०). ***अर्की आईमाई***. भक्तपुर : शब्दहार क्रियशंस. पृष्ठ सं. 41.

[51] वही. पृष्ठ सं. 70.

नहीं देना चाहता, केवल दूसरी औरत बनाना चाहता है। तारा सभी के स्वार्थी मनसा को भांप चुकी है इसलिए वह सूझ-बूझ के साथ उन लोगों के समक्ष पहले विवाह का प्रस्ताव रखती है, जिसे कोई भी हज़म नहीं कर पाता। अंत में वह अपनी बाकि की जिन्दगी अपने ढंग से जीना चाहती है और जीती भी है।

'आज बाज़ार बंद है' की पूनम बहुत ही साहसी लड़की है। पूनम बार-बार विरोध करती है – "नहीं मैं अपना जिस्म नहीं बेचूंगी। जब तक मैं जिंदा हूँ तब तक मुझे कोई छू भी नहीं सकता।"[52] पूनम द्वारा निर्भीकता का परिचय देते हुए विरोध करना, परिस्थितियों से समझौता न करना, उसमें स्वातंत्र्य चेतना जागृत होने का संकेत है। आर्थिक तंगी के कारण वेश्यावृत्ति जैसे दलदल में जीने हेतु बाध्यता के बावजूद शबनम बाई में संवेदना की कमी नहीं है। वह किसी का भी बुरा नहीं चाहती, एक दिन उसके यहाँ किसी ग्राहक द्वारा दस हजार की गड्डी छूट जाती है जिसे उसी रूप में लौटा देती है एवं ग्राहक को सलाह देती है कि "बेहतर होगा हमारे लिए भी और तुम्हारे लिए भी। लोग अपने-अपने बीवी बच्चों में हंसी-खुशी रहे। वे अपने परिवार में ही संतुष्ट रहें।"[53] शबनम वेश्या होकर भी यह नहीं चाहती कि किसी का घर टूटे।

भारतीय समाज का मूल ढांचा पितृसत्तात्मक का है जहाँ न तो स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व के लिए जगह है और न ही उसके अस्मिता हेतु समुचित व्यवस्था। "पुरुष की अपेक्षा स्त्री अपनी देह में ज्यादा कैद है। वह अपने शरीर से ऊपर उठना या उसे भूलना भी चाहे तो न प्रकृति उसे ऐसा करने देगी, न समाज। उसका सारा सामाजिक मूल्यांकन, सबसे पहले उसके शरीर का मूल्यांकन है। गुण तो बाद में आते हैं।"[54] लेकिन स्त्री-चेतना के पक्षधरों ने पितृसत्तात्मक सोच रखने वालों को बारम्बार यह साबित कर दिखाया कि स्त्रियाँ अपने गुणों को आवश्यकता पड़ने पर सशक्त हथियार बनाने में भी सक्षम हैं। मध्यकाल में बारह

---

[52] नैमिशराय, मोहनदास. (2004). ***आज बाजार बन्द है***. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.पृष्ठ सं. 65.

[53] वही, पृष्ठ सं. 61

[54] यादव, राजेन्द्र. (2014). ***आदमी के निगाह में औरत***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 114.

आलवर भक्तों में 'आण्डाल' एक अकेली ऐसी महिला थी जिन्होंने पहली बार दलितों एवं स्त्रियों को भक्ति का अधिकारी घोषित करते हुए सामाजिक क्रांति का शंखनाद मुखरित किया। सामाजिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में क्रांति मचाने वाली आण्डाल का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। आध्यात्मिक दृष्टि से स्त्री-शक्ति जागृत करने में आण्डाल की अहम भूमिका है। अपने समय में उन्होंने स्त्री को भोग की वस्तु समझने वाले प्रवृत्ति के खिलाफ़ आवाज उठाया था। आण्डाल का मानना था कि स्त्री केवल पुरुषों की वासनापूर्ति का साधन नहीं है। किसी भी स्त्री का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है। आण्डाल ने तन-मन से रंगनाथ को अपनाकर सामाजिक रूढ़ियों का अतिक्रमण करते हुए अपने लिए स्वतंत्र राह को खोज निकाला था। इस प्रकार आण्डाल नारी स्वतंत्रता का उद्घोष करती हुई नज़र आती हैं।

बारहवीं शदीं की 'अक्क महादेवी' अपने साधना के लिए घर-परिवार तथा गाँव को पीछे छोड़ते हुए, सामाजिक रूढ़ियों को लाँघकर कल्याण आयीं थीं। उन्होंने अपने आत्मसम्मान की रक्षा हेतु पति कौशल राजा को भी त्याग दिया था - एक दिन गुरु के आने की सूचना पाने के पश्चात् अक्क महादेवी अंदर अपने वस्त्र व्यवस्थित करने लगी तथा साड़ी ठीक कर रही थी कि "राजा कौशिक ने 'तुम जैसी पागल भक्तिन को साड़ी कि क्या जरूरत' कहकर साड़ी खींच ली। महादेवी ने अनुभव किया कि स्त्री का अपमान किस तरीके से किया जा रहा है।"[55] एक स्त्री का इस तरह से अपमान महादेवी को ग्राह्य नहीं हुआ, जिसके पश्चात् अक्का महादेवी ने केशाम्बरा धारण कर लिया और वहाँ से हमेशा के लिए चली गईं। यहाँ अक्कमहादेवी का केशाम्बरा धारण करना पुरुषवर्चस्ववादी समाज के प्रति एक विद्रोह भरा कदम था।

एक विद्रोह हमें 'आज बाज़ार बंद है' में शबनम बाई के कथनों में मिलता है - "मंदिर के पुजारी का कहना कि 'सब किस्मत का लिखा है' इसके जवाब में शबनम बाई पूछती हैं किसने लिखी किस्मत,

---

[55] मालती, डॉ. के एम. (2010). ***स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य***, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 18.

कौन बनाता है भाग्य बताओ तो हमें ?"[56] मनीषा कुलश्रेष्ठ वेश्यावृत्ति के सम्बन्ध में जोर देकर कहती हैं कि "भारत को जरुरत है स्त्री के आर्थिक, सामाजिक व मनोवैज्ञानिक उत्थान की ना कि वेश्यावृत्ति को बढ़ावा देने की। ....आज के युग में ये सुख देने का व्यापार नहीं, ड्रग्स देकर नशे में अपराध व लूटपाट का घिनौना धंधा बनता जा रहा है, तो इसको बढ़ावा देने का औचित्य क्या है ?"[57]

हमारे प्राचीन ग्रंथों में स्त्रियों की महानता माँ, पत्नी, बहन, सखी आदि के रूप में आदर के साथ वर्णन व गुणगान किया गया है तथा उनकी उदारता, महानता, ममता एवं कर्तव्यनिष्ठा की गौरवगाथा भी वहाँ वर्णित है। शुरू से ही भारतीय समाज पुरुषप्रधान रहा है। हमारे धर्म, हमारी सांस्कृतिक मान्यताएँ व परम्पराएँ स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को अभी तक पूर्णतः स्वीकार नहीं कर पाया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्रियों को अनेक कानूनी अधिकार प्राप्त हुए, किन्तु शिक्षा की कमी होने के कारण वे अपने अधिकारों का उपयोग नहीं कर पायीं। जिसका फ़ायदा पुरुषप्रधान समाज ने हमेशा उठाया।

4.3.1 स्त्री-चेतना का संक्षिप्त परिचय -

स्त्री-चेतना को उपन्यासों के जरिए परिभाषित करने से पहले स्त्री-चेतना से हम क्या समझते है? इसको जानना अत्यंत आवश्यक है। स्त्री-चेतना के उद्भव का मुख्य कारण है पितृसत्तात्मक व्यवस्था। इस विषय का आधार स्त्री और पुरुष के बीच भेदभाव से उत्पन्न कुत्सित मानसिकता को माना जा सकता है। अर्थात् स्त्रियों में इस हीन भावना का संचार किया जाना कि वो अबला है, या सदैव पुरुष पर आश्रित है अथवा उसका पुरुष के बिना कोई स्वतंत्र अस्तित्व है ही नहीं, ये सारे बिन्दु स्त्री चेतना पर प्रकाश डालने को प्रेरित करते हैं। स्त्री-चेतना का वास्तविक अर्थ - स्त्रियों का अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक होना है। पुरुष पर आश्रित न रहकर भी स्त्री की अपनी स्वतंत्र भूमिका है। स्त्री होने का अर्थ केवल अबला या गृहणी होना

[56] नैमिशराय, मोहनदास. (2004). ***आज बाजार बन्द है***. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.पृष्ठ सं. 48.
[57] गुप्ता, रमणिका. (दिसम्बर 2014). ***युद्धरत आम आदमी***, वर्ष 2, अंक – 15. नई दिल्ली. पृष्ठ सं. 73.

नहीं है अपितु स्त्री का समाज में भी अपना विशिष्ट स्थान हो सकता है। इन्हीं भावनाओं से किसी स्त्री का जागृत होकर आगे बढ़ना ही स्त्री-चेतना है, लेकिन पुरुषप्रधान समाज ने हमेशा स्त्री के संघर्ष को नकारा है। इसी बात को गहरी सोच के साथ राजेंद्र यादव ने अपने शब्दों में कहा है कि स्त्री हमारा अंश और विस्तार है। वह हमारी ऐसी जन्मभूमि है जिसे हमने अपना उपनिवेश बना लिया है।

"स्त्री सशक्तिकरण के सन्दर्भ में लक्ष्मीबाई का प्रसिद्ध कथन अत्यंत प्रासंगिक है कि स्त्रियाँ दृढ़ता का कवच पहनें तो फ़िर संसार में ऐसा पुरुष कोई हो ही नहीं सकता जो उनको लूट ले।"[58] बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दुनिया-भर में जो उपनिवेश भौतिक और मानसिक रूप से स्वतंत्र हुए उनमें 'स्त्री' नाम का उपनिवेश भी है। दलित हमारे घरों और बस्तियों से बाहर होता है। स्त्री हमारे भीतर है इसलिए उसका संघर्ष ज्यादा जटिल है। उनकी मुक्ति स्वयं हमारी मुक्ति है। यानी गुलाम बनाए रखने वाली मानसिक गुलामी से मुक्ति। इस मानसिक गुलामी से मुक्ति पाने हेतु प्रत्येक स्त्री को जागृत होना अत्यंत आवश्यक है। इस सन्दर्भ में थेरीगाथा में संग्रहीत भिक्षुणी सुमंगला माता के गीतों को नहीं भूला जा सकता। भिक्षुणी बनने से पहले और बाद के अनुभवों को उनके गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है – अहो ! मैं मुक्त नारी ! मेरी मुक्ति कितनी धन्य है/पहले मैं मूसल लेकर धान कूटा करती थीं/आज उससे मुक्त हुई/मेरी दरिद्रावस्था के वे छोटे-छोटे बर्तन/जिनके बीच मैं मैली-कुचली बैठती थी/और मेरा निर्लज्ज पति मुझे उन छातों से भी तुच्छ समझता था/जिन्हें वह अपनी जीविका के लिए बनाता था/अब उस जीवन के आसक्तियों और मलों को मैंने छोड़ दिया/मैं आज वृक्ष मूलों में ध्यान करती हुई/जीवन यापन करती हूँ/अहो ! अब मैं कितनी सुखी हूँ।

अतः सुमंगला को जब चेतना आयी कि वह भी समाज के सभी क्षेत्रों में समान अधिकार रख सकती है तो उसने तुरंत सभी मृत बंधनों से मुक्त होने का मार्ग ढूंढा तथा अपने पति के अत्याचारों को

[58] मालती, डॉ. के एम. (2010). ***स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य***, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 37.

सहन करना अस्वीकार किया जो उक्त पंक्तियों में विदित है। सुमंगला मेंइसी भाव का जागृत होना ही स्त्री-चेतना कहलाता है।

स्त्री-विमर्श को पुरुषों ने अपने मानसिकता के अनुसार दो भागों में बाँटा हैं– सार्वजनिक और निजी, जबकि स्त्रियाँ अपने ढंग से अपने आपको देखे जाने का आग्रह करती है। वह भावना और देह को साथ लेकर जीवन की गति को देखती है। भावना के साथ-साथ देह की इच्छा को भी महत्व देना स्त्री का अपना मत है जिसे पुरुष समाज आसानी से हजम नहीं कर पाता। "स्त्री-विमर्श की प्रासंगिकता इसलिए है क्योंकि यह स्त्री को व्यक्ति से ऊपर उठाकर उसके अस्मिता से जोड़ती है। वह यह भी समझने लगी है कि स्त्री की मुक्ति समाज की मुक्ति भी है, वह यह सवाल भी पूछना चाहती है कि सारे संस्कृति, धर्म और नैतिकता का बोझ उसी के कंधों पर या शरीर को लेकर क्यों है?"[59] अक्क महादेवी के स्थिति पर माता-पिता द्वारा चिंता व्यक्त करने पर वे कहती हैं कि - "भूख लगी तो भिक्षान्न हैं/प्यास बुझाने तालाब-कुएँ हैं/ठंड से बचने जीर्ण वस्त्र हैं/शयन के लिए उजाड़ मंदिर हैं/मेरी आत्मा के साथी प्रभु चन्नमल्लिकार्जुन हैं।"[60] अक्क महादेवी की चिंतन अब पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो चुकी है। वे किसी प्रकार के बंधन नहीं चाहतीं, ऐसे पुरुष के साथ उन्हें रहना स्वीकार्य नहीं जिसकी मानसकिता का आधर ही स्त्री-पुरुष के बीच भेदभाव हो। जो मानता हो कि एक अधिक शक्तिशाली है तो दूसरा कम। एक सर्वेसर्वा हो और दूसरा दासी। ऐसे भेदभावपूर्ण विचारों का खंडन करना ही स्त्री चेतना का जगना है।

[59] यादव, राजेन्द्र. (2014). ***आदमी के निगाह में औरत***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 245.
[60] मालती, डॉ. के एम. (2010). ***स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य***, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 18.

4.3.2 आर्थिक सशक्तिकरण -

अपने समस्त विसंगतियों के बावजूद मानव समाज द्वारा स्थापित परिवार नाम की संस्था एक श्रेष्ठ व्यवस्था मानी जाती है। परिवार समाज में रहने वाले स्त्री और पुरुष दोनों से बनता है। बहुत सोच समझ कर श्रम विभाजन के आधार पर समाज और परिवार की रचना की गई थी। फिर उसके सुचारू संचालन के लिए स्त्री और पुरुष दोनों की जिम्मेदारियाँ परिभाषित की गई थीं, भूमिकाएँ तय की गई थीं। हुआ यह कि घर से बाहर पुरुष अर्थ जुटाने में लग गया और स्त्री घरेलू काम में। व्यक्तिगत संपत्ति की उत्पत्ति और उस संपत्ति पर पुरूषों के मजबूत एवं एक मात्र स्वामित्व केपश्चात् पुरूषों के द्वारा की जाने वाली आर्थिक प्रवृत्ति को श्रेष्ठ मान लिया गया और स्त्रियों के द्वारा किए जाने वाले घर के भीतर के कार्य को महत्वहीन समझा जाने लगा। अर्थात् आर्थिक प्रवृत्ति को ही काम समझा जाने लगा। घरेलू कामों को श्रम के श्रेणी में नहीं लिया गया। अन्याय पर टिके हुए ये सामाजिक मूल्य आज भी हमारे समाज और पुरुष-शाषित परिवार में स्थापित है। अब हम आर्थिक प्रवृत्ति को ही काम समझते हैं। घरेलू काम, काम नहीं माने जाते। द्वंद्व यहीं से पैदा होता है। महिलाएँ चौबीसों घंटे काम करके भी बेरोजगार और बेकाम की मानी जाती हैं और इसी आधार पर उन्हें पुरूषों पर अवलंबित माना जाता है। बच्चों को जन्म देना, उन्हें पाल-पोस कर बड़ा करना, शिक्षित करना, संस्कार देना इत्यादि सब स्त्री की जिम्मेदारी होती हैं जबकि ये सारे कार्य अर्थोपार्जन के लिए किए गए किसी भी कार्य से अधिक महत्वपूर्ण कार्य होते हैं, किंतु हमने निजी संपत्ति की व्यवस्था को स्वीकार कर लिया और स्त्री मुक्ति के नाम पर स्त्रियों को समानता का सामाजिक दर्जा देने के लिए पुरूषों के समान ही आर्थिक उपार्जन के कम महत्व वाले कार्यों में जोर दिया।

गरीबी के अलावा अनमेल विवाह, बहुविवाह, सामाजिक प्रतिष्ठा, अशिक्षा, कुसंस्कार आदि समस्याओं तथा पूँजीपतियों के भोग विलास प्रवृत्ति के कारण ही नारी को वेश्यावृत्ति की तरफ जाना पड़ा

है लेकिन आर्थिक समस्या ही इसकी मूल समस्या है। एंगेल्स कहते हैं – "जहिलेदेखी समाज वर्गमा बाँड़ियो तहिलेदेखी नै अनिवार्यरूपले वेश्यावृत्ति पनि शुरू भयो।"[61]

वर्तमान पूँजीवादी समाज में स्त्रियों की आजादी का वास्तविक अर्थ पूँजीवादी आजादी है। हालांकि पिछली सदी के अंतिम दो-तीन दशकों से नारी-मुक्ति, नारी-सशक्तीकरण तथा लैंगिक भेदभाव दूर करने के लिए जो नारेबाजी हमारे समाज में लगाई जा रही है वह इतनी खूबसूरत और व्यापक रूप से प्रभावशाली है कि इसकी आलोचना करते हुए भी आदमी झिझकता है। लेकिन वास्तविकता यही है कि स्त्रियों के पक्ष में की जा रही आजादी की सारी बातें वास्तव में पूँजीवादी आजादी की बातें हैं और पूँजीवादी आजादी का वास्तविक अर्थ होता है आर्थिक गुलामी। पहले के समाजों की अपेक्षा आज हमारे समाज की नारी अधिक मुक्त दिखाई दे रही है यह एक बड़ा बदलाव है। क्योंकि आज की नारी शिक्षित है। यही नहीं वह आज अर्थिक रूप से आत्मनिर्भर भी है, किंतु इन सबके बावजूद सामान्य मजदूरी से लेकर कॉरपोरेट कार्यालयों तक में काम करने वाली अधिकांश महिलाएँ खुश नहीं हैं। आत्मनिर्भर होने के बावजूद वे आर्थिक रूप से परेशान ही रहती हैं। यह भी एक कारण है कि आर्थिक निर्भरता के लिए उन्हें अनाप-शनाप समझौते करने पड़ते हैं, शोषण और अपमान का सामना करना पड़ता है। अनिच्छित परिस्थितियों में अनचाहे ही मुस्कुराते रहने का अभिनय करना पड़ता है। इस प्रकार स्त्रियों की आर्थिक निर्भरता तो बढ़ी किंतु एक मजबूत इकाई के रूप में परिवार बिखर गया। स्त्रियों में हीन भावना पैदा होती गई। वे कुंठित होने लगी और अपने ही खड़े किए गए घर से बेदखल की जाने लगीं। परिणामस्वरूप घर, परिवार, समाज टूटे और मनुष्य खंडित हुआ।

वर्तमान समय में पुरुष शिक्षित एवं कामकाजी पत्नी की कामना करता है। विवाह के लिए वही प्रस्ताव चुने जाते हैं जहाँ महिलाएँ शिक्षित हों। यह भी देखने में आया है कि स्वयं से अधिक पढ़ी लिखी

[61] प्रश्रित, मोदनाथ. (1990) ***'नारी : बन्धन र मुक्ति'*** वाराणसी : कल्पवृक्ष प्रकाशन. पृष्ठ सं. 116.

महिलाओं को जीवन साथी के रूप में पाकर पुरुष गर्व महसूस तो करता है लेकिन उनके अधिकारों से डरता भी है।

भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में देखा जाए तो वैदिक काल से आज तक नारी के स्वरूप में काफी परिवर्तन हुए हैं। बाहरी तौर पर तो यही प्रतीत होता है कि आधुनिक युग के पूर्व स्त्री के सम्बन्ध में धारणा कुछ और थी और आधुनिकता के उदय के साथ कुछ और होती गयी। यह विचार अपने आप में अधूरा है। सामाजिक यथार्थ की पृष्ठभूमि पर विचार किए बिना इस विषय को सही तौर पर परिभाषित करना न तो संभव है न उचित ही है। हमारे समाज का आर्थिक ढांचा बदल चुका है। इसलिए स्त्री और पुरुष के परस्पर सम्बन्ध भी बदल रहे हैं। प्रेमचंद के युग में जो मालती एक अपवाद मात्र थी आज के समय में एक सामान्य पात्र है। कृष्णा सोबती मानती हैं कि "स्त्री अपनी दैहिक सीमाओं से उभर कर अपने व्यक्तित्व की खोज में है। आर्थिक स्वतंत्रता के साथ उसका आत्मविश्वास बढ़ा है और गृहस्थी के बाहर का बड़ा आकाश भी ज़्यादा निखरा है जो उसे नई संज्ञा, नहीं भाषा दे रहा है।"[62] सामाजिक व्यवस्था यदि समय के साथ नहीं बदलती है तो व्यवस्था और समाज दोनों का पतन निश्चित है। स्त्री और पुरुष समाज की सर्वसम्मत दो इकाई हैं। इसलिए विश्व परिदृश्य में उनका स्वरूप बदलना अत्यन्त आवश्यक है।

4.3.3 नेपाल में नारीवादी चिंतन -

विश्व साहित्य के अतीत को वर्तमान दृष्टि से देखा जाए तो नारी और पुरुष दोनों साहित्य सृजन के क्षेत्र में संलिप्त पाए जाते हैं, लेकिन साहित्य के दिग्गज तथा प्रतिष्ठित साहित्यकारों में नारी का नाम बहुत कम आया है। औसतन देखा जाए तो नारी की तुलना में पुरुष साहित्यकार की संख्या अधिक है क्योंकि उन्हें शुरू से अधिक अवसर प्राप्त हुए। पूर्व काल को यदि हम देखे तो समाज में नारी की स्थिति लैंगिक विभेद की शिकार होने के साथ-साथ उसके साथ पशु जैसा व्यवहार होता था, उसे घर की चार दीवारों में ही

[62] मंडलोई, लीलाधर. (दिसम्बर 2017) ***नया ज्ञानोदय***. अंक 178. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. पृष्ठ सं. 14.

सीमित कर दिया जाता था। वह केवल वंश वृद्धि की एक मात्र साधन तथा भोग की वस्तु मानी जाती थी और दासी के रूप में उसे देखा जाता था। नेपाली समाज की स्थिति भी खास अच्छी नहीं थी, परंपरागत दृष्टि से पितृसत्तात्मक व्यवस्था से नेपाली समाज त्रस्त था। तत्कालीन नेपाली समाज में ऐसे कई मुहावरे प्रचलित थे, जो नारी के प्रति दुर्भावना और दुर्विचार रखते थे जो पुरुषवादी मानसिकता का परिचय देते थे। ऐसे रूढ़िवादी मानसिकता से आज भी नेपाली समाज पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हो सका है।

नेपाल में नारीवादी दृष्टि पश्चिम देशों की देन मानी जाती है। पश्चिम के देशों से प्रारंभ हुए इस नारीवादी चिंतन की अवधारणा को देखा जाए तो इसका इतिहास लगभग दो सौ वर्ष पुराना माना जाता है। इस सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य लैंगिक असमानता, प्रकृति एवं कारणों को समझना है तथा इसमें सम्बन्धित राजनीतिक विचारों पर जोर, प्रजनन संबंधित अधिकार, घरेलू हिंसा, मातृत्व अवकाश, समान वेतन संबंधित अधिकार, यौन उत्पीड़न, भेदभाव एवं यौन हिंसाआदि समाहित है।

नेपाल में नारीवादी दृष्टि इसी आधार पर निर्मित हुई है, ऐसा माना जा सकता है। नेपाल में महिला आंदोलन की चर्चा की जाए तो उसके इतिहास को समझना आवश्यक हो जाता है। विभिन्न संस्कार और भेदभावमूलक स्थिति के कारण नेपाली महिला आंदोलन की शुरुआत हुई। हिंदूधर्म के अनुसार पौराणिक समय से ही महिलाओं को देवी के रूप में पूजता रहा है। उसे काली, लक्ष्मी, सरस्वती क्रमशः शक्ति, संपत्ति और ज्ञान के प्रतीक के रूप में लिया जाता रहा है। स्त्रियों को देवी का प्रतीक मानने वाला यह समाज उनको दूसरे दर्जे का नागरिक-सह व्यवहार करता है, जिसके कारण नेपाली महिला आंदोलन की शुरुआत हुई, एक नए आंदोलन का जन्म हुआ। नेपाली नारी के विरुद्ध होने वाले विभिन्न प्रकार के भेदभाव एवं शोषण के विरुद्ध नारियों ने एकजुट होकर महिला आंदोलन में सहभागिता ली। "नारीवादी साहित्य स्त्रियों के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्वतंत्रता एवं समानता के लिए वर्तमान युग में

संचालित नारी आन्दोलन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है।"[63] पुरुषों द्वारा स्थापित किए गए स्त्री सम्बन्धी धारणाएँ, दृष्टिकोण, पूर्वाग्रह, मान्यता, कल्पना तथा साहित्य में चित्रित उनकी छवियों को खंडन कर यह नारीवादी चिंतन स्त्री को वास्तविक पहचान तथा अस्तित्व गढ़ने हेतु सबल प्रदान करता है। नेपाल में नेपाली आंदोलन को सशक्त और प्रभावकारी बनाने में विश्व नारी आंदोलन के सहयोग को देखा जा सकता है, अर्थात् आंदोलन को सशक्त और प्रभावकारी बनाने में विश्व में हुए नारी आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका है।

नेपाल का नारीवाद पश्चिमी देश के नारीमुक्ति आन्दोलन से काफ़ी हद तक प्रभावित है। सर्वप्रथम सन् 1792 में मेरी उल्स्टोनक्राफ्ट *'A Vindication of the Rights of Women'* शीर्षक से स्त्री के पक्ष में एक सशक्त अभिव्यक्ति देती है। इसके बाद जॉन स्टुअर्ट मिल द्वारा सन् 1869 में *'The Subjection of Women'* प्रकाशित होता है जिसमें नारी के प्रति होने वाले शोषण, दमन का चित्रण किया गया है तथा नारीमुक्ति आन्दोलन को आगे बढ़ने में इसकी बड़ी भूमिका रहती है। अमेरिका की मार्गरेट फुलर ने भी *'Women in the Nineteenth Century'* (1845) नामक पुस्तक लिखकर आन्दोलन को आगे बढ़ाने में सहायता प्रदान की। आगे जाकर वर्जिनिया वुल्फ़ की पुस्तक *'A Room of One's Own'* (1929) नारीवादी आन्दोलन की शास्त्रीय दस्तावेज माना जाता है। सन् 1949 में प्रकाशित सिमोन द बउवार की पुस्तक *'The Second Sex'* नारीवादी लेखन तथा आन्दोलन के लिए एक युगांतकारी दस्तावेज के रूप में देखा जाता है। इस पुस्तक के जरिए लेखिका ने सर्वप्रथम यह परिक्षण किया कि पुरुषों द्वारा उपन्यास में नारी का चित्रण किस प्रकार किया जाता है। "उनले नारीको पहिचान 'नकारात्मक वस्तु वा अन्य' का रूपमा तथा पुरुषको पहिचान 'प्रभुत्वशाली व्यक्ति' का रूपमा विवेचना गर्दै पुरुष

[63] लुइटेल, खगेंद्रप्रसाद. (2069). ***नेपाली उपन्यासको इतिहास***. काठमाण्डौ : नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान. पृष्ठ सं. 372.

लेखकहरुका कृतिहरुमा वर्णित नारी सम्बन्धी 'महान् सामुदायिक मिथहरू' को विश्लेषण पनि गरेकी छन्।"[64]

उपरोक्त सभी कृतियों का सम्बन्ध तत्कालीन राजनीति से था। नेपाल में भी नारीवादी चिंतन इसी स्वरूप में आया है। नेपाल का नारीवाद मार्क्सवादी/समाजवादी नारीवादी विचारधारा से भी प्रभावित देखा जा सकता है जो यह मानता है कि पूँजीवाद स्त्रियों के उत्पीड़न में सहायक की भूमिका अदा करता है। अत: वे मानते हैं - "समाजवादी जुगमा आएर बल्ल पितृसत्ताको एकलौटी अधिकार टुटयो र नारीलाई पूरा स्वतंत्रता र अधिकार मिल्यो। जीवन-जुगौंदेखि जेलिएका बन्धनहरू चुँड़िनथाले।"[65] जबकि भारत में स्त्रीवाद का उद्भव पश्चिम से नहीं माना जाता है। भारत में इसकी लम्बी परम्परा रही है। "भारतीय साहित्य में स्त्री विमर्श की ओजस्वी स्वर धारा बौद्धकालीन थेरीगाथा से निकलकर भक्ति आन्दोलन के सन्दर्भ में आलवार भक्तों में आण्डाल, बारहवीं सदी में कर्नाटक की अक्क महादेवी, मराठी की महिला संत, मीराबाई, नवजागरण काल में पंडिता रमाबाई, ताराबाई शिन्दे, सीमंतिनी उपदेश की अज्ञात हिन्दू औरत से होकर वर्तमान स्त्री मुक्ति आन्दोलन तक अविराम गति से उछलती मचलती, पुरुषसत्ता के चट्टानों से टकराती अपना अलग रास्ता तय करती आई है।"[66]

नेपाल की पहली 'नारी समिति' की स्थापना योगमाया द्वारा किया गया था जिसे सर्वप्रथम नेपाली इतिहास में ऐसे संस्था के रूप में देखा गया जो नारी के अधिकारों को संवैधानिक दर्जा दिलाता है। योगमाया ने दो सौ समर्थकों के हस्ताक्षर सहित तत्कालीन राजा के पास एक मांग पत्र जमा किया, जिसमें सतीप्रथा के विरोध में उसकी समाप्ति के लिए मांग की गई थी। इसके विरोध में उन्होंने अपने दो सौ से भी अधिक समर्थकों के साथ अग्नि समाधि लेने की कोशिश की लेकिन पकड़ी गयी और उन्हें चार महीनों

[64] लुइटेल, खगेंद्रप्रसाद. (2069). ***नेपाली उपन्यासको इतिहास***. काठमाण्डौ : नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान. पृष्ठ सं. 374.
[65] प्रश्रि, मोदनाथ. (1990). ***नारी बंधन र मुक्ति***. वाराणसी : कल्पवृक्ष प्रकाशन. पृष्ठ सं 132.
[66] मालती, डॉ. के एम, (2010). ***स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य***, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 153.

की जेल की सजा सुनाई गई। तथापि वे अपने लक्ष्य से विचलित नहीं हुई, इसके पश्चात् वि. सं. 1998 में सामूहिक रूप से अरूण नदी में पैंसठ अनुयायी के साथ उन्होंने जल समाधी ली। उनके द्वारा प्रकाशित कविता 'सर्वथा योगवाणी' है, जिसमें उन्होंने भजन और कविता के माध्यम से लोगों को सामाजिक कुरीतियों एवं अंधविश्वासों से जागृत करने का प्रयास किया। नेपाली साहित्य में कई लेखिकाएँ – पारिजात, पुष्पा राई, ईशा शाह, गीता शर्मा, गीता केशरी, भागीरथी श्रेष्ठ, वानिरा गिरी, शोभा भट्टराई, विन्ध्या सुब्बा, नयादेवी, नीलम कार्की निहारिका, पद्मावती सिंह भाषा भण्डारी, इंदिरा प्रसाई हुई जिन्होंने उपन्यासों में स्त्री के चेतना को न सिर्फ बल दिया बल्कि स्त्री को सीमित दायरे में बाँधने वाली मानसिकता का पुरजोर विरोध करते हुए नेपाली उपन्यास के नए रूप को स्थापित किया।

"अस्तित्वको चेतनासंगै राजनैतिक र सामाजिक परिवर्तनका लागि स्वतन्त्रताका साथ लिंगभेद, वर्गभेदको अनेक परम्परागत धारणाको विरोध गर्दै बौद्धिक चिन्तनका साथ समतामूलक समाजको निर्माणका कथा सिर्जना गर्न पारिजात, माया ठकुरी, लीला श्रेष्ठ सुब्बा, मन्जु काँचुली हुदै आन्विका गिरी र उषा शेरचन आदि नारी साहित्यकारहरु अभिमुख भएका छन्।"[67] वैसे तो नेपाली समाज में माँ, सास, दीदी, बहन-बेटियाँ एवं दुल्हनबहू को अपनी-अपनी भूमिकाओं के अनुसार मान-मर्यादा और प्यार की अधिकारिणी माना गया है। 'जहाँ नारी का सम्मान होता है वहाँ देवता भी खुश होते हैं' कहकर कुछ लोग इसका पालन करते हैं। लेकिन पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने नारी को आत्मनिर्भर बनने से रोका। वास्तव में नारी अपने हिस्से के अधिकार एवं प्यार को नहीं पा सकी है। वह केवल पुरुष के विवेक और दया पर ही निर्भर रहती आयी है। समाज में आर्थिक सम्बन्ध ही कुछ ऐसा है कि माँ की ममता धन संपत्ति के आगे कुछ नहीं है। संपत्ति में अपना अधिकार खोजती स्त्रियों की संख्या आज भी बहुत कम है। नेपाली समाज में इस प्रकार की धारणा अक्सर देखने को मिल जाता है जो स्वाभाविक भी है। पुत्र और पुत्री में भेदभाव

[67] घिमिरे, रोचक. (भदौ-असोज २०७२) ***रचना.*** वर्ष ५५, अंक ३, पूर्णांक १३८, काठमांडौ. पृष्ठ सं. 129.

करने में यह समाज पीछे नहीं है – "बाबुहरू छोरा पढ़ाउन जति मुठी खोल्छन्, छोरीको प्रश्नमा त्यत्तिकै मुठी कस्छन्"[68] (बेटे को शिक्षा दिलाने हेतु पिता बहुत खर्च करता है वही बेटी के सन्दर्भ में वह उतना ही संकुचित हो जाता है।)

अत: विभिन्न उपन्यासों के शोधपरक अध्ययन एवं विश्लेषण से यह परिलक्षित होता है कि हिंदी और नेपाली उपन्यासों में नारी के शोषण और उनके संघर्षों का स्वरुप भी बदल रहा है तथा उपन्यासकार इसे प्रमुखता से उजागर कर रहे हैं। 'पल्लो घरको झ्याल' की एक पात्र सेती में निर्भीक तथा स्वतंत्रता प्रिय नारी का प्रदर्शन होता है। "राम्रो ख्वाउन कमाइ छैन मोराको, उल्टै कुट्ने मलाई" भन्ने सेती आफूलाई पाल्न र एक पेट खुवाउन नसक्ने तर जाँड खाएर कुट्ने लोग्नेलाई त्यागेर आफ्नै पौरखमा आनन्दले बाँचेकी छे।"[69] आज की नारी, पुरुषवादी व्यवस्था द्वारा गढ़े गए चरित्र को स्वीकार नहीं करतीं, बल्कि पूर्ण शक्ति के साथ उसका खंडन करती है, उसका प्रतिरोध करती है। आज की स्थिति में ग्रामीण स्त्रियाँ चुनाव जीत कर मुखिया एवं उच्चाधिकारी बन कर अपनी क्षमता का प्रदर्शन कर रहीं हैं जो निश्चित ही आने वाली पीढ़ी के लिए प्रेरणा बनेंगी। आदिवासी समाज से सिख लेते हुए स्त्री-पुरुष को अपने सम्बन्ध पर पुन: चिंतन करना आवश्यक है। स्त्री और पुरुष को एक-दूसरे पर राज करने की अपेक्षा एक-दूसरे की सहयात्री बनना चाहिए। "दोनों बराबर साथ चलें, इसी में दोनों की मुक्ति है, अर्थात् स्त्री न देवी, न दासी, बस साथी और पुरुष न देव, न राजा, न स्वामी, बस साथी।"[70]

***

[68] प्रश्रि, मोदनाथ. (1990). ***नारी बंधन र मुक्ति***. वाराणसी : कल्पवृक्ष प्रकाशन. पृष्ठ सं. 20.

[69] https://www.samakalinsahitya.com/sahitya/details/6911

[70] गुप्ता, रमणिका. (2014). ***स्त्री मुक्ति : संघर्ष और इतिहास***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 110.

हिन्दी एवं नेपाली उपन्यासों में स्त्री-चेतना - तुलनात्मक अध्ययन

5.1 तुलनात्मक साहित्य : संक्षिप्त परिचय

5.1.1 तुलनात्मक अध्ययन की प्रासंगिकता

5.2 हिन्दी एवं नेपाली के चयनित उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

5.2.1 हिन्दी के चयनित उपन्यासों के नाम

5.2.2 नेपाली के चयनित उपन्यासों के नाम

5.3 हिन्दी और नेपाली के चयनित उपन्यासों में निहित स्त्री-चेतना का तुलनात्मक अध्ययन

5.3.1 सामाजिक-चेतना

5.3.2 आर्थिक-चेतना

5.3.3 स्त्री-चेतना

तुलना से ही मनुष्य के बुद्धि का आरम्भ हुआ है अर्थात् मनुष्य आरम्भ से ही तुलनात्मक दृष्टि अपनाते आया है। मनुष्य एक-दूसरे के साथ विचारों का आदान-प्रदान करता तो है ही साथ ही भाषा, संस्कृति एवं साहित्य आदि के जरिए भी तुलना करता है। मनुष्य की यह प्र्वृत्ति साहित्य में भी देखी जाती है, इसे साहित्यिक दृष्टि से भी समझा जा सकता है। साधारण शब्दों में कहा जाए तो तुलनात्मक साहित्य एक से अधिक भाषाओं में रचित साहित्य का अध्ययन है।

तुलना इस अध्ययन का मुख्य अंग माना जाता है। मगर क्रोचे का कहना है कि “तुलनात्मक साहित्य स्वतंत्र विद्यानुशासन बन ही नहीं सकता क्योंकि किसी भी साहित्यिक अध्ययन के लिए तुलना एक आवश्यक अंग है।”[1] अन्य विद्वानों का भी कहना है कि चाहे एक भाषा में लिखित साहित्य का अध्ययन हो या एक से अधिक भाषा में लिखित तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन हो, दोनों ही स्थितियों में अध्ययन का केंद्रीय विषय साहित्य ही है और इसीलिए तुलनात्मक साहित्य को किसी एक भाषा में लिखित साहित्य के अध्ययन से अलग नहीं किया जा सकता। आलोचक किसी भी लेखक की कृति में निहित विशिष्ट प्रवृत्ति को उभारने के लिए अन्य किसी तुलनीय कृति के साथ उसकी तुलना करता है लेकिन तुलनात्मक आलोचक के लिए यह काम सचेतन रूप से होता है। वह तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करता हुआ कृतियों में निहित उसकी विशेषताओं को प्रकाश में लाता है। अत: तुलनात्मक आलोचक के लिए तुलनात्मक पद्धति उसके आधारभूत पद्धतिहोते हैं।

[1] चौधुरी, इन्द्रनाथ. (2010). ***तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य***. दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 15.

5.1 तुलनात्मक साहित्य : संक्षिप्त परिचय :-

तुलनात्मक साहित्य में विभिन्न भाषाओं में लिखे साहित्य अथवा उनके संक्षिप्त घटकों के साहित्यिक तुलना होती है और यही उसका आधार तत्व है। तुलनात्मकता एक विशेष प्रकार की मानसिकता अथवा मानसिक दृष्टि है। रेमाक का कहना है कि "तुलनात्मकता सांश्लेषिक मानसिक दृष्टि है जिसके द्वारा भौगोलिक एवं जातीय स्तर पर साहित्य का अनुसंधानात्मक विश्लेषण संभव हो पाता है।"[2] अर्थात् यदि एक ही भाषा में लिखित साहित्य के अंतर्गत दो समान या असमान रूप हो या प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए जैसे मीराबाई के भक्तिमूलक गीतों के साथ महादेवी के रहस्यात्मक गीतों की तुलना, तो इसको तुलनात्मक साहित्य कहना संभव नहीं क्योंकि इसमें सांश्लेषिक मानसिक दृष्टि के विस्तार की संभावना नहीं होगी। किसी एक राष्ट्र की परिधि को पार करके दूसरे राष्ट्रों की भाषाओं में लिखित साहित्य की तुलना से सांश्लेषिक मानसिक दृष्टि विकसित हो सकती है। जैसे मीरा के गीतों का अध्ययन करते हुए जब उसके अर्थछवियों की ईरान में उद्भावित् सूफी रहस्यात्मक गीतों अथवा अंग्रेजी के रहस्यवादी कवि ब्लैक या डन की कविताओं के साथ तुलना की जाती है तो उसको निश्चय ही तुलनात्मक साहित्य कहा जाएगा। इन्द्रविलास अधिकारी भी अपने पुस्तक में लिखते हैं - "तुलनाशास्त्रीहरूको मान्यता छ कि जति टाढा अथवा असम्बन्धित परम्पराअन्तर्गत विषय छानिन्छन् त्यति नै राम्रा परिणाम निक्लन्छन्।"[3]

प्रसिद्ध विश्वकोशकार वेबस्टर ने तुलना के अर्थ और आशय को बहुत विश्वसनीय ढंग से स्पष्ट किया है - दो या दो से अधिक वस्तुओं के समान एवं असमान तत्वों को ज्ञात करने के लिए उन्हें साथ रखकर परिक्षित करना। दो वस्तुओं की असमानता की मात्रा का पता लगाने के लिए भी तुलना की जाती है। दो वस्तुओं के साम्य-वैषम्य की निष्पक्ष जाँच के लिए तथा निष्कर्ष प्राप्ति के लिए भी तुलना की जाती है।

---

[2] चौधुरी, इन्द्रनाथ. (2010). ***तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य***. दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 16.

[3] अधिकारी, इन्द्रविलास. (२०६६). ***तुलनात्मक साहित्य : संक्षिप्त परिचय***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं.47.

डॉ॰ नगेंद्र तुलनात्मक साहित्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि तुलनात्मक साहित्य जैसे नाम से ही स्पष्ट है कि साहित्य का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत करना। तुलनात्मक साहित्य एक प्रकार का साहित्यिक अध्ययन है जो अनेक भाषाओं को आधार मानकर चलता है और जिसका उद्देश्य होता है - अनेकता में एकता का संधान।

तुलनात्मक साहित्य साहित्यिक समस्याओं का वह अध्ययन है, जहाँ एक से अधिक साहित्यों (भाषाओं, रचनाकारों, कृतियों, युगों, प्रवृत्तियों) का उपयोग किया जाता है। इसके अध्ययन में प्रत्येक अध्याय या पृष्ठ में तुलनात्मक होने की आवश्यकता न होकर उसकी दृष्टि, उद्देश्य तथा कार्यान्वयन का तुलनात्मक होना चाहिए। तुलना के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. सावित्री सिन्हा लिखती हैं कि किन्हीं दो वस्तुओं में शत-प्रतिशत तुलना-समानता सहज नहीं है। अत: उसमें कुछ विषमता, असमानता एवं विपरीतता भी सहज हो जाती है। वैषम्यमूलक अध्ययन भी तुलनात्मक शोध का एक अंग है। परंतु इससे साम्यमूलक ज्ञानवर्धन न होकर वैषम्यमूलक ज्ञानवर्धन ही होता है।

तुलनात्मक साहित्य अंग्रेजी के 'कम्पैरेटिव लिटरेचर' का हिंदी अनुवाद है। सन् 1848 में अपने पत्र में मैथ्यू अर्नाल्ड ने सबसे पहले 'कम्पैरेटिव लिटरेचर' (comparative literature) पद का प्रयोग किया था। तुलनात्मक साहित्य को एक स्वतंत्र विषय के रूप में दुनिया के विभिन्न विश्वविद्यालयों में अध्यापन के लिए चुना गया है। विदेश में इसे 'सांस्कृतिक अध्ययन' के नाम से भी जाना जाता है। "तुलनात्मक साहित्य की तीन परस्पर संबंधित दृष्टियां हैं- पहली फ्रांसीसी जर्मन स्कूल का अंतरराष्ट्रीयता के आश्रय से साहित्य का कालक्रमिक अध्ययन जहाँ साहित्यिक विकासवाद, ऐतिहासिक सापेक्षवाद तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों को तुलनात्मक अध्ययन के महत्वपूर्ण घटक माना जाता है। दूसरी अमेरिकी स्कूल की रूपवाद दृष्टि है जहाँ काव्यशास्त्र सौन्दर्यात्मक कलापरक तथा विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि को महत्व दिया जाता है। तीसरी रूसी स्कूल की समाजशास्त्रीय संस्कृतिपरक यथार्थवादी दृष्टि है जहाँ अंशतः

विभिन्न सामाजिक जीवन में घटित होने वाले समस्तरिय ऐतिहासिक परिवर्तनों एवं अंशत: उनके आपसी सांस्कृतिक तथा साहित्यिक अन्योन्य-क्रिया के आश्रय से तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन किया जाता है। ये तीनों दृष्टियाँ एक दूसरे के परीपूरक है। ”[4]

किसी एक कवि अथवा लेखक की अन्य कवि अथवा लेखक के साथ तुलना, एक परंपरा के साहित्य का दूसरी परंपरा के साहित्य के साथ, एक भाषा का दूसरी भाषा के साथ, एक युग की प्रवृत्ति का अन्य युग की प्रवृत्ति के साथ तुलना किया जाता रहा है। तुलनात्मक साहित्य कोई नया विषय नहीं है बल्कि मानव जाति के साहित्यिक चेतना ही जितना पुराना है। अरस्तू ने अपने ‘काव्यशास्त्र (पोएटिक्स) की रचना अपने पूर्व के विद्वानों सुकरात तथा प्लेटो के साहित्य संबंधी समीक्षाओं के आधार पर लिखा है। जिस प्रकार पाणिनि ने ‘अष्टाध्यायी’ का लेखन पुरोगामी व्याकरण विद्वान यास्क के सूत्र एवं उससे भी पूर्व ऋग्वेद में भजन स्तोत्र संग्रह के सूत्रों पर आधारित लिखा है। अर्थात् तुलना करने की प्रथा आदिकाल से ही चली आ रही है।

रवींद्रनाथ ठाकुर विश्व साहित्य की बात कहते हुए स्पष्ट करते हैं कि “यह पृथ्वी विभिन्न टुकड़ों में बैठे हुए लोगों के रहने का अलग-अलग स्थान नहीं है। उनका साहित्य अलग-अलग रचित साहित्य नहीं है। प्रत्येक लेखक के द्वारा रचित साहित्य एक पूर्ण इकाई है तथा वह इकाई समूचे मानव समाज के सार्वभौम सृजनात्मकता की परिचायक है।”[5] विश्व साहित्य जिसको अंग्रेजी में कम्पैरेटिव लिटरेचर कहा जाता है इस सार्वभौम सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति है। नेपाल में सार्वभौम साहित्य का एक अर्थ राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रीय भाषा के साहित्य का विकसित रूप कहलाता है जिसके लिए साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन होना आवश्यक माना जाता है। उससे भी पूर्व यह जानना आवश्यक हो जाता है कि इसके लिए किस

[4] http://lib.unipune.ac.in:8080/xmlui/bitstream/handle/123456789/8549/08_chapter2.pdf?sequence=8&isAllowed=y

[5] चौधुरी, इन्द्रनाथ. (2010). ***तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य***. दिल्ली : वाणी प्रकाशन.पृष्ठ सं. 13.

तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाना चाहिए? पश्चिमी तुलनात्मक साहित्य की पद्धति अनुरूप नेपाली साहित्य की तुलना नहीं की जा सकती। इसे निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा समझा जा सकता है - टॉलस्टॉय और होमर की तुलना और मोतीराम भट्ट और सिद्धिदास अमात्य की तुलना को एक ही तुलनात्मक पद्धति से नहीं देखा जा सकता। रूसी साहित्यकार टॉलस्टॉय और यूनानी साहित्यकार होमर की तुलना करने के दौरान शोधार्थियों को दोनों साहित्य में भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याओं एवं चुनौतियों का समाधान करना होगा क्योंकि दोनों साहित्य अलग-अलग राष्ट्र में विकसित हुआ है। जबकि मोतीराम भट्ट और सिद्धिदास अमात्य की भाषा भिन्न होने पर भी वे एक ही राष्ट्र के परिधि के भीतर रचे गए हैं जिसके कारण उनके बीच ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से समानता देखी जा सकती है।

"होमर तथा टलस्टॉय र नेपाली र नेवारी भाषाका मोतीराम र सिद्धिदासको तुलनासम्बन्धी टिप्पणीबाट थाहा हुन्छ कि यहाँका साहित्यकारको तुलना विविध पश्चिमकाको जस्तै गरी प्रयोग गर्न सकिन्न।"[6] (अर्थात् होमर तथा टॉलस्टॉय एवं मोतीराम (नेपाली भाषा) तथा सिद्धिदास (नेवारी भाषा) की तुलना सम्बन्धी टिप्पणी से यह ज्ञात होता है कि यहाँ के साहित्यकारों की तुलना को पश्चिम के तुलनात्मक पद्धति के अनुसार प्रयोग नहीं किया जा सकता।)

5.1.1 तुलनात्मक अध्ययन की प्रासंगिकता -

रविंद्र नाथ ठाकुर ने सन् 1907 ई० में विश्व साहित्य का उल्लेख करते हुए साहित्य के अध्ययन में तुलनात्मक दृष्टि की आवश्यकता पर जोर दिया था। वहीं बंकिम चंद्र चटर्जी ने तुलनात्मक साहित्य के अंतरराष्ट्रीय संदर्भवाद के आधार पर शेक्सपियर के नाटकटेम्पेस्ट की कालिदास के नाटक शकुंतला के साथ तुलना की थी। तुलनात्मक साहित्य का मुख्य उद्देश्य एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य में साहित्य का अध्ययन करना है। "साम्य-वैषम्य, व्यतिरेक, समानांतरता, थीम, काव्यरूप और विधा, इतिहास/परंपरा,

[6] अधिकारी, इन्द्रविलास. (२०६६). ***तुलनात्मक साहित्य : संक्षिप्त परिचय***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 1.

प्रभाव/स्वीकरण और अनुवाद तुलनात्मक साहित्य अध्ययन के मुख्य पक्ष में हैं।"[7] आज इक्कीसवीं सदी में भूमंडलीकरणतथा बाज़ारवाद के कारण सम्पूर्ण विश्व एक ही धागे में पिरोया हुआ है ऐसे में तुलनात्मक साहित्य अनेक कारणों से महत्त्वपूर्ण हो जाता है। तुलनात्मक अध्ययन वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाता है एवं उससे उच्चतर ज्ञान की प्राप्ति होती है। पाश्चात्य विद्वान मैक्समूलर ने इस संदर्भ में कहा है - "All higher Knowledge is gained by comparison and rests on comparison।"[8] अर्थात् सभी उच्चतर ज्ञान की प्राप्ति तुलना से हुई है और वह तुलना पर ही आधारित है।

अत: उपर्युक्त सन्दर्भों से यह समझा जा सकता है कि तुलनात्मक साहित्य का विकास विश्व के सभी देशों में अलग-अलग समय तथा भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में हुआ है जिसके कारण उनके बीच साम्यता-विषमता का पैमाना भी भिन्न प्रकार का पाया जाता है। तुलनात्मक साहित्य की वास्तविक विकास 19वीं शताब्दी से माना जाता है जब माइकल मधुसूदन दत्त ने वाल्मिकी, व्यास, कालिदास, होमर, वर्जिल, दांते, टेसो, मिल्टन आदि जैसे साहित्यकारों को एक-दूसरे के समानांतर रखकर देखा। उनके एक पत्र में उन्होंने लिखा था कि "यूरोपीय नाटक यथार्थ, उदात्त, आवेग तथा वीरता को लेकर चलते हैं तो भारतीय नाटक प्रेम और कोमलता के लिए हुए हैं..."[9]

तुलनात्मक साहित्य का आविर्भाव अनेकता में एकता के संधान की भावना से प्रेरित होकर अनेक साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन से हुआ है। हिंदी में मिश्रबंधुने देव और बिहारी की तुलना की, नाटकों के विवेचन से भारतेंदु ने तुलनात्मक चेतना का परिचय दिया तो आगे जाकर महावीर प्रसाद द्विवेदी, शचीरानी देवी और रामचंद्र शुक्ल ने भी इसे विकसित रूप दिया। अत: तुलनात्मक अध्ययन द्वारा अनेक समानतापरक तथ्यों एवं सत्यों की स्थापना कर ज्ञान-विज्ञान की नई दिशाओं का उद्घाटन, राष्ट्रीय एवं

[7] शुक्ल, हनुमानप्रसाद. (2015). ***तुलनात्मक साहित्य : सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य.*** नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 1.
[8] अधिकारी, इन्द्रविलास. (२०६६). ***तुलनात्मक साहित्य : संक्षिप्त परिचय.*** ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 1.
[9] https://www.uou.ac.in/sites/default/files/slm/MAHL-204.pdf.

भावात्मक ऐक्य का प्रतिपादन, विश्व मानव का गौरव एवं भारतीय-नेपाली संस्कृति का संस्थापन आदि संभव हो सकता है।

5.2 हिन्दी एवं नेपाली के चयनित उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय :-

स्त्री-चेतना के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए निम्नलिखित हिन्दी एवं नेपाली के चयनित उपन्यासों का सहारा लिया गया है। इन उपन्यासों के माध्यम से स्त्री के संघर्षों को चिन्हित करते हुए उनमें निहित सामाजिक चेतना, आर्थिक चेतना तथा स्त्री चेतना का विश्लेषण किया जा रहा है। उससे पूर्व हिन्दी एवं नेपाली के चयनित उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से दिया जा रहा है।

5.2.1 हिन्दी के चयनित उपन्यासों के नाम -

प्रस्तुत शोध हेतु हिन्दी के पाँच उपन्यासों का चयन किया गया है। जो इस प्रकार है – 'छिन्नमस्ता', 'शाल्मली', 'आज बाज़ार बंद है', 'कस्बाई सिमोन' और 'फिरोज़ी आँधियाँ'। चयनित उपन्यासों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से किया गया है –

- **छिन्नमस्ता -**

प्रभा खेतान द्वारा लिखा गया उपन्यास 'छिन्नमस्ता' (छ.सं.2016) में कोलकाता निवासी उच्च वर्गीय मारवाड़ी परिवार की कहानी का चित्रण हुआ है। प्रिया के माध्यम से लेखिका ने समाज में शोषित, पीड़ित तथा पग-पग पर अपमानित होने वाली स्त्रियों के लिए स्वतंत्रता का द्वार खोला है। प्रिया अनेक समस्याओं का सामना करते हुए अपना रास्ता स्वयं निर्माण करती है और उपन्यास की यही बातें नारी स्वतंत्रता के संदर्भ में सोचने को विवश करता है। उपन्यास में स्त्रियों को पुरुष प्रधान संस्कृति की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है बावजूद वे यूँ ही हार नहीं मानती, अंत तक संघर्ष करती है। प्रस्तुत उपन्यास की प्रमुख

नारी पात्र प्रिया है, इसके अतिरिक्त अम्मा, नरेन्द्र, फ़िलिप, जुड़ी, दाई माँ, छोटी माँ, सुमित्रा, सरला, विजय, अजय, सरोज, संजू, नीना आदि पात्रों के सहयोग से लेखिका ने प्रिया के रूप में एक आधुनिक, स्वाभिमानी तथा स्वालम्बी नारी के संघर्ष को चित्रित किया है।

- **शाल्मली -**

नासिरा शर्मा द्वारा लिखा गया उपन्यास 'शाल्मली' (न.सं.2018) आधुनिक समय में स्त्रियों की विभिन्न समस्यायों के साथ-साथ, समाज निर्माण में उनकी भूमिकाओं को दर्शाता है। स्त्रियों के जीवन के बदलते स्वरुप को लेकर बड़े ही सलीके से अपनी लेखनी के माध्यम से नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यास में उकेरा है। समाज के मध्यवर्गीय परिवार की कामकाजी स्त्री की विभिन्न चुनौतियों को उन्होंने अपने उपन्यास 'शाल्मली' में बड़े ही वास्तविकता के साथ प्रस्तुत किया है।

उपन्यास की नायिका शाल्मली है। उसके इर्दगिर्द ही समूची कहानी रची गई है। वह समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के दोहरे चरित्र का पर्दाफाश करती है। शाल्मली अपने जीवन में इसलिए लगातार संघर्ष करते हुए दिखती है कि वह स्वयं को केवल शरीर मानने सेइंकार करती है तथा इसी दिशा में अपनी चेतना की पहचान स्थापित करने के लिए निरंतर चिन्तन करती है। शाल्मली एक स्वाभिमानी स्त्री है। वह अपने अधिकार और स्वतंत्रता को भीख में नहीं लेना चाहती है।

- **कस्बाई सिमोन -**

'कस्बाई सिमोन' (2017) शरद सिंह द्वारा लिखा गया यह एक ऐसा उपन्यास है जिसमें आज की युवाएँ जीवन को अपने ढंग से जीने हेतु लिव्-इन-रिलेशनशिप (सह जीवन) का रास्ता अपनाते हैं और उनका मानना है कि इस राह पे हजारों काँटे भले हैं किन्तु स्वतंत्रता भी है। प्रस्तुत उपन्यासके पात्रों के जरिए यह

दृष्टिकोण परिलक्षित होता है कि विवाह परम्परा को बंधन के रूप में देखा जाता है तथा यह बंधन प्राय: स्त्री के ऊपर अधिक हावी होता देखा जाता है।

उपन्यास की नायिका सुगंधा ने बचपन से ही माँ-पिता को लड़ते-झगड़ते देखा। माँ-पिता के अस्वस्थ वैवाहिक सम्बन्ध का नकारात्मक प्रभाव सुगन्धा के व्यक्तित्व पर पड़ता है। वह पापा की परी और माँ की दुलारी बनना चाहती थी, लेकिन उसे माँ-पापा में से किसी एक का चुनाव करना पड़ता है। उसकी उम्र ही क्या थी जब उसने पिता का छात्राओं के साथ तो युवावस्था में माँ और सेलट अंकल के संबंधों के बारे में सुना।

- **फिरोज़ी आँधियाँ -**

हुस्न तबस्सुम निहाँ द्वारा रचित 'फिरोज़ी आँधियाँ' (2018) में पूँजीवादी मानसिकता से उत्पन्न होने वाले समस्याओं का चित्रण किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में नरैनापुर गाँव में रहने वाले लोगों के जीवन की संघर्ष कथा कही गयी है। आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से अत्यन्त पिछड़ा गाँव होने के कारण यहाँ की स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय मानी जाती है। स्त्री केवल शारीरिक और मानसिक दृष्टि से ही युद्ध के अनुपयुक्त नहीं रहीं, वरन् युद्ध उसके विकास में भी बाधक रहा है।

उपन्यास की नायिका मधुश्री सरकारी स्कूल में अध्यापिका हैं जो एक संवेदनशील तथा गाँववालों की साथी की भूमिका में रहती हैं। मधुश्री मानवाधिकार संगठन के साथ मिलकर नरैनापुर गाँव और आस-पास के अन्य गाँवों में राहत सुविधा और रोजगार के अवसर प्रदान करने, कुटीर उद्योग खोलने और उनके प्रशिक्षण कार्य के लिए गाँव में अनेक कार्यक्रम करवाने में मदद करती हैं। ललित एक भावुक तथा कर्मठ युवा है, जो पढ़ना चाहता है। मुख्य कथा इनके आस-पास की है। परिस्थितिवश ललित एक ऐसे रास्ता को चुनता है जिसका अंत मृत्यु ही होती है।

- **आज बाजार बंद है -**

'आज बाजार बंद है' (2004) उपन्यास मोहनदास नैमिशराय द्वारा लिखा गया एक ऐसा उपन्यास है जिसमें वेश्याओं के अंतर्मन की छटपटाहट को, कोठे की अंतहीन दर्द को, कोठरी में उनके द्वारा बिताए जीवन को, उनकी समस्याओं और पीड़ाओं को अति संवेदनात्मक ढंग से उजागर करने का प्रयास हुआ है। उपन्यास में दिखाया गया है कि अधिकतर वेश्याएँ, दलित एवं मुस्लिम समाज से हैं जिन्हें धोखे से ऐसा अपमानित जीवन जीने के लिए बाध्य किया जाता है। ये स्त्रियाँ भी सामान्य स्त्रियों की भाँति जीवन जीने हेतु इच्छुक होती हैं। अंततः इनकी चेतना जागृत होती है। लेकिन इस प्रक्रिया में समाज के विभिन्न लोग – पुलिसकर्मियों, दलालों, धर्म के ठेकेदारों आदि द्वारा बार-बार इन स्त्रियों का शोषण तथा अपमान होता है। इस उपन्यास में नारी उत्पीड़न के कई पहलुओं - दलित देवदासी प्रथा से लेकर वेश्याओं के यातनात्मक जीवन की मार्मिक कहानी अभिव्यक्त हुई है। इस उपन्यास की प्रमुख नायिका पार्वती के अतिरिक्त शबनम, हसीना, मुमताज, बीना, सलमा, पायल, चम्पा, चमेली, गुलाब, रुखसाना, शम्मी, हमीदा, जीनत, जरीना, हाजरा, कुसुम, फूल, सुमन, गुमरन आदि अनेक वेश्याएँ हैं उपन्यास में पार्वती नाम की प्रमुख नारी पात्र की विवशता से लेकर जागृत चेतना का चित्रण अत्यन्त प्रभाव ढंग से हो पाया है।

5.2.2 नेपाली के चयनित उपन्यासों के नाम -

प्रस्तुत शोध हेतु नेपाली के चयनित उपन्यासों- 'माइतघर', 'अर्की आइमाई', 'कारागार', 'युगसन्धि', 'आँधी' द्वारा स्त्री- चेतना को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। उपर्युक्त उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

- **माइतघर -**

'माइतघर' (वि. सं. 2006) लैनसिंह बांग्देल द्वारा रचित सामाजिक उपन्यास है जिसकी नायिका सानी है। सानी के बार-बार मना करने के बावजूद उसकी शादी किसी अपरिचित व्यक्ति के साथ करा दी जाती है। सानी अत्यन्त भारी मन तथा करुण-वेदना के साथ माइती घर (मायका) से विदा होती है। प्रस्तुत उपन्यास में नायिका सानी को मायके से बेदखल कर दिए जाने की कहानी वर्णित है। उसे यह अधिकार भी नहीं दिया जाता कि वह मायके को अपना कह सके। वह खुद को ठगा हुआ महसूस करती है, उसके हृदय में हजारों शूल एक साथ जैसे चुभते रहते हैं। इसी दर्द को, व्यथा को, धोखे को प्रस्तुत 'माइतघर' उपन्यास में सानी के माध्यम से चित्रण कर समाज के वास्तविक एवं असंवेदनशील परम्परा को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

- **आँधी -**

लोकनाथ चापागाईं द्वारा लिखा गया उपन्यास 'आँधी' (दू. सं. 2018) असमी-नेपाली जनजीवन को सूक्ष्म रुप से अन्वेषण कर सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक-सांस्कृतिक, शैक्षिक पक्षों को उजागर करता है। उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र नम्रता के संघर्षमय जीवन को दर्शाया गया है। औपन्यासिक क्षेत्र के रूप में गुवाहटी, शिलाङ एवं असम तक सीमित 'आँधी' एक घटनाप्रधान उपन्यास है। उपन्यास में शिक्षा के महत्व को बताते हुए मुख्य नारी पात्र नम्रता के शिक्षा प्राप्त करने के संघर्ष कथा का चित्रण किया गया है।

- **कारागार -**

वानिरा गिरी द्वारा रचित 'कारागार' (वि. सं. 2066) उपन्यास में एक ऐसी स्त्री के संघर्ष गाथा का चित्रण हुआ है जो माता-पिता के मृत्यु के पश्चात् अपने ही भाइयों द्वारा धन के लोभ में छली जाती है, जिसके कारण वह आजीवन कुँवारी रहने हेतु विवश होती है। अकेले जीवन व्यतीत करने के कारण मानसिक पीड़ा को झेलती है। प्रस्तुत उपन्यास में स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को सामाजिक मान्यता न मिलने के कारण उन्हें परेशानियों से जूझना पड़ता है। प्रस्तुत उपन्यास में लिव-इन-रिलेशनशिप जैसी स्थिति देखी जा सकती है, साथ ही अकेलेपन की त्रासदी, पुरुषवादी विचारधारा एवं परम्परावादी दृष्टि को भी लेखिका ने विश्लेषण किया है।

- **अर्की आइमाई -**

नीलम कार्की 'निहारिका' द्वारा रचित उपन्यास 'अर्की आइमाई' (वि. सं. 2070) में अनमेल विवाह के समस्याओं पर पाठकों का ध्यान खींचा गया है। अमेरिका का स्थायीवासी सुवर्ण अमेरिका में केवल यौनदासी और अपने प्रथम पत्नी के बच्चों की देखभाल करने के उद्देश्य से तारा से शादी का ढोंग रचाता है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने वहाँ के नेपाली-अमेरिकी संस्कृतिकरण द्वंद्व और उनके जीवन का भी चित्रण किया है। तारा के जरिए लेखिका ने नेपाल में होने वाले अवैधानिक विवाह तथा उससे होने वाले अनैतिक कार्यों की पोल खोलने की भी कोशिश की है।

- **युगसन्धि -**

असम की लेखिका नयादेवी द्वारा रचित उपन्यास 'युगसन्धि' (2002) स्त्री-समस्या पर आधारित है। युगसन्धि की नायिका लक्ष्मी अपने अस्तित्व को पहचानते हुए समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए लगातार संघर्ष करती है। लक्ष्मी पढ़ना चाहती है। समाज के लिए कुछ करना चाहती है, किन्तु उसका परिवार खासकर दादी उसे पढ़ाना नहीं चाहती। उपन्यास में कई पात्र हैं – धर्मराज, धनमाया, मनमाया,

शंकर, होमनाथ, लीना, भुवन आदि। उपन्यास में उद्धृत सभी पुरुष पात्र पुरुषप्रधान समाज के रूप में खड़े हैं। धर्मराज और शंकर शिक्षा के मूल्य को जानते हुए भी नारी के हक़ में कुछ नहीं बोल पाते हैं। ससुर सोमनाथ लक्ष्मी के प्रति सहानुभूति और संवेदनात्मक रवैया अपनाते जरूर हैं। इस प्रकार उपन्यास में नारी शिक्षा और नारी स्वाधीनता का चित्रण किया गया है। लक्ष्मी के दो भाई है, दोनों स्कूल जाते हैं लक्ष्मी नहीं जाती, लेकिन वह अपने भाइयों की पुस्तकों से रोज पढ़ती है, अभ्यास करती है। उसके पढ़ने की चाह को देखते हुए एक दिन लक्ष्मी का स्कूल में दाखिला हो जाता है। लक्ष्मी यह अच्छे से जानती है कि शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है और यह जान लेना ही स्त्री-चेतना का जागृत होना माना जा सकता है।

5.3 हिन्दी और नेपाली उपन्यासों में निहित स्त्री-चेतना का तुलनात्मक अध्ययन :-

प्रस्तुत शोध के अंतर्गत हिन्दी एवं नेपाली उपन्यासों में चित्रित नायिकाएँ संघर्षशील हैं बावजूद वे अपने आत्मस्वाभिमान को डगमगाने नहीं देतीं। चाहे 'छिन्नमस्ता' की प्रिया हो या 'आँधी' की नम्रता, 'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा हो या फिर 'आज बाज़ार बंद है' की पार्वती, 'फिरोज़ी आँधियाँ' की मधुश्री से लेकर, अर्की आइमाई की तारा, कारागार की नायिका, शाल्मली और लक्ष्मी तक का व्यक्तित्व एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी उनके दर्द, पीड़ाएँ, बेबसी एवं मुक्ति की चेतना एक समान हैं। उपन्यासों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इन उपन्यासों में चित्रित स्त्रियों के समक्ष कई चुनौतियाँ आयी, जिसका सामना वे पूरे हिम्मत के साथ करती हैं। उदाहरणत: शबनम बाई साहस का परिचय देते हुए पूनम नाम की एक लड़की को वेश्यावृत्ति जैसे दलदल से रिहा कराने में मदद करती है। "मां न सही पर कुटनी भी नहीं बनना चाहती थी वह। मुक्ति के गीत उसके भीतर जो भरने लगे थे।"[10]

उपर्युक्त उपन्यासों में चित्रित स्त्री पात्रों के साथ कई स्तरों से छल होते देखा जा सकता है। इस सिलसिले में लोकनाथ चापागाई कृत 'आँधी' की नम्रता को बाद में पता चलता है कि उसे माँ-बाप ने

[10] नैमिसराय, मोहनदास (2004). ***आज बाजार बन्द है***. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 68.

जन्म होते ही त्याग दिया था। "खगेश्वर भन्ने एकजना पण्डितले पनि छोरी त मुल्याइ छ, आमा बाबुले बार बर्खसम्म मुख हेर्नु हुदैन।"[11] पारिवारिक परम्पराओं एवं अंधविश्वासों के कारण एक बेटी को अपने ही माता-पिता से अलग होना पड़ा।

'छिन्नमस्ता' में प्रिया जैसा व्यक्तित्व गढ़कर लेखिका तमाम स्त्रियों को हौंसला देती हैं कि कुछ भी नामुमकिन नहीं है, बल्कि अपने पैरों पर खड़ी स्त्री के लिए अपनी पारम्परिक सीमाओं को तोड़ना आसान होता है। वे मानव समाज में स्त्री की महत्ता, योगदान को समझते हुए कहती हैं कि स्त्री चाहे तो समाज को बहुत कुछ दे सकती है। प्रिया कहती है – "पुरुष भूमि है, आकाश है, हवा है, अग्नि है, जल है, लेकिन स्त्री बीज बनकर धरती के नीचे दबना जानती है, वक्त आने पर अंकुरित होती है और फिर शाखा-प्रशाखाओं में फैलती हुई पूरा जंगल हो जाती है।..[12]

5.3.1 सामाजिक चेतना -

समाज में घटित होने वाली प्रत्येक पहलुओं की समझ रखना, सामाजिक दृष्टि से चिंतन करना तथा उसका निदान करना आदि सामाजिक चेतना के अंतर्गत आता है। 'छिन्नमस्ता' में चित्रित मारवाड़ी परिवार आर्थिक दृष्टि से संपन्न हैं उनके कई व्यवसाय हैं। प्रिया भी ऐसे ही सुप्रसिद्ध और समृद्धिशाली उद्योगपति की बेटी और पत्नी है बावजूद प्रिया को बारम्बार ज़लील होना पड़ता है। नरेंद्र, पुरुषवादी मानसिकता से ग्रसित होने के कारण प्रिया को अपना गुलाम समझता है, वह कहता है -"दरअसल तुम्हें इतनी खुली छूट देने की गलती मेरी ही थी। मुझे पहले ही चिड़िया के पंख काट डालने चाहिए थे। पर मैं तुम्हारी बातों में आ गया। तुम्हारे इस भोले चेहरे के पीछे एक मक्कार औरत का चेहरा है।"[13]

---

[11] चांपागाईं, लोकनाथ उपाध्याय. (दू. सं. 2018). ***आँधी***. ग्राफिक्स प्रिंटर्स : सिलगढ़ी. पृष्ठ सं. 119.

[12] खेतान, प्रभा. (2016). ***छिन्नमस्ता***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 181.

[13] वही. पृष्ठ सं.11.

प्रस्तुत उपन्यास के प्रारंभ में प्रिया अपने चमड़े के व्यवसाय के लिए विदेश जाती है, बीच रास्ते में ही बीमार होती है। वह घरवालों को सूचित नहीं करतीं क्योंकि नरेन्द्र तथा घरवालों ने प्रिया के आत्मसम्मान को बार-बार चोट पहुँचाया है। नरेंद्र पति होने के अधिकार से तथा स्वामित्व की भूमिका में प्रिया के आत्मसम्मान को बार-बार ठेस पहुँचाता आया है। वह प्रिया के काम के प्रति अनादर की भावना रखता है, उसके काम को गैर जरूरी मानता है, प्रिया को एक इंसान से पहले पत्नी, माँ और बहू के रूप में देखता है। वह कहता है - "काम करो पर यह मत भूलो कि तुम विवाहिता हो, एक बच्चे की माँ हो, अग्रवाल हाउस की बहू हो।"[14]

'कारागार' की नायिका अपने भाइयों और भाभियों के दोगले चरित्र से दुखी है। वह जान चुकी है कि वे सिर्फ धन के लोभ में उसे बर्दाश्त कर रहे हैं। समाज के मौकापरस्त चरित्रों को समाज में रहकर ही समझा जा सकता है। वह यह समझ चुकी है एवं अत्यन्त व्यथित होकर कहती है कि "हरेक कुराको सीमा हुन्छ। आकाश र सागरको सीमा हुन्छ, नदी र नालाको पनि सीमा हुन्छ। ठूलो अथवा सानो जे कुरा होस् सबैको आफ्नो आफ्नै सीमा हुन्छ। सीमा तोडिएको दिन आँधी आउँछ, बाढी आउँछ, असह्य हुन्छ। हो, घरमा त्यस्तै बाढी आयो, आँधी आयो, महामारी आयो जससित त्रस्त भएर मैले निर्णय गरेँ.... म अब यहाँ बस्तिनं।"[15] अर्थात् वह अपने भाइयों के असल चरित्र को भांप गई है। भाइयों द्वारा बिछाए गए जाल से निकलते-निकलते उसे चालीस वर्ष लग जाता है। इसलिए वह कहती है कि ऐसे छल-कपट से भरे पारिवारिक माहौल में रहने से अच्छा अकेले रहने में ही भलाई है। "अब बनावटी वातावरणमा बस्नुपरेको छैन। ढोंगी, बनावटी वातावरणमा बस्नुभन्दा एक्लै बस्नु कता हो कता सुखदायक छ। यतिका वर्ष भए -

[14] खेतान, प्रभा. (2016). ***छिन्नमस्ता***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं.10.
[15] गिरी, वानीरा. (२०६६). ***कारागार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 90.

मेरा रुपियाँपैसा, सुनचाँदी र जग्गाजमिन बाट केकस्तो आयस्ता भइरहेछ त्यसको खोजीनीति र हरहिसाब मागेकी छैन - यतिमै उनीहरु परम सन्तुष्ट छन्, मेरो जयजयकार गर्न थाक्तैनन्।"[16]

जब हम 'फिरोज़ी आँधियाँ' में चित्रित स्त्रियों के सामाजिक स्थिति को देखते हैं तो पाते हैं कि वहाँ पर स्त्रियाँ अपने प्रतिदिन के मूलभूत संशाधनों से बहुत दूर हैं। उन्हें तो दो वक्त की रोटी नसीब हो यही काफ़ी है, लेकिन उपन्यास की नायिका मधुश्री, उनके ऐसी जिंदगी से संतुष्ट नहीं होतीं। वह गाँव के स्त्रियों की मदद करना चाहती है, उन्हें शिक्षित एवं स्वालम्बन बनाना चाहती है। पितृसत्तात्मक सोच से उपजने वाले षड्यंत्र से परिचित होकर मधुश्री गाँव की औरतों को सतर्क करती है। एक तरफ धनाढ्य परिवार में जन्मी प्रिया शहर निवासी है। उसके अपने संघर्ष है, अपनी चुनौतियाँ हैं। वैसे ही गाँव नरैनापुर में कार्यरत शिक्षिका मधुश्री की भी कुछ सपने होते हैं, चुनौतियाँ होती हैं एवं लक्ष्य होते हैं जिसे पूर्ण करने के लिए वह अंत तक संघर्ष करती हैं।दोनों का संघर्ष अलग-अलग होने के बावजूद लक्ष्य एक-सा प्रतीत होता है।

सिमोन द बउआर अपनी पुस्तक में लिखती हैं कि "उप-पत्नी का सबसे बड़ा दुर्भाग्य उसकी आत्म-निर्भरता व स्वतंत्रता का हजारों तरह की परनिर्भरताओं में बदल जाना है।"[17] 'अर्की आइमाई' उपन्यास की प्रमुख पात्र तारा भी इसी दुर्भाग्य की शिकार होती है। वह उप-पत्नी के रूप में अमेरिका लायी जाती है एवं यौनदासी, घर की स्थायी नौकरानी बनकर रह जाती है।

पुरुषवादी मानसिकता से ग्रसित समाज में स्त्रियाँ कहीं भी स्वतंत्र नहीं है, किसी भी रूप में नहीं। शहर हो या गाँव स्त्रियों की स्थिति एक जैसी ही है, लेकिन गाँव की स्त्रियों को लगता है कि शहर में रहने वाली स्त्रियों को समाज में अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है। शाल्मली की अवस्था को देख उसकी सास कहती है "हम तो, बहू री! दासी थे। तुझे देखा, तो मन में सोचा कि चल कहीं तो औरत स्वतंत्र है। भयभीत भी हुई थी कि तू निभाएगी भी या नहीं? शहर की लड़की...बहुत बातें सुन रखीं थीं। इन वर्षों में तेरे साथ रह कर

[16] गिरी, वानीरा. (२०६६). ***कारागार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 91.
[17] खेतान, डॉ. प्रभा. (2004). ***स्त्री उपेक्षिता***. नई दिल्ली : हिंदी पॉकेट बुक्स पृष्ठ सं. 286.

जान पाई, बहू, री! औरत जन्मजली कहीं स्वतंत्र नहीं। कहीं खूटें से तंग बंधी, तो कहीं उसके गले में बंधी रस्सी थोड़ी लम्बी या अधिक लम्बी।"[18] लेखिका ने यहाँ पर महिलाओं की स्थति को लेकर गहरी चिंतन अभिव्यक्त की है।

मानव जाति की यह प्रवृत्ति रही है कि जब कोई व्यक्ति किसी से आगे निकल जाए तो उसके चित्त में द्वेष की भावना पैदा होने लगती है। पितृसत्तात्मक समाज की भी यही समस्या रही है वह अपने सामने स्त्री के वर्चस्व को सहन नहीं कर पाता है। यही वजह है कि नरेश, शाल्मली के ऊँचे दर्जे की नौकरी की वजह से खुद के प्रति हीनता का भाव रखने लगता है एवं शाल्मली के व्यक्तित्व से वह स्वयं को नीचा समझने लगता है। उसमें असुरक्षा की भावना जागृत होती है। इसलिए "स्त्री-मुक्ति की मुहिम को पुरुष समर्थन की दरकार होती है, चूंकि समानता के अधिकार को समाज स्वीकृत करेगा, तभी उस पर कार्यान्यवन संभव होगा और अभी यह समाज पुरुषों द्वारा ही संचालित है"[19]

स्त्री जीवन की पूर्णता मातृत्व में माना जाता है। मातृत्व की आकांक्षा स्त्री को पुरुष से जोड़ती है। 'अर्की आइमाई' की तारा भी मातृत्व का सुख भोगना चाहती है। ठीक उसी प्रकार हिन्दी उपन्यास 'ए लड़की' की माँ अपनी बेटी को समझाते हुए कहती है कि अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखते हुए परिवार चलाने और माँ बनने में ही स्त्री की सार्थकता है, लेकिन तारा को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। "पुरुष सब कुछ पाकर भी संतुष्ट नहीं रह पाता है। अपनी खोज की प्रवृत्ति को किसी एक व्यक्ति तक सीमित नहीं रखकर टुकड़ों में बंटता रहता है। हर नए आकर्षण को वह जीवन की उपलब्धि का नाम देता है। इसके विपरीत औरत अपना केंद्र बिंदु किसी एक को मान बैठती है चाहे सामाजिक भय से, पारिवारिक अंकुश से या एक से बंधे रहने के सूख या मजबूरी से।"[20] 'कारागार' की नायिका भी मातृत्व के सुख से वंचित

---

[18] शर्मा, नासिरा. (2018). ***शाल्मली***. नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन. पृष्ठ सं. 94.

[19] मालती, डॉ. के. एम. (2010). ***स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य.*** नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 110.

[20] शर्मा, नासिरा. (2018). ***शाल्मली.*** नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन. पृष्ठ सं. 162.

रहती है वह अपने साथी से कहती है – "साँच्चै भन्या – म बहुलाएकी छैन। म तिम्रो पेट बोक्छु, मलाई सन्तान चाहिन्छ – म एकान्तिकताको यो नीरव कारागारलाई तोड्छु।"[21] (अर्थात् मैं होश में हूँ और सच कहती हूँ कि मैं गर्भ धारण करना चाहती हूँ। मैं इस एकान्तमय तथा नीरस जिंदगी के कारागार से मुक्त होना चाहती हूँ।) इस प्रकार उपरोक्त उपन्यासों में मातृत्व-प्रश्न को गहरी संवेदना के साथ अभिव्यक्त किया गया है। स्त्रियों की इन्हीं दशा के कारण रमणिका गुप्ता मानती हैं कि "स्त्री-विमर्श, स्त्रियों को विवाह, संतान उत्पत्ति, सेक्स या पारिवारिक संबंधों के मामले में खुद अपना निर्णय दृढ़ता से लेने हेतु प्रेरित करता है।"[22]

'छिन्नमस्ता' के नरेन्द्र की तरह नरेश भी शाल्मली को अपना गुलाम समझता है। 'शाल्मली' उपन्यास का पुरुष पात्र नरेश की नज़रों में औरत सिर्फ़ घर, गृहस्थी और बच्चों को पालने वाली है। संभवत: नरेश प्लेटो के विचार 'स्त्रियाँ तो केवल बच्चे पैदा करने के लिए रखी जाती है' से सहमत होगा। वह औरतों की इज्ज़त नहीं करता बल्कि अपमान करता है - "तुम औरतें अपने को जाने क्या समझती हो? बाहर नहीं निकलोगी, काम नहीं करोगी, तो संसार के सारे काम ठप्प हो जायेगें।"[23] उपन्यास में भी नरेश शाल्मली को बार-बार एहसास कराता है कि वही घर का सर्वेसर्वा है, उसकी मर्जी के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। "मैंने तुम्हें नौकरी करने की छूट दी, इसका अर्थ यह नहीं कि तुम अपने का पूर्ण स्वतंत्र समझने लगो। ...अब तुम मेरी नकल मत करो! मैं मर्द हूं, कहीं भी आ-जा सकता हूं। तुम औरत हो और अपनी मर्यादा को पहचानो।"[24] पितृसत्तात्मक समाज का दोगलापन इसी से समझा जा सकता है कि पुरुष अपने स्वार्थ एवं सहूलियत का ध्यान रखते हुए स्त्री को जो थोड़ी बहुत छूट देता है उसे ही काफ़ी समझता है।

---

[21] गिरी, वानीरा. (२०६६). ***कारागार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 62.
[22] मालती, डॉ. के. एम. (2010). ***स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य.*** नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन.पृष्ठ सं.165.
[23] शर्मा, नासिरा. (2018). ***शाल्मली***. नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन. नासिरा शर्मा, पृष्ठ सं. 47.
[24] वही. पृष्ठ सं. 74.

'अर्की आइमाई' की तारा की शादी सामान्य तरीके से न होकर समझौता के तहत लिखा-पढ़ी कर होता है। माता-पिता तथा भैया-भाभी तारा को अपने भाग्य पर खुश होने को कहते हैं - "नानी, छोरी मान्छेको भाग्यले एकफेर ढोका ढकढक्याउन आउँछ। भाग्यलाई ढोका नै नखोली पिँढीबाट नै फिर्ता गर्नु हुन्न। सराप लाग्छ बाबै।"[25] उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि नेपाली समाज आज भी अन्धविश्वास के बेड़ियों में जकड़ा हुआ है। 'आँधी' उपन्यास की नायिका नम्रता के जन्म होते ही अन्धविश्वास के चलते उसकी बलि चढ़ा दी जाती है। वहीं 'कारागार' की नायिका और उसका पुरुष साथी अंधविश्वास को सिरे से नकारते हैं। स्त्री यहाँ तक कहती है कि "ज्योतिषिहरूसित मलाई असाध्यै घृणा छ।"[26] (मुझे ज्योतिषियों से अत्यन्त घृणा होती है) अन्धविश्वास तथा ज्योतिषियों द्वारा ठगने की प्रवृत्ति के कारण नायिका घृणा जैसे शब्दों का प्रयोग करती हैं।

'आज बाज़ार बंद है' में लेखक ने वेश्याओं की दशा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण करते हुए समाज में प्रचलित कटु सत्य से परिचय करवाया है। उपन्यास की प्रमुख नायिका पार्वती की बेबशी का परिचय देते हुए शबनम कहती है - "बिना शिव के पार्वती, शिव ने पहले इसे मंदिर में बैठा कर देवदासी बनाया। फिर मंदिर से चकले में भेज दिया। पहले मंदिर के पुजारी ने इसके शरीर को भोगा फिर गाँव के पटेल ने बाजी मारी।"[27] प्रिया के दर्द का स्वरुप भिन्न होते हुए पार्वती के दुःख से कम न था। कदम-कदम पर परिवारवालों की उलहाना, शिकायतें, उपेक्षा से जूझती हुई प्रिया अंदर से क्षीण होती जा रही थी। अपराधबोध, यंत्रणा, आत्मग्लानि को सहते हुए प्रिया अपने ऊपर हुए शोषण के बारे में दाईमा के अलावा किसी और को नहीं बता पातीं। प्रिया के भीतर एक असुरक्षित लड़की रहती है जो अपने बाबूजी को ही रक्षक के रूप में देखती है। बड़े से मकान में अपने ही बड़े भाई विजय से असुरक्षित प्रिया हर रोज तिल-

[25] निहारिका, नीलम कार्की. (वि. सं. २०७०). ***अर्की आईमाई***. भक्तपुर : शब्दहार क्रियशंस. पृष्ठ सं. 12.
[26] गिरी, वानीरा. (२०६६). ***कारागार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 29.
[27] नैमिसराय, मोहनदास. (2004). ***आज बाजार बन्द है***. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 33.

तिल मरती है। 'आँधी' की नायिका नम्रता को भी घर में अकेला पाकर सदानन्द उसका शारीरिक शोषण करने का प्रयास करता है। नम्रता के शब्दों में "उनले आफ्नो दाहिने पाखुरो पछिल्तिरबाट मेरो दाहिने काँधमा ल्याएर राखे।"[28] (उसने अपने दाएँ हाथ को मेरे दाहिने कन्धे पर रखा) इसी प्रकार उपन्यास का और एक पात्र नाजीर सिंह की कुदृष्टि नम्रता पर पड़ती है। वह भी नम्रता का शारीरिक शोषण करना चाहता है - "ऊ झन छेवैमा आएर खोइ हेरूँ भनेर सुइटर हेर्ने निहुँले मेरो छात्तीमा पो हात पुर्यायो।"[29] (स्वेटर देखने के बहाने मेरे बहुत नजदीक आकर वो मेरे छाती पर हाथ रखता है।) भरे-पूरे घर में 'अर्की आइमाई' की तारा भी सुरक्षित महसूस नहीं करती - "खाना निकाल्ने निहुँमा हात समाउने, हजुरको गालामा केही लागेको छ भन्दै पुछ्ने निहुँमा गाला सुम्सुम्याउन खोज्नु।"[30] (खाना निकालने के बहाने हाथ पकड़ना, आपके गाल पर कुछ लगा है कहकर छूने की कोशिश करना।) 'छिन्नमस्ता' की प्रिया भी शारीरिक शोषण की शिकार होती है, अपने ही भाई द्वारा बलात्कृत होती है। उपरोक्त उपन्यासों में स्त्रियाँ पर अपनों (परिवार के सदस्य) द्वारा होने वाले शारीरिक शोषण को उजागर कर घर में असुरक्षित स्त्रियों की आवाज़ को अभिव्यक्ति मिली है तथा पारिवारिक परिवेश में असुरक्षित स्त्री-मन का विश्लेषण बड़े ही गहरी संवेदना के साथ हुआ है।

"परिवार नामक संस्था को स्त्री के शोषण व उत्पीड़न की सबसे बड़ी कार्यशाला या भट्ठी कहा जा सकता है। विवाह इस कार्यशाला का हथियार है, जिसे स्त्री को गुलामी स्वीकार करने के लिए अनिवार्य बना दिया गया है।"[31] प्रिया अपने वैवाहिक सम्बन्ध से इस कदर परेशान हो जाती है कि व्यापार को उससे बेहतर विकल्प मानती है - "मृत सम्बन्धों को ढोने में जितनी ताकत लगती है, उससे एक-चौथाई ताकत

---

[28] चांपागाईं लोकनाथ. (दू. सं. 2018). ***आँधी***. ग्राफिक्स प्रिंटर्स : सिलगढ़ी. पृष्ठ सं. 15.

[29] वही. पृष्ठ सं. 41.

[30] निहारिका, नीलम कार्की. (वि. सं. २०७०). ***अर्की आईमाई***. भक्तपुर : शब्दहार क्रियशंस. पृष्ठ सं.77.

[31] गुप्ता, रमणिका..(2014). ***स्त्री-मुक्ति संघर्ष और इतिहास*** नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 174.

में व्यापार किया जा सकता है। लिखना-पढ़ना या फिर कोई नया काम किया जा सकता है।"[32] यह कहने का उपन्यासकार का तात्पर्य यह है कि यदि कोई भी स्त्री दमघोटू जीवन जी रही है तो उसके लिए बाहर निकल कर अपने स्वतंत्र अस्तित्व हेतु कार्य करना अधिक आसान हो जाता है बजाय उस सम्बन्ध को ढोते रहना। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में एक ओर खोखलापन है तो दूसरी ओर स्वार्थ। अत: उपरोक्त उपन्यासों के स्त्री पात्रों ने सम्बन्धों के बोझ तले रहना अस्वीकार कर अपने स्वतंत्र अस्तित्व को चुना।

'फिरोज़ी आँधियाँ' में सुरक्षाकर्मियों द्वारा ललित की बहन मालती, सुभान की बीवी, लखैया की बेवा भाभी, रामसमुझ की साली और रमेस की बीवी के साथ-साथ गाँव के अन्य महिलाओं का भी बलात्कार किया जाता है, लेकिन ललित बौखलाहट में अपनी बहन मालती को ही दोष देता है। ऐसे पितृसत्तात्मक सोच पर लेखिका मधुश्री के माध्यम से ललित को कहती है "आखिर पुरुष ही हो न... ! स्त्री के मर्म तक कहाँ पहुँच सकते हो। यह कौन सा इन्साफ है? एक पुरुष ने उसे इस स्थिति तक पहुँचाया दूसरा अब उसे मृत्युदंड देना चाहता है। उसका कसूर क्या है? कि वह एक स्त्री है?"[33] यह प्रश्न साधारण नहीं है। मधुश्री की चेतना जागृत है इसलिए वह न अन्याय सहती है और न अन्याय होने देती है एवं मधुश्री के ये प्रश्न निश्चय ही आने वाले पीढ़ी को नयी राह प्रदान करेगा।

नयाँदेवी कृत 'युगसन्धि' उपन्यास की नायिका लक्ष्मी स्वतंत्रताप्रिय नारी है। अपने दादी के भेदभाव भरे रोक-टोक से क्षुब्ध होकर वह प्रश्न करती है कि क्या सारे कायदे-कानून सिर्फ मेरे लिए है? भाइयों के आने-जाने में कोई रोक-टोक नहीं लेकिन मेरे लिए ही मनाही क्यों? नियम सभी के लिए एक समान होना चाहिए। "उनिहरु चैं राति आउँदा पनि केही हुँदैन? साँझ मेरा लागि मात्र पर्छ? राम्रो होस् या नराम्रो होस् नियम सबैका लागि एउटै हुनुपर्छ।"[34]

---

[32] खेतान, प्रभा. (2016). ***छिन्नमस्ता***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 179.

[33] निहाँ, हुस्न तबस्सुम. (2018). ***फिरोजी आँधियाँ***. दिल्ली : मनीष पब्लिकेशन. पृष्ठ सं. 82.

[34] देवी, श्रीमती नयाँ. (2002). ***युगसन्धि***. तेजपुर : श्री जयनारायण लुइटेल. पृष्ठ सं. 06.

'अर्की आइमाई' की एक स्त्री पात्र को किसी प्रकार के मर्यादा या बंधन में रहना स्वीकार्य नहीं है। वह स्वच्छंदता में जीना चाहती है बिना किसी के हस्तक्षेप के। जैसे 'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा जीना चाहती है। सुगंधा भी अपनी जिंदगी अपने शर्तों पर जीती है। वह किसी भी पुरुष के समक्ष अपने आत्मसम्मान का समर्पण नहीं करतीं, लेकिन सुगंधा को समाज में रहने के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में कड़वे सच से भी रूबरू होना पड़ता है। रितिक की माँ उसे कठघरे में खड़ी कर देती है। इसलिए सीकरवार सुगंधा से कहता है कि "तुम, नीना गुप्ता, सुष्मिता सेन या करीना कपूर नहीं हो। तुम एक कस्बे की और मध्यवर्ग की लड़की हो। यह सब पैसे वालों और महानगरों के जीने के तरीके हैं, तुम जैसी लड़कियां दुःख ही पाती हैं, चैन-सुकून, अधिकार और सम्मान नहीं।"[35] सिकरवार के इन वाक्यों में गहरी दृष्टि और कटु सच्चाई थी, जिससे सुगंधा भी कहीं न कहीं सहमत होती दिखती हैं। 'छिन्नमस्ता' की अम्मा स्वयं को देवी कहलवाना पसंद करती है। देवी-दानवी, सती-व्यभिचारिणी जैसी छवि गढ़ने वाले पुरुषवादी समाज के मुखोटे को उजागर करने का प्रयास प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है जिसका विरोध लेखिका प्रिया के माध्यम से इस प्रकार करती है – "अम्मा! अम्मा प्लीज आप देवी होना छोड़ दीजिए, एक साधारण औरत की तरह जीवन में थोड़ा तो सुख भोगिये।"[36]

स्त्री जीवन की पूर्णता मातृत्व में माना जाता है। मातृत्व की आकांक्षा स्त्री को पुरुष से जोड़ती है। 'अर्की आइमाई' की तारा की तरह सुगंधा के भीतर भी बच्चे के प्रति ममत्व पैदा होने लगता है। फिर किसी दिन सुगंधा परिवार बढ़ाने के संबंध में रितिक से बातकरती है, लेकिन सन्तान का अधिकार तो दूर उसकी बात को अनसुना कर दिया जाता है। लिव-इन-रिलेशनशिप में रहने का प्रधान लक्ष्य घर-गृहस्थी, सन्तान से छूटकारा पाना था, लेकिन सुगंधा अपने भीतर ममत्व को जगने से नहीं रोक पातीं। उधर तारा भी सुवर्ण से ममता के खातिर पूछने पर उसे कार की चाबी थमा देता है जिससे अत्यन्त दुखी होकर वह

[35] सिंह, शरद. (2017). ***कस्बाई सिमोन***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 98.
[36] खेतान, प्रभा. (2016). ***छिन्नमस्ता***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 58.

कहती है – "सन्तानको बदलामा मैले एक सेकेण्ड ह्यांड गाडीको चाबी पाएँ।"[37] (अर्थात् सन्तान के बदले मुझे एक सेकेण्ड हैण्ड कार की चाबी मिली।) लिव-इन-रिलेशनशिप जीवन शैली जिसे हम पश्चिम से आया मानते हैं उस पर भी साहित्य लिखा जा रहा है। रमणिका गुप्ता कहती हैं कि "लिव-इन-रिलेशन भारत में सदियों से मौजूद है। तीन जातियों- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को छोड़कर बाकी सभी जातियों में भारत में लिव इन रिलेशनशिप की प्रथा रखनी के रूप में मौजूद हैं - कहीं स्वेच्छा से, कहीं शोषण से।"[38]

'कारागार' में नायिका पुरुषवादी व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए कहती है कि मैं तो उन लोगों से कई गुणा बेहतर हूँ जो दो नाव में सवार होते हैं। घर में पत्नियों को मीठे-मीठे शब्दों के जाल में फँसाकर उनसे विश्वासघात करने में जरा भी नहीं हिचकते। "घरकी दुलहीलाई चिप्ला कुराहरुले ठगी बाहिरका स्वास्नीमानिसहरूसित मनमानी गरीहिँडेर पछिबाट दुलहीको गनाउने पेटिकोटमा लुत्रुक्क पसी छुलुक्क हुने लोग्नेमानिसहरूभन्दा धेरै माथि छु म।"[39]

'छिन्नमस्ता' का नरेंद्र एक स्वार्थी, मौकापरस्त, दोगला, बद्तमीज और फूहड़ क़िस्म का आदमी होता है। उसने अपने जीवन में किसी भी महिला को आदर की दृष्टि से नहीं देखा। उसमें भी 'शाल्मली' के नरेश जैसा व्यक्तित्व निहित है, उसमें अहं की भावना अधिक है, वह अपने आगे किसी को नहीं समझता। प्रिया के काम करने की इच्छा रखने पर नरेंद्र कहता है – "तुम्हारा दिमाग खराब हुआ है ! तुम गुप्ता हाउस की बेटी नहीं, अग्रवाल हाउस की बहू हो !"[40] लेखिका यहाँ पर मा-पिता के अलगाव, द्वंद्व से बच्चे पर पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव के प्रति चिंता व्यक्त करती है, क्योंकि पति-पत्नी के झगड़े में हमेशा मासूम पिसकर रह जाता है। संजू माता-पिता दोनों का प्यार पाने का हकदार है, पर प्रिया को अपनी अस्मिता पर आए संकट और स्वाभिमान के खातिर मजबूरन अपने वैवाहिक जीवन के साथ-साथ संजू तक को

---

[37] निहारिका, नीलम कार्की. (वि. सं. २०७०). ***अर्की आईमाई***. भक्तपुर : शब्दहार क्रियशंस. पृष्ठ सं. 78.

[38] शर्मा, विजय. (जनवरी-फरवरी 2019). ***परिकथा.*** संपादक : शंकर. पृष्ठ सं. 18.

[39] गिरी, वानीरा. (२०६६). ***कारागार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 97.

[40] खेतान, प्रभा. (2016). ***छिन्नमस्ता***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं 135.

छोड़ना पड़ता है। प्रिया ममता के आड़ में अपनी अस्मिता को यूँ त्यागना नहीं चाहती। अपनी सास की दयनीय स्थिति को देखकर प्रिया को अत्यंत दुख होता है। नरेंद्र ने औरतों की इज्जत करना कभी नहीं सीखा इसलिए इस उम्र में भी वह माँ की इज्जत नहीं करता। जिसे देखकर प्रिया कहती है – "सासूजी तो आजीवन चरम दुख और वेदना की प्रतिमूर्ति बनी रहीं। प्रतिकार में एक शब्द भी नहीं।"[41] लेकिन प्रिया अपने सास जैसी नहीं होना चाहती और न ही अम्मा की तरह। "छिन्नमस्ता की प्रिया अम्मा की तरह नहीं होना चाहती। भाभी की घुटन भरी जिंदगी की नियति में कदापि स्वीकार नहीं कर सकती।वह कहती है - मैं अपने जीवन को आँसुओं में नहीं बहा सकती। क्या एक बूंद आँसू में ही स्त्री का सारा ब्रम्हांड समा जाए, क्यों? किसलिए?"[42]

'आँधी' उपन्यास की नायिका नम्रता के इर्द-गिर्द ही उपन्यास की कथा बुनी गई है। सहयोगी पात्र के रूप में रत्न दाइ, पाल्ने आमा, श्रीप्रकाश, हरिभक्त, पार्वती, निकुञ्ज, चन्द्रकान्त, आमै, वस्नेत, सर्वदा, महेश भट्टाचार्य, जयनारायण, उमा आदि हैं। नम्रता का जीवन अत्यन्त संघर्षों से भरा है। इस उपन्यास में बहुविवाह की झलक कुछ पात्रों के माध्यम से स्वत: दिख जाता है। संदीप नाम का एक पात्र विवाहित होने के बावजूद नम्रता से विवाह करने का ख़्वाब देखता है – "तेसले म संङ बिहे गरी भने त यार् तेसलाई म ता रानी बना र राख्ने थिएँ।"[43] (यदि वह मुझसे शादी करती तो मैं उसे रानी बनाकर रखता) प्रस्तुत उपन्यास मुख्यत: समाज में व्याप्त अशिक्षा, कुसंस्कार, सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार करते हुए उसे सुधारने हेतु प्रयासरत है।

सदियों से सतत् संघर्षों के बाद भी समाज में स्त्रियों को वह स्थान नहीं मिल सका है जिसकी वे हकदार हैं, उन्हें देवी से लेकर दासी तक का दर्जा दिया गया। जिसने जन्म दिया मर्दों को उन्हीं मर्दों ने उसे

[41] खेतान, प्रभा. (2016). ***छिन्नमस्ता***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं 150

[42] मालती, डॉ. के. एम. (2010). स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 87.

[43] चांपागाईं, लोकनाथ उपाध्याय. (दू. सं. 2018). ***आँधी***. ग्राफिक्स प्रिंटर्स : सिलगढ़ी. पृष्ठ सं. 85.

बाज़ार दिया, सभ्य समाज के सफेदपोश लोगों ने षड्यंत्र रचकर बड़ी चालाकी से उसे कलंकिनी बनने को विवश किया। 'आज बाजार बंद है' में लेखक ने वेश्याओं के जीवन के इन्हीं कटु सत्य को उजागर करते हुए उनके मुक्ति की कामना की है। उपन्यास में शबनम बाई, पार्वती, फूल, हसीना, मुमताज आदि वेश्यावृत्ति जैसे नरक से मुक्ति चाहती हैं, लेकिन समाज उन्हें दलदल से बाहर निकलने ही नहीं देता। उपन्यास का नायक सुमित उनकी मुक्ति के साथ-साथ कोठे की करुण कथा एवं मानवीय रिश्ते-नातों की सूक्ष्म पड़ताल को भी पाता है। सुमित उन्हें कहता है "तुम लोगों की मुक्ति एक न एक दिन होकर ही रहेगी पार्वती।"[44] रविंद्र श्रीवास्तव ने भी 'रुक्का बाई का कोठा' उपन्यास में वेश्याओं के बेचैनी को अभिव्यक्ति दी है। कोठा और कोठी के बीच की सामाजिक जीवन की विसंगतियों को निर्भीक होकर प्रस्तुत किया है जिसमें देह की दर्दनाक दास्तां है। प्रस्तुत उपन्यास में "रुक्का बाई द्वारा ठाकुर साहब को दिया गया जवाब महत्वपूर्ण है - अगर शरीर बेचना, इन बेसहारा लड़कियों को अपने यहां रखकर कोठी चलाना गैर-कानूनी है तो इसके लिए जिम्मेदार कौन है? आपका तथाकथित यह कुलीन, पवित्र समाज?"[45] हिंदू समाज में औरतों की क्या स्थिति है इस पर नासिरा शर्मा का उपन्यास 'शाल्माली' बहुत कुछ उजागर करता है। 'शाल्मली' में स्त्री-पुरुष के बीच चलने वाले संघर्ष की कहानी है जिसमें विवाह के बाद पुरुष काअसली चरित्र सामने आता है। दाम्पत्य जीवन सुचारु ढंग से चलाने के लिएलगातार प्रयत्न करने वाली शाल्मली अपने पति नरेश से तिरस्कार पाती हैं। इस उपन्यास में कुछ तथ्य उजागर हुए हैं कि स्त्री भले ही किसी बड़े पद पर क्यों न हो या घर के चारदीवारी पर पति ही सर्वस्व होता है। नासिरा शर्मा जानती हैं कि रिश्तों को तोड़ने में बहुत कम समय लगता है जबकि उसे जोड़े रहने में सदियाँ लग जाती है। वे नहीं चाहती थी कि किसी स्त्री का घर टूटे इसीलिए उन्होंने शाल्मली के भीतर किसी भी प्रकार की क्रांति की चिंगारी न सुलगने दी और न ही मुक्ति के लिए तलाक का रास्ता चुना।

---

[44] नैमिसराय, मोहनदास. (2004). ***आज बाजार बन्द है***. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 88.

[45] यादव, रंजित. (October, 2016). ***हंस***. सम्पादक : संजय सहाय. पृष्ठ सं. 91.

"भारतीय परिवेश में, मन मस्तिष्क में परंपराएँ इस तरह ठूंस-ठूंस कर भर दी जाती है कि उनमें भले-बुरे को छांटने की कला हम भूल चुके होते हैं। यहां बंद दरवाजों के पीछे बने वाले प्रतिकूल रिश्ते मान्य होते हैं, खुली सड़क पर बनने वाले अनुकूल रिश्ते नहीं।"[46] स्त्रियों की स्थिति पर मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं - "युग बदले पर उनके धंधे का स्वभाव न बदला। रामराज्य से कलयुग तक आ गया। वे वैसे ही की वैसी रही।"[47] 'कस्बाई सिमोन' में सुगंधा और रितिक सह-जीवन शैली अपनाते तो हैं, लेकिन समय-समय पर दोनों अपने संबंधों के बारे में लोगों को खुलकर नहीं बता पातें। वे अपने आप को पति-पत्नी के रूप में देखते भी हैं और नहीं भी। सुगंधा, लता पांडे को याद करती है। वही लता पांडे जो एकतरफा विश्वास कर बैठती है। "वह प्रेमिका का प्रेम रस भी ले रहे थे और अपने परिवार से भी जुड़े थे। दो नाव में सवार, फिर भी सुरक्षित। पुरुष जो थे।"[48] अंततः लता पांडे अकेले ही जीवन बिताने हेतु बाध्य होती हैं और धीरे-धीरे वह अवसाद की शिकार हो जाती है। चतुर्वेदी की तरह 'कारागार' में पुरुष पात्र अपने पत्नी से प्रताड़ित तथा बेचारा बनकर नायिका के करीब आने की कोशिश करता है और सफल भी होता है। लेकिन 'कारागार' की नायिका पुरुष के छद्म रूप तथा पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता को जानने लगी है वह कहती है - "स्वास्नीमानिसहरु चाँडै बूढी हुन्छन् भन्ने मनोवैज्ञानिक अस्त्र प्रहार गरेर उनीहरुको आत्मविश्वास र आत्मसचेतनालाई अधमरो पारी लोग्नेमानिसहरू उत्पादनको मैदानलाई अझ खुला र विस्तृत तुल्याउँन्छन्।"[49] (अर्थात् पुरुषों की अपेक्षा औरतें जल्दी उमरदार होने लगतीं हैं स्त्रियों की ऐसी छवि गढ़कर उनके मनोबल एवं आत्मचेतना को वे निराशा में बदल देता है तथा अपने लिए आगे की संभावनाओं को निश्चयता प्रदान करता है।) स्त्री के प्रति पुरुषों के दोगलेपन रवैये के कारण 'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा अपने जीवन में आने वाले हर पुरुष को संदेह की दृष्टि से देखती है तथा उनके साथ

[46] सिंह, शरद. (2017). ***कस्बाई सिमोन***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 117.
[47] नैमिसराय, मोहनदास. (2004). ***आज बाजार बन्द है***. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 52
[48] सिंह, शरद. (2017). ***कस्बाई सिमोन***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 115.
[49] गिरी, वानीरा. (२०६६). ***कारागार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन.पृष्ठ सं 108.

कठोरतापूर्वक व्यवहार करती है। वह स्वयं अनुभव करती है- "मैंने पाया कि रितिक से अलगाव के बाद मैं पुरुषों को लेकर और अधिक कठोर हो गई थी।"[50]

नेपाली उपन्यासों में बहु-विवाह की समस्या का चित्रण अधिक मात्रा में देखने को मिलती है क्योंकि ये समाज के वास्तविक घटनाएँ हैं जिसे साहित्यकार अपने लेखन में उजागर करता है। अधिकतर उपन्यासों के पात्रों में बहु-विवाह जैसी घटनाएँ परिलक्षित होती हैं। 'माइतघर' उपन्यास में भी एक पात्र रिटायर्ड सूबेदार की दूसरी पत्नी है सुबेदार्नी, जिससे बहुत देर से तथा कई मन्नतों के बाद सन्तान प्राप्ति (हरि) होती है। उपन्यास की नायिका सानी का पति भी पहले विवाह के दो वर्षों बाद दूसरी शादी करता है। उपर्युक्त पात्रों के माध्यम से नेपाली उपन्यासों में यह देखा जा सकता है कि बहु-विवाह को एक जटिल समस्या के रूप में देखा गया है जो किसी भी स्त्री के अस्मिता को बहुत हद तक प्रभावित करता है।

5.3.2 आर्थिक चेतना -

सामाजिक प्राणी के जीवन में अर्थ कितना महत्व रखता है यह कहने की आवश्यकता नहीं। आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना सही मायनों में सशक्तिकरण और उन्मुक्तता का परिचय है। आर्थिक स्वतंत्रता किसी भी व्यक्ति के जीवन को स्वाभिमान और आत्मविश्वास से भर देती है। जीवन में किसी भी अप्रिय घटना के समय आर्थिक सक्षमता ढाढस प्रदान करती है। महादेवी वर्मा कहती हैं कि "किसी भी सामाजिक प्राणी के लिए ऐसी स्थिति अभिशाप है जिसमें वह स्वालंबन का भाव भूलने लगे क्योंकि इसके अभाव में वह अपने सामाजिक व्यक्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता।"[51] स्त्री स्वतंत्रता के पहलुओं में एक पहलू स्त्री की आर्थिक चेतना से सम्बन्धित है। आर्थिक चेतना के महत्व को हिन्दी तथा नेपाली के चयनित उपन्यासों में विभिन्न पात्रों के जरिए समझा जा सकता है। आर्थिक विपन्नता के कारण स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति जैसे काम

---

[50] सिंह, शरद. (2017). ***कस्बाई सिमोन***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 194

[51] वर्मा, महादेवी.. (2008). ***श्रृंखला की कड़ियाँ.*** इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ सं. 89.

करने को बाध्य होती देखी गई है। 'आज बाज़ार बंद है' की पार्वती इसी बाध्यता को लेकर सुमित से प्रश्न करती है - "बताओ सुमित मेरा क्या दोष था इमें, क्या कभी कोई लड़की चाहती है कि वह वेश्या बने?"[52]

'छिन्नमस्ता' की नायिका प्रिया अपनी माँ द्वारा उपेक्षित एवं अपमानित होती है। एक सफल व्यावसायिक से विवाह करने के बावजूद प्रिया स्वतंत्र व्यवसाय करने का निर्णय लेती है क्योंकि आर्थिक रूप से पति पर निर्भर होने के कारण उसे बार-बार अपमानित होना पड़ा था। उसके इस निर्णय के साथ ही दांपत्य जीवन में कटुता आ जाती है। उपन्यास में यह भी दर्शाया गया है कि सुसंपन्न धनाढ्य मारवाड़ी परिवार में भी नारी सुखी नहीं है। उसे उपेक्षा, अपमान, ईर्ष्या तथा गुलामी जैसी स्थिति में जीवन-यापन करने हेतु विवश होना पड़ता है। प्रिया का मानना है कि नारी तभी स्वतंत्र हो सकती है जब वह आर्थिक दृष्टि से सक्षम हो। व्यवसाय से उसे जीवन का मकसद मिल गया है। प्रिया के शब्दों में "आज मेरा व्यवसाय मेरी आइडेंटेटी है। यह आए दिन की विदेशों की उड़ान... यह मेरी जिंदगी के कैनवास को बड़ा करती है। नित्य नए लोगों से मिलना-जुलना, जीवन के कार्य-जगत को समझना। मुझे जिंदगी उद्देश्यहीन नहीं लगती।"[53] आर्थिक रूप से संपन्न होने के कारण उसमें आत्मविश्वास जागृत होता है। उसे लगता है कि पति नरेंद्र और परिवार को छोड़ने पर भी किसी पर आर्थिक रूप से निर्भर रहने का भय नहीं रहेगा। इसी उपन्यास के एक स्त्री पात्र नीना एक अवैध संतान की भूमिका में होती है, वह अपनी लड़ाई स्वयं लड़ना चाहती है। वह निराश, हताश और कुंठा की शिकार नहीं होना चाहती। उसे यह ज्ञात हो चुका है कि आर्थिक स्वालंबन से ही स्त्री को सम्मान मिलेगा। इसलिए पिता के आश्रय में रहना अस्वीकार कर स्वतंत्र रूप से नौकरी या व्यवसाय करना चाहती है और अंततः सफल भी होती हैं।

'युगसन्धि' की नायिका लक्ष्मी ससुराल तथा पति को त्यागने के बाद अपने बेटे के साथ किराये के मकान में रहती है। जल्द ही उसे नौकरी मिल जाती है एवं शिक्षा पूर्ण करने के बाद कोर्ट में वकील के

[52] नैमिशराय, मोहनदास. (2004). ***आज बाजार बन्द है***. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 114

[53] खेतान, प्रभा (2016). ***छिन्नमस्ता***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 10.

पद पर पदस्थ होती हैं। लगातार संघर्षों के पश्चात् अंततः उसे सफलता मिलती है, वह आर्थिक रूप से सक्षम बनती हैं।

इसी तरह जब हम 'कस्बाई सिमोन' में सुगंधा की माँ को देखते हैं तो पाते हैं कि वे शिक्षित होने के कारण मानसिक व शारीरिक शोषण से छुटकारा हेतु अकेले रहने का निर्णय ले पाती हैं एवं आत्मसम्मान के साथ जीती भी हैं। पति पर आश्रित न रहकर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता का परिचय सुगंधा की माँ देती है। पिता द्वारा बेटी के पढ़ाई-लिखाई का खर्च उठाने के सम्बन्ध में वह कहती है - "अपनी बेटी को पालने में मैं सक्षम हूँ। मुझे आपसे किसी भी तरह की कोई आर्थिक मदद नहीं चाहिए।"[54]

'कारागार' में नायिका अपने सम्बन्धों को लेकर कहती है - "समाजले जेजस्तो आँखाले हेरे पनि, जेजस्तो शब्द बौछारले हाम्रो सम्बन्धपुष्पलाई क्षतविक्षत पारे पनि म यो सम्बन्धलाई मौलिक सम्बन्धको संज्ञा दिन्छु। उनीबाट मालसामान रुपैयाँपैसा दुहेर मैले यो सम्बन्धलाई वेश्याउन दिएकी छैन।"[55] आर्थिक दृष्टिकोण से नायिका की चेतना यहाँ पर जागृत है। नायिका अपने प्रेमी साथी के साथ आर्थिक कारणों से नहीं बल्कि भावनात्मक कारण से जुड़े रहना चाहती है। इसलिए वह अपने रिश्ते को पैसों से नहीं तौलतीं क्योंकि वह स्वयं आर्थिक रूप से सक्षम है।

शाल्मली एक स्वाभिमानी और स्वालम्बी स्त्री अवश्य है, लेकिन वह समाज के बदलते रूपों के साथ-साथ परिवार को भी महत्व देती है तथा उसके साथ चलना चाहती है। स्वालम्बन के सन्दर्भ में शाल्मली कहती है कि "मेरी दृष्टि में स्वावलंबी होने का यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि वह परिवार को तोड़ डाले और उन सारी भावनाओं से मुकर जाये, जो उसकी पहचान ही नहीं जरूरत भी हैं।"[56] क्योंकि शाल्मली स्त्री की स्वतंत्रता में सबको साथ लेकर चलने की बात करती है। वह रिश्तों को तोड़कर नहीं

---

[54] सिंह, शरद. (2017). ***कस्बाई सिमोन***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 53.
[55] गिरी, वानीरा. (२०६६). ***कारागार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 99.
[56] शर्मा, नासिरा. (2018). ***शाल्मली***. नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन. पृष्ठ सं. 166.

बल्कि रिश्तों में मधुरता लिए आगे बढ़ना चाहती है। बारम्बार प्रयासों के बावजूद शाल्मली अपना पारिवारिक जीवन सुखद नहीं बना पाती। अंततः परिवार बिखर जाता है एवं सम्बन्ध टूट जाते हैं। नरेश का लालन-पालन एक रुढ़िवादी परिवार तथा ऐसे परिवेश में हुआ होता है जहाँ स्त्रियों को हमेशा से एक उपभोग की वस्तु माना जाता रहा है। यही वजह है कि नरेश अपने संस्कारों की वजह से शाल्मली का बार-बार अपमान करता है, हीनता का बोध कराता है, उसके अस्तित्व को चोट पहुँचाता है, उसके वजूद को नकारता है। शाल्मली पढ़ी-लिखी होने के कारण यह समझती है कि नरेश को यह सब समझने के लिए वक्त लगेगा।

समाज ने स्त्री के सम्बन्ध में अर्थ का ऐसा विषम विभाजन किया है कि साधारण श्रमजीवी वर्ग से लेकर संपन्न वर्ग की स्त्रियों तक की स्थिति दयनीय है। स्त्रियाँ अर्थ के सम्बन्ध में सभी क्षेत्रों में एक प्रकार की विवशता के बंधन में बंधी हुई है कहीं पुरुष ने न्याय का सहारा लेकर तो कहीं अपने स्वामित्व की शक्ति से लाभ उठाकर। वह इतना अधिक परावलंबी बना दी गई है कि पुरुष साथी के सहायता के बिना बाहरी दुनियाँ में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा सकती। प्रिया की स्थिति को देखकर फिलिप को कहना पड़ता है कि "पता नहीं तुम भारतीय स्त्रियाँ अपने को प्यार क्यों नहीं कर पातीं! तुमने अपना पैसा खुद कमाया है। क्या सुख का इतना भी अधिकार तुम्हें नहीं, और खासकर उस वक्त, जब तुम बीमार हो?"[57]

आर्थिक चेतना के सम्बन्ध में स्त्रियाँ अब जागृत हो रही है। उन्हें एहसास होने लगा है कि जब तक आर्थिक रूप से महिलाएँ सबल नहीं होंगी, तब तक वे मुक्ति नहीं पा सकेगी। दुनिया की सारी चीजें वह भले ही न हासिल कर सके लेकिन जो भी करेगी उसमें सम्पूर्णतः उसी का अधिकार रहेगा। 'कस्बाई सिमोन' में आर्थिक चेतना को महत्व दिया गया है भले सम्बन्ध रहे न रहे अपने आत्मनिर्भता को खतरे में नहीं डालना चाहिए। "मां की नौकरी, मां के लिए आत्मविश्वास का सबसे बड़ा आधार था। आर्थिक

[57] खेतान, प्रभा. (2016). ***छिन्नमस्ता***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं.14.

क्षमता पुरुषों को ही नहीं स्त्रियों को भी आत्मविश्वास से भर देती हैं, उन्हें आत्मनिर्भर बना देती है। मुझे याद है कि जिस दिन मेरी नौकरी का नियुक्ति पत्र आया था मां ने खुश होते हुए मेरा माथा चूम लिया था।"[58]

'कारागार' में भी नायिका की आर्थिक चेतना जागृत है। वह अपने भाइयों के साजिश से वाकिफ़ रहती है। सम्पत्ति के लोभ में भाइयों ने उसकी शादी नहीं करवाई। जब वह यह जान लेती है तब वह वहाँ नहीं रुकतीं। अपने स्वाभिमान तथा अस्तित्व को क्षत-विक्षत नहीं होने देतीं।

आर्थिक दृष्टि से देखा जाए तो 'आज बाजार बंद है' उपन्यास में वेश्याओं को आर्थिक रूप से कई मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। उपन्यास में जगह-जगह पर आर्थिक तंगी के दृश्य देखने को मिलते हैं। "वेश्याओं के पेट में भूख कुलबुलाने लगी थी। हसीना बराबर के कोठे से मिट्टी का तेल मांग कर ले आई थी। तब जाकर वही काली चाय नसीब हुई थी। रसोई में कुछ था ही नहीं केवल नमक मिर्च और हल्दी थी।"[59] उनकी लाचारी का मार्मिक चित्रण निम्नलिखित शब्दों द्वारा दृष्टिगोचर होता है – "आईये हुजूर हमारी बोटी-बोटी काट डालिये, पर हमें पैसा दीजिए। हम भूखी हैं। हमारे जिस्म संभोग के लिए तड़पते हैं। सदियों से यही हमारा सनातन धर्म है। हमें रौंदिये मसलिये, पर हमें पैसा दीजिए। हमें उल्टा टांगिये या तिरछा करिये, गोद में बैठाईये या जमीन, पर हमें पैसा दीजिए।"[60]

सामाजिक तथा आर्थिक रूप से पराश्रित होने के कारण तारा अपने साथ हुए अन्याय को वर्षों तक सहती रहती है। उसे पत्नी या बहू का अधिकार तो दूर, एक विवाहित स्त्री का दर्जा तक प्राप्त नहीं होता। सुवर्ण की माँ ने तो यह तक कह दिया कि – सुनो! तुम यहाँ पर सिंदूर मत लगाना, न ही साज-श्रृंगार करना। तारा के आने से सुवर्ण के दो संतानों (डेस्टिनी और सेंटियागो) की देखभाल तथा परिवारवालों के

[58] सिंह, शरद. (2017). ***कस्बाई सिमोन***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 81.
[59] नैमिसराय, मोहनदास. (2004). ***आज बाजार बन्द है***. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 95.
[60] नैमिसराय, मोहनदास. (2004). ***आज बाजार बन्द है***. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 43.

लिए आजीवन नौकरानी का मकसद पूरा हो गया था। शादी से पूर्व तारा को इस बात की जानकारी ही नहीं थी कि सुवर्ण की शादी हो चुकी है तथा उसके दो बच्चे हैं। इस तरह नए-नए जानकारियों से अवगत होते हुए तारा उस बड़े से परिवार में अपने आपको एड्जस्ट करते हुए लम्बे समय तक यूँ ही अपमान, उपेक्षा, को अंदर ही अंदर पचाकर आगे बढ़ती है।नेपाली समाज में पारिवारिक कलह की बात जब-जब होती है सास-बहू के झगड़े का सन्दर्भ आ ही जाता है। यह आम बात है कि दोनों के द्वंद्व में बेटा और पति के रूप में एक पुरुष ही पिसता है। इस दृष्टि से कई उपन्यास लिखे गए, लेकिन यह सही व्याख्या नहीं है। सास द्वारा बहू पर किये जाने वाला प्रताड़ना पितृसत्तात्मक समाज की ही देन है। उन दोनों के मानसिक पटल में पुरुषवादी समाज का कुप्रभाव है। उपन्यास 'कारागार' में भी एक प्रसंग ऐसा है जहाँ बेटे द्वारा प्रेम-विवाह से माँ नाखुश रहती है तथा अत्याचार का सिलसिला चलता है।

'फिरोज़ी आँधियाँ' उपन्यास में नेपाल की महिलाओं की आर्थिक चेतना को भी रेखांकित किया गया है। उपन्यास का पात्र रामसमुझ यह देख कर हैरत में पड़ जाता है कि यहाँ छोटी-छोटी लड़कियाँ भी पसल (दुकानें) चलाती हैं। "अधिकतर दुकानों पर महिलाओं का राज है...किन्तु रामसमुझ उन्हें देख-देख कुछ और सोचता है। ये कि छोरियां भी दुकान सम्भले बैठी हैं। एक हम है कि मजूरी भी ढंग की नहीं।"[61] नेपाल में महिलाओं का अधिकतर दुकानों में रहने या चलाने के पीछे का कारण वहाँ की सामाजिक स्थिति है। पुरुष वर्ग अर्थोपाजन हेतु विदेश जाते हैं और महिलाएँ घर और व्यवसाय दोनों साथ-साथ चलातीं हैं।

[61] निहाँ, हुस्न तबस्सुम. (2018). ***फिरोजी आँधियाँ***. दिल्ली : मनीष पब्लिकेशन. पृष्ठ सं. 50.

5.3.3 स्त्री चेतना -

स्त्री विमर्श दरअसल पुरुष का विरोधी नहीं है, वह पुरुष के वर्चस्ववादी प्रवृत्ति और स्वामित्व का विरोधी है। उपर्युक्त सभी उपन्यासों की नायिकाओं द्वारा स्त्री-चेतना का स्वर सुनाई देना स्वाभाविक है क्योंकि उपन्यासकारों ने स्त्री के खोयी हुई चेतना को जागृत कर पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के कड़ी को तोड़ने का भरसक प्रयास किया है। 'आज बाज़ार बंद है' उपन्यास में स्त्री-चेतना के अतिरिक्त लेखक ने अन्य सामाजिक समस्याओं के प्रति अपनी नाराज़गी दर्ज की है। उन्होंने देवदासी प्रथा के सम्बन्ध में जाति के प्रश्न को भी उठाया है। "हमें पहले देवदासी बनाया फिर वेश्या। एक ही जाति की कुंवारी लड़कियों को देवदासी क्यों बनाया जाता है?"[62] वैसे तो आर्थिक तंगी के कारण ही स्त्रियों को मजबूरन वेश्यावृत्ति जैसे श्रापित कार्य को अपनाना पड़ता है लेकिन सुमित द्वारा पार्वती को समझने की प्रक्रिया में शबनम बाई सुमित से कहती है की "औरत के शरीर को खोलने से खेलने वाले तो बहुत होते हैं, पर औरत के मन को पढ़ने तथा महसूस करने वाले कम होते हैं उसके भीतर जाओ और पढ़ो।"[63]

'कस्बाई सिमोन' में लेखिका ने सुगंधा के माध्यम से उन पुरुषों से प्रश्न किया है जो अपने पौरुष पर घमंड करते थकते नहीं। वे पूछती हैं "जब किसी बहू को जलाया जाता है तो उस समय उसके ससुर और पति जैसे पुरुषों की क्या भूमिका रहती हैं? उस समय उनका पौरुष कहां चला जाता है?"[64] माँ को कन्विंस करना हो या रितिक के पिता, पड़ोसी, मकान मालिक आदि का प्रतिकार करना। सुगंधा को हर कदम पर अपने निर्णय को जस्टिफाई करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। इसी बीच एक मकान की मालकिन, जो पढ़ी-लिखी और दिल्ली शहर में रहने के कारण खुद को अत्याधुनिक मानती थीं, लेकिन रितिक और सुगंधा के सह-जीवन को वह कल्चर्ड नहीं मानतीं। इसका विरोध करते हुए सुगंधा कहती है

[62] नैमिशराय, मोहनदास (2004). ***आज बाजार बन्द है***. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 92.
[63] वही. पृष्ठ सं. 97.
[64] सिंह, शरद. (2017). ***कस्बाई सिमोन***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 104.

"कल्चर! क्या है हमारा कल्चर? रखैल बनाकर औरत को रखा जाए तो कल्चर के विरुद्ध नहीं है और यदि औरत अपने पूरे अधिकार के साथ, स्वेच्छा से किसी पुरुष के साथ रहने लगे तो वह कल्चर के विरुद्ध हो गया? उफ! कितना दोहरा पन!"[65]

समाज की कुछ लड़कियों को लगता है खासकर जो अपने पैरों पर खड़ी है कि स्त्रियों का अविवाहित रहना पितृसत्तातमक समाज से मुक्ति पाने का रास्ता है। शाल्मली इस सन्दर्भ में सरोज से पूछती है कि – "क्या तुम अविवाहित रहकर पुरुषोंके समाज, उनके नाम और आकार से पूर्ण रूप से मुक्त हो गई हो?"[66] शाल्मली की दृष्टि में स्त्री मुक्ति का अर्थ अविवाहित रहना नहीं है। वह आगे कहती है - "तुम्हारे सामने समस्या केवल पति से निपटने और उससे मुक्त होने की है, मगर मेरी नजर में सही नारी मुक्ति और स्वतंत्रता समाज की सोच और स्त्री की स्थिति बदलने में है। बाहर निकलो या घर में रहो, हर स्थान पर पुरुष तुम से टकराएगा। चाहे वह सब्जीवाला हो या तुम्हारा बॉस, अखबार वाला हो या तुम्हारा पति। संक्षेप में होगा वह पुरुष ही। पति से मुक्ति पाकर क्या इनसे भी मुक्ति पा लोगी? या सबको नकारती चली जाओगी?"[67] क्योंकि शाल्मली अपने आप को पुरुष विरोधी नहीं बल्कि अत्याचार विरोधी मानती है।

'युगसन्धि' उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने समाज में अनमेल विवाह को मिलने वाली सामाजिक मान्यता का विरोध किया है। उपन्यास की एक स्त्री पात्र मनमाया का विवाह चौदह वर्ष की उम्र में उससे दोगुने से भी अधिक उम्र के व्यक्ति के साथ करा दी जाती है। "नारीहरूले आफूमाथि युगोंदेखि पुरुषप्रधान समाजले अर्पण गरेको सती-साध्वी र पतिपरायणका कथाहरूले गर्दा आफ्नो स्थिति र दूरावस्थालाई बुझ्न सकेका छैनन्। सक्नेहरू पनि समाजमा बोल्न सक्दैनन्। नारीमाथि शोषण, अत्याचार,

[65] सिंह, शरद. (2017). ***कस्बाई सिमोन***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 110.
[66] शर्मा, नासिरा. (2018). ***शाल्मली***. नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन. पृष्ठ सं. 165.
[67] वही. पृष्ठ सं. 166.

पक्षपात गरेर हाम्रो समाज अघि बढ्दैन।"[68] लेखिका मानती हैं कि स्त्रियों के ऊपर होने वाले शोषण, अत्याचार तथा भेदभाव से समाज का कभी विकास नहीं हो पाएगा।

"देवदासी प्रथा केवल भारतवर्ष के ही प्रथा नहीं है बल्कि पूरे विश्व में यह प्रथा प्रचलित थी। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो धर्म के आवरण में लिपटी एक स्त्री देह है जो आसानी से सुलभ हो सके।"[69] 'आज बाज़ार बंद है' की पार्वती इसी प्रथा के कारण एक तरफ़ शोषित होती है तो दूसरी तरफ सुमित के विचारों से प्रभावित होकर वेश्याओं का जीवन परिवर्तन होने लगता है, उनमें मुक्ति की राह दिखने लगती है। "सुमित ने उन्हें गुलामी की नींद से जगाया था। वेश्याओं के बीच अच्छी सुगबुगाहट हुई अच्छा बनने और मुक्ति की राह पर चलने के लिए। अपने-अपने पिंजरे में कैद उन सबको मुक्त होना था। चारों और मुक्ति के गीत गूंजने लगे थे।"[70]

सदियों से युद्ध की जो तस्वीर हमारे सामने हैं उसमें किसी का भी भला नहीं हो पाया है। इससे विश्व के कोई भी जाति छूटी नहीं जिसको युद्ध से क्षति न पहुँची हो। 'फिरोज़ी आँधियाँ' में भी पुरुषों के द्वंद्वों की कीमत स्त्रियों को चुकानी पड़ी है। महादेवी वर्मा युद्ध के बारे में कहती हैं कि "पुरुष का जीवन संघर्ष से प्रारंभ होता है और स्त्री का आत्मसमर्पण से। पुरुष की शक्ति और दुर्बलता उस आदिम नारी से नहीं छिपी रही होगी जिसने पुरुष की बर्बरता को पराभूत कर उसकी सुप्त भावना को जगाया। इन पवित्र गृहों की नींव स्त्री की बुद्धि पर रखी गई है पुरुष की शक्ति पर नहीं। अपने सहज बुद्धि के कारण ही स्त्री ने पुरुष के साथ अपना संघर्ष नहीं होने दिया।"[71] लेकिन स्त्री को ही ऐसे गुनाह की सजा क्यों भुगतनी पड़ती है जिसमें उसका कोई हाथ नहीं होता? 'फिरोज़ी आँधियाँ' में पुरुषों में हुए द्वंद्वों, संघर्षों तथा युद्धों के कारण गाँव की स्त्रियाँ - मालती, लखैया की बीवी, रामसमुझ की पत्नी आदि को निर्मम सजा मिलती है।

[68] श्रीमती नयादेवी. (2002). ***युगसन्धि.*** तेजपुर : श्री जयनारायण लुइटेल. पृष्ठ सं. 46.
[69] नीलम, कुलश्रेष्ठ. (2012). ***धर्म के आर पार औरत.*** नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन. पृष्ठ सं. 38
[70] नैमिशराय, मोहनदास. (2004). ***आज बाजार बन्द है.*** नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.पृष्ठ सं. 114.
[71] वर्मा, महादेवी. (2008). ***श्रृंखला की कड़ियाँ.*** इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ सं. 28.

'फिरोज़ी आँधियाँ' में गाँव की महिलाओं के साथ जो कुछ भी होता है उसका वीभत्स रूप मधुश्री देखती है। उपन्यास में इस हिंसक बलात्कार की घटना के बाद महिलाओं के पतियों द्वारा उन्हें जूठा बताकर उनका बहिष्कार कर देना और उन्हें आत्महत्या करने के लिए मजबूर करना, तलाक देना एवं मुँह बंद रखने को कहना आदि पुरुषप्रधान समाज की ही देन है। स्त्रियाँ दोहरे शोषण की शिकार होती हैं। एक तरफ पुरुष बलात्कार कर उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँचाता है और दूसरी तरफ उस गुनाह के लिए सजा देना चाहता है जो उसने की ही नहीं। उपन्यास में स्त्री देह और उसकी यौन शुचिता के प्रति पुरुष की परम्परावादी मानसिकता व आम आदमी और सत्ता की इस लड़ाई में दोनों ओर से स्त्री की देह को हथियार के रूप में इस्तेमाल करने की मानसिकता उभरती है। वहीं दूसरी ओर उसी समाज का एक पुरुष वर्ग जगजीत है जो बलात्कार को स्त्री शुचिता से जोड़कर नहीं देखता। वह बलात्कार पीड़िता और उसके गर्भस्थ शिशु को सकारात्मक मानसिकता के साथ 'बरकत' के रूप में अपनाता है और कहता है "पत्नी को क्या चाहिए। बीज कहीं का भी हो, फूल तो उसकी गोद में ही खिलेगा। वह भी खुशी से मदमस्त।"[72]

परिवर्तन प्रकृति का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। मानव जीवन-मूल्यों के विभिन्न क्षेत्रों में भी परिवर्तन होता रहता है अत: नारी के जीवन मूल्यों में भी यह परिवर्तन अनिवार्य है। आज की नारी के जीवन संघर्षों में भी विविधता और विभिन्नता आ गई है। आज अपने जीवन मूल्यों के प्रति अधिक सचेत और सतर्क है। रुढ़िवादी, अंधविश्वास तथा पुरुष प्रधान संस्कृतिसे महसूस होने वाली संत्रास, घुटन आदि को तोड़ने में भी वह प्रयत्नशील रही है। 'आज बाज़ार बंद है' की पार्वती भी देह व्यापार के दलदल से निकलना चाहती है तथा सामान्य मनुष्य-सा जीवन जीना चाहती है - "पार्वती को जब तक समझ आता वह चकले में कैद हो चुकी थी। पार्वती ने चकले से निकलने के लिए लाख प्रयास किए पर इन पिंजरों से

[72] निहाँ, हुस्न तबस्सुम. (2018). ***फिरोजी आँधियाँ.*** दिल्ली : मनीष पब्लिकेशन. पृष्ठ सं. 56.

मुक्त नहीं हो सकी। मां को भी पत्र लिखा था। मां, मैं अपने गांव लौटना चाहती हूं। बूढ़ी आंखों की आंखों में ज्योति न थी भीतर सिर्फ हाहाकार था उसके।"[73]

स्त्री-स्वातंत्रय के सपने को परिवार के भीतर देखना नासिरा शर्मा का ही दृष्टिकोण है। चूँकि उनकी परवरिश हिन्दू-मुस्लिम परिवेश में हुई होती है इसलिए वे हिन्दू समाज में स्त्रियों की स्थिति से भलीभांति परिचित हैं। शाल्मली जीवन के जिस नरक से गुज़रती है वह उन हालातों में परिवर्तन हेतु धीरज धरती है। वह कहती है "औरतों के पास दो ही अभिव्यक्तियां हैं सर झुका देना या समस्या को अधूरा छोड़, सर कटा लेना। मेरा विश्वास न घर छोड़ने पर है, न तोड़ने पर, न आत्महत्या पर है, न अपने को किसी एक के लिए स्वाहा करने में है। मैं तो घर के साथ औरत के अधिकार की कल्पना भी करती हूं और विश्वास भी। अधिकार पाना यानि 'घर निकाला' नहीं और घर बना रहने का अर्थ सम्मान को कुचल फेंकना नहीं है। यह जो हमारे मन मस्तिष्क में अति का भूत सवार हो गया है, वही जीवन के लिए विष समान हैं।"[74] शाल्मली के अति सम्बन्धी दृष्टि 'सिमोन द बोउवार' के द्वारा दिए गए उदाहरण से मिलता हुआ देखा जा सकता है। वे अपने पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' में एक ऐसी स्त्री की उदाहरण प्रस्तुत करती है जो अपनी गणना पुरुषों में करवाना चाहती है। ऐसी स्त्रियों के लिए वे कहती हैं कि "अपने आपको पुरुष के रूप में स्वीकारना चाहने वाली और पौरुषीय उपलब्धियों तथा सम्मान का दावा करने वाली स्त्रियाँ दरअसल पुरुष जैसा होना चाहती हैं। वे पुरुष की नकल करती हैं।"[75]

उपरोक्त उपन्यासों के कुछ पुरुष पात्र स्त्री के स्वाभिमान के महत्व को न सिर्फ समझते हैं बल्कि परम्परावादी बोझ तले दबे स्त्रियों को मुक्ति हेतु प्रेरित भी करते दिखते हैं। 'आज बाज़ार बंद है' के नायक सुमित के सम्बन्ध में शबनम बाई कहती है कि उसके भीतर मैंने सूरज को उगते देखा है। वही सूरज जहां

[73] नैमिशराय, मोहनदास. (2004). ***आज बाजार बन्द है***. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 131.

[74] शर्मा, नासिरा. (2018). ***शाल्मली***. नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन. पृष्ठ सं. 164.

[75] खेतान, डॉ. प्रभा. (2004). ***स्त्री उपेक्षिता***. नई दिल्ली : हिंदी पॉकेट बुक्स पृष्ठ सं. 22.

जहां जाता है, वहां वहां उजाला हो जाता है और अंधेरा दूर होता है। समाज को सुमित जैसे व्यक्तित्व की जरूरत है जो अपने आसपास में घटित घटनाओं को संवेदना के साथ समझ सके, उसमें पुरुषवादी वर्चस्व का अहं न हो, उसमें समानता की भावना निहित हो। पार्वती, जिसने प्रश्न पूछा था कि 'कौन सी लड़की चाहती है कि वह वेश्या बनें' अब उसी के भीतर मुक्ति की चेतना जगने लगती है जिसके कारण वह वेश्यावृत्ति को छोड़ने की घोषणा करती है - "मैं यह धंधा आज और अभी से ही छोड़ती हूँ।"[76] वेश्यावृत्ति के सम्बन्ध में कारागार की नायिका कहती है - "संसारभरिका वेश्यालय हरुलाई पनि सिनेमा र नाटकमा जस्तै टिकट काटेर खुलस्त जान पाइने कानुन समाजमा बन्यो भने 'वेश्यालय' शब्दको आकर्षण स्वत: कम भएर जानेछ।"[77](यदि संसार में सिनेमा व नाटक की तरह वेश्यालय जाने के लिए टिकट की व्यवस्था होतीं तो, समाज में वेश्यालय के प्रति आकर्षण कम होता, और यह सामान्य बात होती।)

समाज में विवाह एक ऐसी संस्था के रूप में हमारे सामने विद्यमान है जिसके अंतर्गत होने वाली किसी भी प्रकार एवं किसी भी स्तर के अन्याय को सामाजिक मान्यता प्राप्त है। 'माइतघर' की सुबेदार्नी ससुराल के सन्दर्भ में कहती है – "सबैको एउटै हुन्छ र ? भाग्यमा कस्तो पर्छ कस्तो ! हामी स्वास्नीमान्छेको कर्ममा जन्मदा पुर्पुरोमा जस्तो लेखेको छ उस्तो पो भोग्नुपर्छ!"[78] भाग्य के भरोसे स्त्री की जिंदगी छोड़ दी जाती है। दूसरी तरफ सानी को हरि बार-बार समझाता है कि - सानू ! घर गएपछि स्त्रीको धर्म हो पोइको सेवा गर्नु, सासूले एक वचन लाएको बेला बुहारीहरू माइत सम्झेर रुन्छन्, त्यसो नगर्नु। सासूलाई आमाजस्तै सम्झनु। नचिनेसम्म पो सासूले बुहारीको परीक्षा लिइन्छ। सासू-ससुरा रिझाउन सके आफ्नै छोराछोरीजस्तो गर्छन्।"[79] सानी के मन की बात को, इच्छाओं को कोई भी समझने की कोशिश नहीं करता बल्कि सभी रीतियों-परमपराओं की दुहाई देते हुए विवाह को ही उसके जीवन के अंतिम लक्ष्य

[76] नैमिशराय, मोहनदास. (2004). ***आज बाजार बन्द है***. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.पृष्ठ सं. 111.

[77] गिरी, वानीरा. (२०६६). ***कारागार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 109

[78] बाङदेल, लैनसिंह. (२००६). ***माइतघर***. काठमांडो : रत्न पुस्तक भण्डार. पृष्ठ सं. 43.

[79] वह. पृष्ठ सं. 44

के रूप में देखता है। भाग्य की दुहाई केवल स्त्री को ही क्यों दी जाती है? सानी प्रश्न तो नहीं करती लेकिन इसे स्वत: स्वीकार भी नहीं करतीं। दूसरी तरफ सुगंधा अपने स्त्रीत्व का अपमान होता नहीं सह सकती। वह ऋतिक को चेतावनी देती है कि "मैं यह चेक रख रही हूँ और बाकी के छह लाख यदि मुझे एक सप्ताह के भीतर नहीं मिले तो मैं मामला पुलिस में दे दूंगी।"[80] विशाल का कहना था कि सुगंधा हर बात में स्त्री-पुरुष को बांटकर देखती है जिसके पीछे के कारणों को उजागर करते हुए वह विशाल से कहती है कि "मैं स्त्री हूँ इसलिए रात को अकेले घर से नहीं निकल सकती हूँ, मुझे खतरा किससे है ? पुरुषों से न ? ...प्रकृति ने स्त्री की देह को जो विशेषताएं दी हैं, उन्हीं विशेषताओं को पुरुष स्त्री के विरुद्ध सदियों से इस्तेमाल करते आ रहा है। वह औरत को डराता रहता है कि प्रकृति ने तुम्हें गर्भवती होने की जो विशेषता दी है उसी से मैं तुमको 'कुलटा' और 'कलंकिनी' बना दूंगा।"[81]

पिछले कुछ दशकों से लोगों का लिव-इन-रिलेशनशिप के प्रति उत्साह बढ़ा है। महानगरों में इस परिवर्तित जीवनशैली ने तेजी से अपने पैर पसारे हैं, वहीं महानगरों की सीमाओं से बाहर छोटे शहरों और कस्बों तक यह जीवन शैली विस्तृत होने लगी है। इसका मुख्य कारण है सामाजिक संस्था के रूप में विवाह के प्रति तेजी से बढ़ती हताशा, जिसके कारण युवाएँ इस उन्मुक्त जीवन शैली को अपनाने के लिए प्रेरित हो रहे हैं। विचारों और आयु की समानता के बीच शुरू हुआ रितिक और सुगंधा का सहजीवन सामाजिक और पारिवारिक दृष्टि से अनेक मुसीबतें खड़ी तो करता है। फिर भी तमाम लांछना के बावजूद सुगंधा हार नहीं मानती। लेखिका द्वारा नायिका के व्यक्तित्व के जरिए समस्त स्त्री जाति को यह सन्देश देना चाहती है कि प्रत्येक स्त्री को अपनी देह की आवश्यकता पर भी विचार करना चाहिए। "यही तो नियति है कस्बाई औरत की, उसके लिए इस तरह के लांछनायुक्त शब्दों से परे, अपनी इच्छानुसार

---

[80] सिंह, शरद. (2017). ***कस्बाई सिमोन***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन.पृष्ठ सं. 198.

[81] वही. पृष्ठ सं. 204.

'रिलेशन' बनाकर सम्मानपूर्वक रह पाना आज भी आसान नहीं है। फिर भी मैं हार नहीं मानूंगी, न जिंदगी से और न संबंधों के समीकरण से।"[82]

आज का युग ही ऐसा है कि अधिकतर रिश्ते-नाते मौकापरस्त होते हैं। 'आँधी' उपन्यास में पिता की मृत्यु के बाद नम्रता के नाम पर रखी गई सम्पत्ति हथियाने के लिए श्रीप्रकास उसका अपहरण करने की साजिश रचता है। वह कहता है कि "नाजीरलाई तो केटी गराइद्यो भने म पाँचहजार रूपियाँ हुटेलका कम गर्दिन्छु भनेर जागीरले बारम्बार भनिराखेको छ।"[83] (नाजीर बार-बार कह रहा है कि यदि नम्रता को उसके हवाले कर दें तो होटल के लिए पाँच हजार रुपये कम कर देगा) नम्रता उसी पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण प्रताड़ित होती है जिसे "निजी संपत्ति की अवधारणा और उसे अपने ही रक्त-वीर्य से उत्पन्न पुत्रों को उत्तराधिकार में प्रदान करने की पुरुष की आदिम लालसा ने पितृसत्ता को जन्म दिया।"[84]

जहाँ देह व्यापार का प्रश्न है तो इसमें 'ह्यूमन ट्रैफिकिंग' का जघन्य अपराध अभिन्न हिस्से की तरह जुड़ा हुआ है। युवतियों को बहला-फुसलाकर दलालों के हाथों बेचे जाने की घटना अब अंतरराष्ट्रीय रूप ले चुकी है। दक्षिण पूर्व एशिया से लेकर पश्चिम एशिया के देशों जिनमें चीन, नेपाल, बांग्लादेश, भारत आदि से प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में लड़कियाँ ह्यूमन ट्रैफिकिंग की शिकार होती हैं। वहीं अनेक लड़कियाँ गरीबी से निजात पाने के लिए ऐसा रास्ता अपनाती हैं। तारा भी कहीं न कहीं धोखे से अमेरिका लायी गयी थी। उसके आस-पास के सभी लोग उसके देह को भोगना चाहते हैं। नन्दोई की नज़र तारा की कोख पर है। "तरू, तिम्रो र मेरो पीडा एकै छ। तिमी लोग्ने भएर पनि आमा बन्न सक्दैनौ, स्वास्नी हुँदा पनि बाबु बन्न सकिन म। तर तरू हामीले एक अर्कालाई सहयोग गर्न सक्छौं..."[85] (पति के रहते हुए भी तुम

[82] सिंह, शरद. (2017). ***कस्बाई सिमोन***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन. पृष्ठ सं. 154.

[83] चांपागाईं, लोकनाथ. (दू. सं. 2018). ***आँधी***. ग्राफिक्स प्रिंटर्स : सिलगढ़ी. पृष्ठ सं. 45.

[84] दत्ता कोल्हारे. (2018) ***हिंदी उपन्यास : इक्कीसवीं सदी का द्वितीय चरण***. स्वराज प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ सं. 23.

[85] निहारिका, नीलम कार्की. (वि. सं. २०७०). ***अर्की आईमाई***. भक्तपुर : शब्दहार क्रियशंस. पृष्ठ सं. 196.

कभी माँ नहीं बन पाओगी, मैं पत्नी के रहते हुए भी कभी बाप नहीं बन सकूँगा। अत: तरू, हमारी पीड़ा एक समान है इसलिए हमें एक-दूसरे को सहयोग करना चाहिए।)

हमारे पूर्वजों-विद्वानों ने विभिन्न तर्क देते हुए स्त्री के चरित्र को संदिग्ध दृष्टि से देखा है एवं समाज को भी यही सन्देश देते आया है जिससे स्त्री के विषय में अनेक भ्रांतियाँ समाज में प्रचलित है। आचार्य भानुभक्त के शब्दों में "स्त्रीको चरित्रै छ नजानिसक्नू", चाणक्य तो यहाँ तक कहते हैं कि – "मायावी, साहसी, ढाँट, पटमूर्ख र लालची, हुन्छन् नारी स्वभावैले निठुरी अनि फोहरि।"[86] यह सब पितृसत्तात्मक व्यवस्था का ही रिफ्लेक्शन है। तारा इसी व्यवस्था की शिकार होती है।

प्रभा खेतान उन लेखनों पर सवाल उठाती हैं जो नायिका को केवल एक जैसी दृष्टि व कल्पना में गढ़कर रचते आए हैं। लेखिका को यह भी शिकायत है कि पुरुष लेखकों के उपन्यासों में नायिका का रूप क्यों ऐसा दिखाया जाता है। वे प्रिया के माध्यम से कहती हैं – "वह कौन सी नायिका है जो अभिमानिनी हो, स्वतन्त्र विचारों की हो, फिर भी संयमित हो, जिसमें सुरुचि भी हो, जिसकी बातों में मौलिक चिंतन हो, जो पुरुष के हर ज्यादती को हँसकर सह ले, फिर भी उसे हृदय से लगाकर आँखों में करुणा की बूँदें भी ले आए ? होगी कोई। बहुत-से उपन्यासों की नायिकाएँ ऐसी होंगी क्योंकि पुरुष लेखक की कल्पना ऐसे ही नायिका को गढ़ने में समर्थ है..."[87]

देह को उपभोग की वस्तु के रूप में देखने वालों की समाज में कभी कमी नहीं रही है। रूपवती कन्याओं को चुनकर देवदासी, सुंदर स्त्री को नगरवधू बना देना प्राचीन काल से देखा जाता रहा है। आधुनिक युग में भी सफेदपोश व्यक्तियों के भीतर छिपे हैवानियत की वजह से स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति में लिप्त हैं। कोई भी स्त्री स्वेच्छा से देह व्यापार में लिप्त नहीं होना चाहती है, कभी उसकी आर्थिक व्यवस्था तो कभी उच्चकांक्षा उसे इस आदिम व्यापार के दलदल में धकेल देती है। सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि

---

[86] प्रश्रि, मोदनाथ. (1990). ***नारी बंधन र मुक्ति.*** वाराणसी : कल्पवृक्ष प्रकाशन. पृष्ठ सं. 76.

[87] खेतान, प्रभा. (2016). ***छिन्नमस्ता.*** दरियागंज : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 190.

देह व्यापार में लिप्त स्त्रियाँ अथवा युवतियाँ समाज में रहकर भी समाज से अलग-थलग कर दी जाती है, सामाजिक मनुष्य से उनका सम्बन्ध मात्र देह तक सीमित होकर रह जाता है। वेश्याओं के सम्बन्ध में मधु कांकरिया 'आखिरी सलाम' में प्रश्न करती हैं कि – "संसार की किस फैक्टरी में ढाली जाती हैं ये वेश्याएँ। ये ढाली जाती हैं या समाज की खुशहाली अथवा परिवार की किलेबंदी के बाई-प्रोडक्ट के रूप में खुद-ब-खुद अंकुरित हो जाती हैं। शहरी औद्योगीकीकरण और आधुनिकीकरण की आँधी ने मानवी को सिर्फ देह में परिवर्तित कर दिया है। वह रह गई है मात्र शरीर.. एक स्थूल शरीर.. कलाहीन, रूपहीन, रूप की हाट में बिकता एक रुग्ण शरीर।"[88] साहित्य का समाज से सरोकार होने के कारण सामाजिक व्यवस्था में भी साहित्य का हस्तक्षेप दखा जाता है। लेखक मोहनदास नैमिसराय शबनम के माध्यम से सरकारी संस्थानों की आड़ में होने वाली कुकृत्य को उजागर करते हैं। "अनाथालय और चकले में हम औरतों की स्थिति एक जैसी रही है। फर्क केवल इतना है कि वहां सरकारी ग्राहक होते हैं और यहाँ प्राइवेट।"[89] इसी तरह 'आखिरी सलाम' उपन्यास में लेखिका ने कोलकाता के सोनागाछी रेड लाइट एरिया के अंधेरी गलियों का सीधा साक्षात्कार कराया है तथा सभ्य समाज की संवेदनहीनता और सफेदपोश दुनिया कठोरता को भी उजागर किया है।

हर समाज, हर युग में अपने-अपने ढंग से लोगों द्वारा वेश्याओं के जीवन पर प्रश्न उठाया जाता रहा है। वेश्यावृत्ति जैसी समस्याओं की मौजूदगी से समाज हमेशा से जूझता आ रहा है लोगों ने इसे कभी सभ्यता की जरूरत माना तो कभी कलंक बताया। 'आज बाजार बंद है' की भूमिका में उद्धृत वाक्य कि "अंबेडकर ने वेश्याओं से आग्रह किया था कि आप हमारे साथ धर्म परिवर्तन करें अथवा न करें यह मेरे

---

[88] कांकरिया, मधु. (2007) ***आखिरी सलाम***, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 59.
[89] नैमिशराय, मोहनदास. (2004). ***आज बाजार बन्द है***. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ सं. 34.

लिए अधिक महत्व का विषय नहीं है। परंतु मैं आग्रह करता हूँ यदि आप हमारे साथ आंदोलन में रहना चाहती हैं तो आपको अपना यह अपमानित जीवन त्यागना चाहिए।"[90]

पितृसत्तात्मक सोच द्वारा गढ़े गए दृष्टिकोण कि 'औरत ही औरत की दुश्मन होती है' के पीछे का वास्तविक कारण 'शाल्मली' उपन्यास में उजागर हुआ है। "हम औरतों का तो यह हाल है, बहू री! कि हमारा मन भी यदि किसी साथिन के लिए तपके है, तो उसे सहलाने की जगह हम उसमें कांटे चुभाते हैं। क्या करें जो मिलता है, वही तो देता है मनुष्य दूसरे को? ...अत्याचार सहते-सहते हम भी इतने निष्ठुर हो जाते हैं कि अत्याचार करना ही सीख पाते हैं। स्वयं मार खाते हैं और दूसरों को मारते हैं।"[91] "औरतें औरतों से मनमुटाव इन्हीं के चलते करती है वरना द्वार खड़ी गाय क्या जाने अपने काया को सिंह मारना।"[92] लेकिन स्त्रियाँ आज अपनी छवि स्वयं गढ़ रही हैं, अपनी परिभाषा खुद लिख रही हैं क्योंकि वे पुरुषवादी समाज के छद्म रूप से भली-भांति परिचित हो चुकी है। जूलियट मिशेल ने 'अ विमेन एस्टेट' में लिखा है कि "जब हमने अपनी समस्याओं पर विचार करना शुरू किया तब समझ में आया कि हम जिसे व्यक्तिगत समस्या मान रहे थे, उसकी जड़े तो सामाजिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं में थी।"[93]

अपनी अस्मिता को बचाने हेतु किये गए प्रयास व जद्दोजहद के बारे में 'कारागार' की नायिका चिंतन करती है कि "जति नै शुष्क देखिए पनि ती स्नेहामृतकहरु कुनै-कुनै नसामा सिन्चित भइरहेकै हुनुपर्छ। त्यही शेष रहेका स्नेहामृतहरुले नै बदनामी र अपमानका मन्थनबाट उब्जेका सारा विषलाई अमृतमय तुल्याएको छ - मेरो अस्मितालाई बचाएको छ।"[94] (अर्थात् भले ही मैं निर्जीव लगूँ, लेकिन मेरे भीतर, चेतना के धरातल पर कुछ स्मृतियाँ ऐसी बची हैं जो मुझे दुनिया द्वारा दिए गए दाग तथा अपमान

[90] नैमिशराय, मोहनदास. (2004). ***आज बाजार बन्द है***. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. भूमिका.

[91] शर्मा, नासिरा. (2018). ***शाल्मली***. नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन. पृष्ठ सं. 93.

[92] वही. पृष्ठ सं. 94.

[93] दत्ता कोल्हारे. (2018) ***हिंदी उपन्यास : इक्कीसवीं सदी का द्वितीय चरण***. स्वराज प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ सं. 23.

[94] गिरी, वानीरा. (२०६६). ***कारागार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 97.

का सामना करने हेतु प्रेरित करती है। ये स्मृतियाँ सारे विष को अमृत में बदलने की शक्ति रखता है एवं मेरे अस्मिता की भी रक्षा करता है।)

सदियों से हमारे सामाजिक व्यवस्था ने एक पत्नी को अपने पति की सेवा तथा उसे खुश व संतुष्ट रखने हेतु शिक्षा दी है। जीवनसाथी के रूप में प्रिया भी नरेन्द्र को खुश रखने का प्रयास करती है, लेकिन नरेंद्र के व्यक्तित्व में पितृसत्ता की जड़ें समाया हुआ है। उसमें स्त्री की यौनिकता को नियंत्रण करने वाली मानसिकता निहित है। "पहले एक घंटा तैयार होने में, फिर डरते-डरते पतिदेव के सामने, जो कुछ-न-कुछ खामी निकाले बिना नहीं मानते। सारे रास्ते झकझक - शऊर नहीं...सलीका नहीं...गहने क्यों नहीं पहने ? यह कार्टियरवाली घड़ी का क्या अचार डालोगी ? मोटी होती जा रही हो !"[95] प्रस्तुत उपन्यास में अधिकतर प्रसंगों में पुरुषवादी मानसिकता का भरपूर विरोध तथा आक्रोश व्यक्त हुआ है- उपन्यासकार कहती हैं "शायद वे मठाधीश सोचते हों कि एक औरत लड़कर कुछ हासिल कर लेती है तो दूसरी औरतें भी तो उन्हीं रास्तों पर चलेंगी। प्रिया के सफलताओं को देखते हुए नरेन्द्र के भीतर का पुरुष भयभीत होता है, पुरुषवादी मानसिकता यह सह नहीं पाता कि कोई स्त्री, बिना किसी पुरुष के सहायता के कैसे सफल हो सकती है ? इसलिए प्रिया कहती है – "अपने पैरों पर खड़ी एक औरत को स्वीकार कर पाने में अभी हमारे समाज को समय लगेगा।"

जब भारत में गांधी जी के नेतृत्व में देश की महिलाओं ने सबसे बड़ी मात्रा में स्वाधीनता संग्राम के आंदोलन में हिस्सा लिया था। अतः 1920 से 1930 ई. के बीच गांधीवादी नारीवाद विकसित रूप ले रहा था। स्त्री मुक्ति का प्रश्न भारत के आजादी के प्रश्न के साथ जुड़ने लगा था। इसका प्रभाव नेपाल के राजनीतिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि में भी देखा जाता हैं। सन् 1946 के ऐतिहासिक मजदूर आंदोलन में नेपाल की महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है और स्त्री का विराट एवं निडर रूप श्रीमती दिव्या

[95] खेतान, प्रभा. (2016). ***छिन्नमस्ता***. दरियागंज : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 176.

कोइराला के माध्यम से देखा जा सकता है वे कहती हैं "लाज नहीं आती? बड़े अफसर हो, संसार के किसी सभ्य देश के नगण्य नागरिक के सामने भी सिर ऊंचा कर सकोगे कभी? स्त्रियों से बात करना नहीं जानते कैसी शिक्षा दी है तुम्हारे राणा पिता ने?"[96]

'फिरोज़ी आँधियाँ' नेपाल में लोकतंत्र बहाल होने के बाद की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों तथा मधेसी द्वंद्व को उजागर करने के साथ ही समाज में बलात्कार से पीड़ित स्त्रियों के प्रति सामाजिक व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को भी उजागर करता है। सेना द्वारा माओवादियों का साथ देने के संदेह मात्र पर गाँव की महिलाओं का बलात्कार किया जाता है तथा इसका प्रतिफल उन स्त्रियों को यूँ मिलता है - "शिकार हुई औरतें कटे पेड़ की तरह रातभर पड़ी अपने भाग्य पर रोती रहीं.. । पूरी रात गरियाते कोसते गुजर गई और सवेरा होते-होते रमेस ने अपनी पत्नी को यह कह के झोंटा पकड़ कर बाहर कर दिया कि – 'निकरि जा हमरे घरेस। अब तै जूठन का लई कै हम का करबै ? उधर सुभान ने भी तीन लफ्ज बोल कर रफा दफा कर दिया - ....तिलाक.... तिलाक....तिलाक.... । लखैया की बेवा भाभी जाने कौन समय में घर से बाहर निकल गई और अपने बच्चों समेत राप्ती में छलांग मार दी। रामसमुझ की साली को घर वालों ने बड़ी मशक्कत से समझाया और कहा मुँह बंद रखे वर्ना जो गति रमेस और सुभान की पत्नी की हुई है वही उसकी होने वाली है।"[97]

समाज की यही विडम्बना रही है कि चाहे प्रेम-प्रसंग हो या लिव-इन-रिलेशनशिप हमेशा एक औरत को ही दोष दिया जाता है। नम्रता अरूणा की आवाज बनती है – "के यस्ता कुरामा आइमाईको मात्र कसूर देखिन्छ? लोग्ने मान्छेको केही दोष देखिंदैन? ...तपाईंहरूको छलफल र विचारको थाल्नी नै एकपक्षीय छ भने यसको अंत निष्पक्ष तवरले हुन्छ भनेर कसरी मान्नु?"[98] (क्यों केवल स्त्रियों को ही

---

[96] रेणु, फणीश्वरनाथ.(1999). ***नेपाली क्रांति कथा.*** इलाहबाद: राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 17.

[97] निहाँ, हुस्न तबस्सुम. (2018). ***फिरोजी आँधियाँ***. दिल्ली : मनीष पब्लिकेशन. पृष्ठ सं. 42-43.

[98] चांपागाईं लोकनाथ उपाध्याय. (दू. सं. 2018). ***आँधी***. ग्राफिक्स प्रिंटर्स : सिलगढ़ी. पृष्ठ सं. 95.

कठघरे में खड़ा किया जाता है? क्या पुरुषों का कोई दोष नहीं होता? आप लोगों के ऐसे पक्षपाती विचारों से सही निर्णय आ पाएगा, ये कैसे मानूं?) जब महानगरों में स्त्री के स्वायत्त अस्तित्व के प्रति सम्मान का कोई विशेष भाव नहीं है तो कस्बों और गाँवों में स्त्री की स्वतंत्रता के दावे का अर्थ ही क्या है? सुगंधा जैसी उन्मुक्त स्त्री यदि कस्बाई माहौल में किसी पुरुष के साथ सह जीवन अपनाती है तो कथित सभ्य समाज की आंखों की किरकिरी बन जाती है। "दरअसल हमारा समाज हर कदम पर दोहरेपन को जीता है, जहाँ प्रत्येक को अपना लाभ वैधानिक, अपनी सफलता न्यायोचित, अपना जीवन सामाजिक लगता है और दूसरे का सब कुछदोषपूर्ण दिखाई पड़ता है।"[99]

'माइतघर' के सुबेदार्नी और रत्ना के मन में एक खुबसूरत-सा सपना पल रहा होता हैं, लेकिन समय के चक्रवात ने इनके सपनों को छितर-पितर कर दिया है। इसलिए दोनों अपने-अपने दुःख में, पीड़ा में मूर्छित पड़े रहते हैं - "ती दुबै नारीलाई एउटै विपत्तिले, एउटै बेदनाले तथा एउटे सन्तापले छोपेको रहेछ।"[100] भाग्य के आगे उपन्यासों के सभी पात्र समर्पित दिखते हैं - "संसारको यही चलन! विवाहित छोरी माइत घरमा बस्न हुन्न, घर जानुपर्छ, त्यही चलनमा तिनीहरू चल्छन्।"[101] अर्थात् संसार की यही रीत है, विवाहित स्त्रियों को मायके में नहीं रहना चाहिए। अत: वे भी इसी रीति का पालन करते हैं।

'कारागार' की नायिका सीता की तरह नहीं होना चाहती। वह कहती है कि सीता ने कभी खुद कोई निर्णय नहीं लिया। उन्होंने परिस्थितिवश ही निर्णय लिया तथा राम की परछाई बनकर उनके प्रति समर्पित हुई। "सीताले कहिले कुनै निर्णय गरेकी थिएनन् परिस्थिति र रामको सदिच्छामा समर्पित हुँदै गइन् तिनी - हजारौँहजारौँ धोबीहरूको अघि मुण्टो निहुराएकी छैन मैले, आफन्त भनाउँदा रावणहरुको पिपासालाई पञ्छाएर एक्लै बसेकी छु - हरेक कुरा राम्रो-नराम्रो जे जस्तो होस् आफैँले निर्णय गरेकी छु।

[99] दत्ता कोल्हारे. (2018). ***हिंदी उपन्यास : इक्कीसवीं सदी का द्वितीय चरण***. स्वराज प्रकाशन. नई दिल्ली. पृष्ठ सं. 67.
[100] बाङदेल, लैनसिंह. (२००६). ***माइतघर.*** काठमांडो : रत्न पुस्तक भण्डार. पृष्ठ सं. 15.
[101] वही. भूमिका.

यस अर्थमा म सीता होइन, निर्णायक हुँ।"[102] अर्थात् वह कहती हैं कि मैं न परिस्थिति के आगे झुकी और न ही मैंने अपने निर्णय बदले। चाहे सही फैसला लिया हो या गलत, लेकिन खुद लिया। स्वयं के लिए स्वयं द्वारा निर्णय लेना महत्वपूर्ण होता है। इस दृष्टि से मैं सीता नहीं, बल्कि निर्णायक हूँ।

'युगसन्धि' में पुनर्विवाह को सुधारात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। तारा नाम की विधवा स्त्री का पुनर्विवाह कराकर लेखिका नए युग की शुरूआत करती हैं। पुरुषप्रधान समाज की मानसिकता यह रही है कि वह बल का प्रयोग करके औरत पर काबू पाना चाहता है। लक्ष्मी के मन को विशेषकर शिक्षित परिवार के रुढ़िवादी मानसिकता के कारण अधिक चोट पहुँची है। "समाजमा भएका प्रत्येकवटी अवहेलित, निरक्षर, निरुपाय नारीहरूले भोगेको यातनाभन्दा एउटी शिक्षिता नारीले यस्तो शिक्षित परिवेशमा एउटा वकील स्वामीद्वारा गरेको लान्छना अझ जघन्य अन्याय हो।"[103] 'अर्की आइमाई' की तारा का भी मन चोटिल है। उसके दुःख को निम्न वाक्य में अभिव्यक्ति मिलती है - "विवाह भयो, अनौठो विवाह भयो, "न कोही जन्ती, न कुनै बाजा, न आँगनीमा जग्गे, न सिउँदोमा सिन्दुर, न गलामा पोते।"[104] (शादी हुई, लेकिन बिना बैंड, बाजा, बारात के। न मण्डप सजा, न मांग भरी गयी और न ही पोते (माला) पहनाया गया)

'युगसन्धि' की हरिप्रिया परम्परावादी पुरुषवादी सोच का प्रतिनिधित्व करती है। उसके द्वारा कहे वाक्यों में यह परिलक्षित होता है – "यसरी छाड़ा छाडेका छोरीले घर खाँदैनन्। छोरी मान्छेलाई जति सक्यो घरमा थुन्नुपर्छ।"[105] अर्थात् इस प्रकार बाहर घूमने वाली लड़कियां घर तोड़ती है। लड़कियों को जितना हो सके घर में ही रखना चाहिए लेकिन लक्ष्मी प्रतिकार करती है। वह समाज की रुढ़िवादी तथा दकियानूसी सोच का खंडन करने की हिम्मत रखती है और अंततः सफल भी होती हैं।

[102] गिरी, वानीरा. (२०६६). ***कारागार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 118.
[103] देवी, नयाँ. (2002). ***युगसन्धि***. श्री जयनारायण लुइँटेल : तेजपुर. पृष्ठ सं. 103.
[104] http://www.khasskhass.com
[105] देवी, नयाँ. (2002). ***युगसन्धि***. श्री जयनारायण लुइँटेल : तेजपुर. पृष्ठ सं. 05.

अत: उपरोक्त हिंदी एवं नेपालीके चयनित उपन्यासों में स्त्री-चेतना का जागृत रूप किसी न किसी पात्र में देखा जा सकता है विशेषकर उपन्यास की नायिकाओं पर। देर ही सही लेकिन तारा को पुरुषों के छल का अभिप्राय समझ में आ जाता है। आशुतोष के बार-बार कोशिश करने पर भी तारा उसका यकीन नहीं करतीं बल्कि उससे सिंदूर का हक़ माँगती है क्योंकि वह जानती है कि आशुतोष उसके शरीर के प्रति लालायित है। अनगिनत संघर्षों के बाद ये नायिकाएँ अपने लक्ष्य तक पहुँचती ही हैं। हालातों से समझौता करने से अच्छा वे संघर्षमय जीवन को चुनती हैं। प्रिया भी एक महत्वाकांक्षी नारी है, हर पीड़ा को सहते हुए वह अपने जीवन को नया अर्थ देना चाहती है। वह अपनी एक अलग पहचान स्थापित कर पति नरेन्द्र और पुरुषवादी मानसिकता को चुनौती देते हुए स्वतंत्र जीवन जीती है। सीमित दायरों में जकड़े रहने के बावजूद प्रिया में ऐसी जिजीविषा का जन्म होता है जो उसे और उसके स्वतंत्र विचारों को उड़ान भरने के लिए काफी होते हैं।

प्रिया, पार्वती, लक्ष्मी, शाल्मली, तारा, सुनंदा, सानी, मधुश्री आदि नारियाँ स्त्री-चेतना के प्रत्येक पहलुओं से परिचित होते हुए एवं स्त्री-मुक्ति तथा स्वतंत्रता के विचारों से ओत-प्रोत हैं। इनमें सामाजिक-चेतना, आर्थिक-चेतना एवं स्त्री-चेतना की भूख दिखती हैं। अतएव इन नायिकाओं के जीवन संघर्षों और उपलब्धियों से प्रेरित होकर स्त्रियाँ अपना भविष्य गढ़ेगी।

***

उपसंहार

हिंदी एवं नेपाली उपन्यास साहित्य प्रारम्भ से समाजोन्मुख तथा मानवतावादी दृष्टिकोण से ओत-प्रोत रहे हैं इसमें दोमत नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले और बाद में स्त्रियों की स्थिति को लेकर हिंदी में कई साहित्य लिखे गए लेकिन उनमें स्त्रियों की दशा और दिशा आज के सन्दर्भ से बिलकुल भिन्न थीं क्योंकि तत्कालीन परिस्थितियाँ स्त्रियों के अनुकूल नहीं थी। समाज में पुरुषवादी वर्चस्व व्याप्त था। प्राय: सुधारवादी दृष्टिकोण से ही स्त्रियों के बारे में साहित्य/उपन्यास लिखा जाता था एवं कर्तव्यपरायण स्त्रियों की छवि "आँचल में है दूध और आँखों में पानी" इन्हीं वाक्यों में समाहित होते थे। महिला लेखिकाओं ने अपने साहित्य सृजन को विस्तृत किया, समय के सभी चुनौतियों का सामना किया, स्वयं के द्वारा भोगे हुए यथार्थ को प्रधानता के साथ उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया तथा पुरुषों द्वारा गढ़े गए सीमित एवं मर्यादित छवि को तोड़ने में सफलता प्राप्त की।

हिंदी उपन्यास साहित्य आज 'परीक्षागुरु' से आगे बढ़ते हुए 'निर्मला', 'सुनीता', 'वचन का मोल', 'सूरजमुखी अँधेरे में', 'बेघर', 'मुझे चाँद चाहिए', 'कठगुलाब', 'छिन्नमस्ता' आदि उपन्यासों से होते हुए मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओं को छूते हुए स्त्री-विमर्श के अर्थ में विद्यमान है क्योंकि स्त्री-विमर्श ने स्त्रियों को खुलकर बोलने का स्पेश दिया है। हजारों वर्षों से दुनिया की आधी आबादी केवल सुनती आ रही थीं। कभी धार्मिक अंधविश्वास, तो कभी राजनैतिक लाभ, कभी रूढ़ीवादी परम्परा के नाम पर स्त्रियों को बोलने से रोका जा रहा था लेकिन धीरे-धीरे युग बदले, परिस्थितियाँ भी बदली, अब स्त्रियाँ साहित्य में चित्रित अपनी अवस्था से संतुष्ट नहीं है। वह दीवार के किसी कोने में पति के एक आज्ञा के लिए खड़ी रहना नहीं चाहती बल्कि वह पति के हर निर्णय में अपनी भी भागीदारी चाहती है। उपन्यासों के इतिहास को देखा जाए तो महिला उपन्यासकारों के संघर्षों को भुलाया नहीं जा सकता। पुरुषप्रधान समाज ने देर ही सही महिलाओं के लेखन को स्वीकार किया। महिला उपन्यासकारों की क्षमता, आवाज़, अनुभव तथा यथार्थ को पुरुष साहित्यकारों ने भी एहसास किया है जिसे नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता। आज संचार क्रांति के युग में भूमंडलीकरण, आर्थिक उदारीकरण, बाजारवाद एवं पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव के बीच हिंदी व नेपाली उपन्यासकारों

ने बड़े ही सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन के साथ मानव जीवन की विसंगतियों और समस्याओं को उजागर करते हुए यथार्थ के धरातल पर सींचने का सफल प्रयास किया है।

नेपाली उपन्यास की पृष्ठभूमि पुराण, महाभारत, नीति, उपदेशमूलक कथा, नाटक आदि विभिन्न ग्रन्थों के अनुवाद से तैयार होते हुए अन्य स्रोत के रूप में हिन्दी, फ़ारसी, उर्दू, अरबी, बंगाली, अंग्रेजी आदि के उपन्यासों से निर्मित होती है। नेपाली उपन्यास 'रूपमती', 'माइतघर', 'पल्लो घरको झ्याल', 'उसले रोजेको बाटो', 'पारिभाषित आँखाहरू', 'स्वास्नीमान्छे' 'अथाह', 'भोलीको प्रतीक्षा' आदि से होते हुए अपने विकास की ओर अग्रसर है।

नेपाली उपन्यास के इतिहास को देखा जाए तो अनेक महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों के माध्यम से उपन्यास के विकास क्रम में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। प्रमिला उपाध्याय एक ऐसा नाम है जिन्होंने सर्वप्रथम जासूसी उपन्यास की रचना की। अन्य माहिला उपन्यासकारों में प्रेमा शाह, भागीरथी श्रेष्ठ, गीता केशरी, वानिरा गिरी, विंध्या सुब्बा, भारती खरेल, नीलम कार्की निहारिका, पुण्यरश्मि खतिवडा, इन्दिरा प्रसाई, पुष्पा राई के उपन्यासों में मानव तस्करी, पारिवारिक विघटन, नारी अशिक्षा, नारी उत्पीड़न, मानसिक द्वंद्व, स्त्री-पुरुष द्वंद्व, आदि का चित्रण देखने को मिलता है। पारिजात साठ की दशक में अकेली स्त्री रचनाकार थीं, जो लगातार पितृसत्तात्मक दबावों के बावजूद स्वतंत्र लेखन कर रही थीं, उन्होंने अपने समय की चुनौतियों का डटकर सामना किया है, शुरूआती दौर में उन्होंने नारी-शक्ति का प्रदर्शन करते हुए नारी के ऊपर होने वाले असमान व्यवहार पर विरोध जताया। वे कहती हैं कि तुम जितना कर सकते हो/मैं भी उतना कर सकती हूँ/तुम जितना मेहनत कर सकते हो, पसीना बहा सकते हो/तुम्हारी सारी अनुभूति, मेरी भी अनुभूति है/लेकिन इतिहास ने आज मुझे जहाँ लाकर छोड़ दिया है/तुम तो मुझसे कोसों दूर आगे निकल गए हो। इस प्रकार पारिजात स्त्री-पुरुष असमानता का विरोध करते हुए स्त्री-चेतना को जगाने तथा समाज को नई दिशा प्रदान करने में बड़ी भूमिका निभाती है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में चयनित उपन्यासों के पात्रों में द्वंद्व प्रतीत होता है - विशेषकर पुरुष और स्त्री में। स्त्री एवं पुरुष के सम्बन्ध में महादेवी वर्मा का कथन है कि पुरुष को यदि ऐसे वृक्ष की उपमा दी जाए जो अपने चारों ओर के छोटे-छोटे पौधों का जीवन रस चूस-चूस कर आकाश की ओर बढ़ता जाता है तो स्त्री को ऐसी लता कहना होगा जो पृथ्वी से बहुत थोड़ा सा स्थान लेकर अपनी सघनता में बहुत-से-अंकुरों को पनपाती हुई उस वृक्ष की विशालता को चारों ओर से ढक लेती है। अत: स्त्री-पुरुष को अपने सम्बन्ध पर पुन: चिंतन करना आवश्यक हो जाता है। उन्हें एक-दूसरे पर राज करने की अपेक्षा एक-दूसरे के सहयात्री बनना चाहिए। शाल्मली इसी सोच की पक्षधर है। वह रिश्ते को यूँ ही तोड़ना नहीं चाहती बल्कि आत्मसम्मान के साथ पति के साथ खुशहाल जीवन चाहती है।

कुछ लेखिकाओं ने उपन्यासों में स्त्री के अंतर्द्वंद्वों को भी उभारा हैं। वे पितृसत्तात्मक समाज का पूर्णत: विरोध नहीं कर पाती हैं और न ही धार्मिक कट्टरवाद या बाजारवाद पर चोट। उनके उपन्यासों में स्त्री पात्र या तो परम्परा या फिर आधुनिकता के बीच झूलती-सी दिखती है। नासिरा शर्मा कृत 'शाल्मली' में बहुत हद तक इस प्रकार के द्वंद्वों को देखा जा सकता है। नेपाली उपन्यासों को देखा जाए तो यहाँ भी पूर्ण रूप से धर्म, समाज, संस्कृति, परम्परा को ख़ारिज नहीं किया गया है। 'आँधी' एवं 'माइतघर' में संस्कृति एवं परम्परा को साथ लेकर स्त्री-चेतना की नींव गढ़ी गई है। भूमंडलीकरण के दौर में स्त्रियों को अधिक अवसर प्राप्त हुए हैं उसके जीवन में पहले से अधिक स्वतंत्रता आयी है लेकिन साथ ही वह नए ढंग से वस्तु भी बनती जा रही है। पितृसत्ता अब बाज़ार के रूप में स्त्रियों को शिकार बना रही है जबकि स्त्रियाँ इस भ्रम में जीती हैं कि वे मुक्त हो रही हैं। इक्कीसवीं सदी का हिंदी एवं नेपाली उपन्यास ऐसे साजिशों से परिचित है।

किसी भी देश व समाज की उन्नति वहाँ के स्त्रियों की स्थिति पर निर्भर रहता है इस बात को हम भली-भांति जानते हैं। वैदिक काल, बौद्धकाल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल में असंख्य नारियों ने अपने-अपने क्षेत्रों में, काल में प्रचलित तत्कालीन रूढ़िवादी मान्यताओं का खंडन किया तथा यह सन्देश दिया कि स्त्रियों के लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं है। स्वतंत्रता एवं सुरक्षा के लिए स्त्रियों ने

जो बीड़ा उठाया है, उठा रही है, संघर्ष कर रही है, अपने तथा भविष्य के लिए मार्ग बना रही है, यह सिलसिला अद्यतन जारी है। अक्क महादेवी, मीरा, योगमाया, सावित्रीबाई फुले से होते हुए गाँधी, अम्बेडकर, प्रेमचंद, कृष्णा सोबती, मैत्रेयी पुष्पा, मन्नू भण्डारी, चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान, कमला भसीन, मंगला देवी सिंह, अनुराधा कोइराला आदि ने हजारों वर्षों से मूक बने रहने को विवश नारी जाति के लिए आवाज उठाया। हिंदी एवं नेपाली के चयनित उपन्यासों में भी उपन्यासकारों ने कई ऐसे पात्रों का सृजन किया है जिसमें स्त्री-चेतना को विकसित करने वाले तत्व मिलते हैं।

प्रस्तुत शोध में यह देखा गया है कि हिंदी एवं नेपाली उपन्यास अपने-अपने राहों को निर्मित करते हुए समय के प्रवाह के साथ बहते जाते हैं। तृतीय अध्याय में जहाँ सिमोन बाजारवाद के चपेट में आती स्त्रियों को सचेत करती हैं तो दूसरी तरफ आगे जाकर इसी का विस्तार रूप एवं निदान प्रभा खेतान अपने उपन्यास 'छिन्नमस्ता' की प्रिया के माध्यम से करती हैं। वह कहती है कि स्त्रियों को दूसरों को संतुष्ट करने में समय गंवाने से बेहतर है आत्मनिर्भर बनने के लिए कदम बढ़ाना चाहिए। साहित्य का वास्तविक अर्थ ही होता है कि वह तत्कालीन समस्याओं से रूबरू करवाएं तथा उससे निकलने का उपाय भी बताएं। चयनित उपन्यासों के माध्यम से भी ये उद्देश्य परिलक्षित होते देखे जा सकते हैं।

भारत और नेपाल पड़ोसी राष्ट्र होने के कारण उनके साहित्यों, संस्कृतियों, भाषाओं एवं रहन-सहन में कई समानताएँ देखी जाती है। मनुष्य एक-दूसरे के साथ विचारों का आदान-प्रदान करता तो है ही साथ ही भाषा, संस्कृति एवं साहित्य आदि के जरिए भी तुलना करता है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति साहित्य में भी देखी जाती है। भौगोलिक रूप से नेपाल भारत से छोटा प्रदेश है। भारत में होने वाली साहित्यिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक गतिविधियों का प्रभाव समय-समय पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से नेपाल में भी देखा जाता रहा है। आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण नेपाल के नागरिक विदेशों की तरफ अधिक पलायन करते हैं जिसके कारण उनके व्यवहार में सम्बन्धित देशों की संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, बोली-भाषा का अनुकरण देखा जा सकता है। भारत एक ऐसा

राष्ट्र है जिसका नेपाल के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध है। भारत का वाराणसी शहर प्रारम्भ से ही शिक्षा का उद्गम स्थल रहा है जहाँ नेपाल के प्रबुद्ध वर्ग कालांतर से शिक्षा ग्रहण करते आ रहे हैं। अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि भारत का नेपाल के अतिरिक्त इतनी घनिष्ठता किसी अन्य देश के साथ नहीं है। नेपाल में आर्थिक चुनौती एक जटिल समस्या के रूप में हमारे सामने विद्यमान है। इसलिए आर्थिक रुप से कमजोर होने के कारण वहाँ की स्त्रियों का संघर्ष भारत या अन्य देशों से भिन्न हो जाता है लेकिन जब हम उनके साहित्यों में चित्रित नारी की ओर दृष्टि डालते हैं तो वहाँ पर बहुत-सी समानताएँ देखने को मिलती है। 'छिन्नमस्ता' की प्रिया, 'आँधी' की नम्रता, 'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा, 'आज बाज़ार बंद है' की पार्वती, 'फिरोज़ी आँधियाँ' की मधुश्री से लेकर, 'अर्की आइमाई' की तारा, कारागार की नायिका, 'शाल्मली' की शाल्मली और 'युगसन्धि' की लक्ष्मी आदि का व्यक्तित्व एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी उनके दर्द, उनकी पीड़ाएँ, बेबसी, छटपटाहट एवं मुक्ति की चाह एक जैसी है। सभी स्त्री पात्र मानसिक रूप से ज़ख्मी हैं, वे पुरुषवादी मानसिकता की शिकार होती हैं बावजूद उनकी चेतना जागृत है, वे हालातों से समझौता नहीं करतीं बल्कि दुगने उत्साह एवं निडरता के साथ संघर्ष करती हैं तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देती हैं।

हिंदी और नेपाली उपन्यासों में स्त्री-चेतना को लेकर कई उपन्यास लिखे गए हैं, लिखे जा रहे हैं। समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था पहले भी थी और आज भी है लेकिन उसका स्वरूप बदला है। कुछ बिंदुओं के आधार पर भारतीय एवं नेपाली समाज में स्त्रियों की स्थिति एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न माना जाता है तथा उनके सामाजिक व्यवस्था में अंतर देखा जाता है। उदाहरण के तौर पर भारतीय समाज में यदि पुरुष द्वारा अपने पत्नी को छोड़ा या धोखा दिया गया हो तो समाज इसमें दखल देता है, लेकिन वहीं नेपाली समाज में इस प्रकार की घटना को महत्व नहीं दिया जाता है क्योंकि वहाँ बहु-विवाह को कहीं न कहीं सामाजिक मान्यता प्राप्त है। नेपाली के चयनित उपन्यासों में अधिकतर इसी समस्या को देखा गया है। वैसे तो दोनों समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था मौजूद है लेकिन देश की आर्थिक स्थिति खस्ताहाल होने के कारण नेपाल के नारियों की स्थिति अधिक जटिल है। आर्थिक

विपन्नता के कारण नेपाली समाज की स्त्रियाँ स्वच्छंद जीवन-यापन भी करती हैं क्योंकि घर-परिवार के जीविका के लिए उन्हें भी खर्चा का वहन करना पड़ता है। वहाँ का पुरुष वर्ग अर्थोपार्जन के लिए महिलाओं को भी देश-विदेश तक भेजने के लिए तैयार होते हैं। 'अर्की आइमाई' में सावित्री को परिवार का सारा बोझ लिए अमेरिका जाते हुए देखा जा सकता है।

अत: हिंदी एवं नेपाली के चयनित उपन्यासों में निहित स्त्री चेतना के प्रगति में कई बाधाओं को चिन्हित किया गया है। जैसे – अशिक्षा, अंधविश्वास, वेश्यावृत्ति, बहु-विवाह। पितृसत्तात्मक सोच की शुरुआत चूँकि हमारे घरों से ही होती है इसलिए सर्वप्रथम 'स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि बनायी जाती है' इस कड़ी को तोड़ना होगा तभी 'आज बाजार बंद है' की पार्वती कोठे की दल-दल से निकल पाएगी, 'छिन्नमस्ता' की प्रिया सही मायनों में उन्मुक्त नारी कहलाएगी, 'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा और कारागार की नायिका अपने देह पर वास्तविक एवं पूरा-पूरा अधिकार जता पाएँगी, 'आँधी' की नम्रता अंधविश्वास के जकड़न से मुक्त हो पाएगी, 'अर्की आइमाई' की तारा को अपने अंतिम गंतव्य के लिए भटकना नहीं पड़ेगा, 'माइतघर' की सानी को मायके की जरूरत नहीं पड़ेगी तथा 'फिरोज़ी आँधियाँ' की मधुश्री का गाँव की सारी औरतों को शिक्षित करने का सपना पूरा होगा।

***

संदर्भ सूची

आधार ग्रंथ

हिन्दी आधार ग्रंथ

- नैमिशराय, मोहनदास. (2004). ***आज बाजार बन्द है.*** नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- खेतान, प्रभा. (2016). ***छिन्नमस्ता***. दरियागंज : राजकमल प्रकाशन.
- सिंह, शरद. (2017). ***कस्बाई सिमोन***. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन.
- शर्मा, नासिरा (2018). ***शाल्मली***. नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन.
- निहाँ, हुस्न तबस्सुम. (2018). ***फिरोजी आँधियाँ***. दिल्ली : मनीष पब्लिकेशन.

नेपाली आधार ग्रंथ

- बाङ्देल, लैनसिंह. (२००६). ***माइतघर.*** काठमांडो : रत्न पुस्तक भण्डार.
- गिरी, वानीरा (२०६६). ***कारागार***. ललितपुर : साझा प्रकाशन.
- निहारिका, नीलम कार्की. (वि. सं. २०७०). ***अर्की आईमाई***. भक्तपुर : शब्दहार क्रियशंस.
- श्रीमती नयादेवी.(2002). ***युगसन्धि.*** तेजपुर : श्री जयनारायण लुइंटेल.
- चांपागाई लोकनाथ (दू. सं. 2018). ***आँधी***. ग्राफिक्स प्रिंटर्स : सिलगढ़ी.

***

हिन्दी सहायक ग्रंथ

- शर्मा, रामविलास. (1952). ***प्रेमचंद और उनका युग.*** नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- माचवे, डॉ. प्रभाकर. (1984). ***भारतीय उपन्यास कथाकार.*** कलकत्ता : भारतीय भाषा परिषद.
- नगेन्द्र. (1985). ***तुलनात्मक साहित्य.*** नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस.
- गुप्त, परमेश्वरीलाल. (1990). ***शोध और समीक्षा.*** वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन.
- बांदिवडेकर, चन्द्रकान्त. (1993). ***उपन्यास स्थिति और गति.*** दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- पाण्डे, मृणाल. (1996). ***परिधि पर स्त्री.*** दरियागंज, नई दिल्ली:राधाकृष्ण प्रकाशन.
- ठाकुर, डॉ. उषा (1998). ***हिन्दी और नेपाली साहित्य के प्रतिनिधि हस्ताक्षर.*** नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- रेणु, फणीश्वरनाथ.(1999). ***नेपाली क्रांति कथा.*** इलाहबाद: राजकमल प्रकाशन.
- शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. (2002). ***हिंदी साहित्य का इतिहास***. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.
- राय, गोपाल (2002). ***हिंदी उपन्यास का इतिहास.*** नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- वोल्स्टनक्राफ्ट, मेरी. (2003). ***स्त्री-अधिकारों का औचित्य-साधन.*** नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- गीतांजली. (2004). ***माई.*** नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- खेतान, डॉ. प्रभा. (2004). ***स्त्री उपेक्षिता.*** नई दिल्ली : हिंदी पॉकेट बुक्स.
- भल्ला, विन्. (2004). ***हिन्दी उपन्यास और अस्तित्ववाद.*** दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन.
- किरण, डॉ. ज्योति. (2004). ***हिंदी उपन्यास और स्त्री-जीवन.*** दिल्ली : मेधा बुक्स.
- कस्तवार, रेखा.(2006). ***स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ.*** नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- शर्मा, डॉ० विनयमोहन. (दूसरा संस्करण 2006). ***शोध प्रविधि.*** दिल्ली : नेशनल पेपरबैक्स प्रकाशन.

- राय, गोपाल. (2006). ***उपन्यास की संरचना.*** नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- प्रकाश, सरोज. (2006). ***स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के आईने में मोहन राकेश.*** नई दिल्ली : स्वराज प्रकाशन.
- वर्मा, डॉ० हरिशचन्द्र. (2006). ***शोध प्रविधि.*** पंचकुला, हरियाणा : साहित्य आकदमी.
- सिंह, विजयपाल. (तृतीय संस्करण 2007) ***हिन्दी अनुसंधान.*** दिल्ली : लोक भारती प्रकाशन.
- सिंह, विजय बहादुर. (2007). ***उपन्यास : समय और संवेदना.*** नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- राजकिशोर. (2007). ***स्त्री पुरुष : कुछ पुनर्विचार.*** नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- जबीन, डॉ. जाहिदा. (2007). ***नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में संवेदना एवं शिल्प.*** दिल्ली : निर्मल पब्लिकेशन्स.
- कांकरीया, मधु. (2007). ***आखिरी सलाम***. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- गीतांजलि. (2007). ***तिरोहित.*** इलाहाबाद : राजकमल प्रकाशन.
- प्रकाश, अलका. (2007). ***स्त्री चेतना के आयाम.*** इलाहबाद : लोकभारती प्रकाशन.
- वर्मा, महादेवी. (2008). ***श्रृंखला की कड़ियाँ.*** इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.
- सिंह, बच्चन. (2008). ***उपन्यास का काव्यशास्त्र.*** नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन.
- कुमार, राधा. (2009). ***स्त्री संघर्ष का इतिहास : 1800-1990.*** नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- गुप्ता, डॉ. कमला. (2008). ***मध्यकालीन उत्तर भारत में हिन्दू महिलाओं की सामाजिक स्थिति***. पटना : बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी.
- राय, गोपाल. (2009). ***हिंदी उपन्यास का इतिहास.*** नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- सिंह, शरद. (2010). ***पिछले पन्ने की औरतें.*** नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन.
- काँकरिया, मधु. (2010). ***सेज पर संस्कृत.*** नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.

- चौधुरी, इन्द्रनाथ. (2010). ***तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य.*** नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- अग्रवाल, पृथ्वीकुमार. (2010). ***भारतीय संस्कृति की रूप रेखा.*** वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन.
- मालती, डॉ. के. एम. (2010). ***स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य***, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- अरोड़ा, सुधा. (2010). ***एक औरत की नोटबुक.*** कोलकाता : मानव प्रकाशन.
- यादव, राजेन्द्र. खेतान, प्रभा एवं दुबे, अभय कुमार. (2010). ***पितृसत्ता के नए रूप : स्त्री और भूमंडलीकरण.*** नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- श्रीधरम. (2011). ***स्त्री स्वाधिनता का प्रश्न और नागार्जुन के उपन्यास***. दिल्ली : अंतिका प्रकाशन.
- गव्हाड़े, डॉ. भगवान. (2011). ***कमलेश्वर की उपन्यासों में नारी.*** कानपुर : समता प्रकाशन.
- शर्मा, हर्षबाला. (2011). ***इक्कीसवीं सदी : औपनिवेशिक मानसिकता और भाषा.*** गाज़ियाबाद : अंतिका प्रकाशन.
- वर्मा, डॉ. हरिश्चंद्र. (2011). ***शोध-प्रविधि.*** पंचकूला : हरियाणा साहित्य अकादमी.
- सिंह, वैभव. (2012). ***भारतीय उपन्यास और आधुनिकता.*** हरियाणा : आधार प्रकाशन.
- शिंदे, डॉ. जयश्री. (2012). ***हिन्दी उपन्यास और विमर्श : अद्यतन दृष्टि***. वाराणसी : ए. बी. एस. पब्लिकेशन.
- बैनर्जी, डॉ. शिप्रा. (2012). ***संस्कृत वांग्मय में नारी : एक परिचयात्मक कोश***, नई दिल्ली : परिमल प्रकाशन.
- कुमार, जैनेन्द्र. (2012). ***त्यागपत्र.*** नयी दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ.
- सुजाता. (2012). ***बापू और स्त्री.*** वाराणसी : सर्व सेवा संघ-प्रकाशन.

- अनामिका. (2012). ***स्त्री विमर्श का लोकपक्ष.*** नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- किर्ते, डॉ. सविता चोखोबा. (2013). ***हिंदी उपन्यासों का मूल्यपरक विवेचन.*** कानपुर : विनय प्रकाशन.
- मिल, जॉन स्टुअर्ट अनुवाद सक्सेना, प्रगति. (2013). ***स्त्रियों की पराधीनता.*** नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- राजूरकर, डॉ. बी. एच. एवं बोरे, डॉ. राजमल. (2013). ***तुलनात्मक अध्ययन : स्वरूप और संवेदनाएँ.*** नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- गुप्ता, रमणिका (2014). ***स्त्री मुक्ति : संघर्ष और इतिहास.*** नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन.
- जादवानी, जया. (2014). ***मिठ्ठो पाणी खारो पाणी.*** नयी दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ.
- यादव, राजेन्द्र. (2014). ***आदमी के निगाह में औरत.*** नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- पाण्डेय, डॉ. मैनेजर. (2014). ***साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका.*** पंचकुला : हरियाणा ग्रन्थ.
- अग्रवाल, नीरू. (2015) . ***भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास*** नई दिल्ली : अनन्य प्रकाशन.
- तिवारी, डॉ. रामचंद्र. (2015). ***हिन्दी का गद्य-साहित्य.*** वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन.
- कालिया, ममता. (2015). ***भविष्य का स्त्री विमर्श*** .नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- शुक्ल, हनुमानप्रसाद. (2015). ***तुलनात्मक साहित्य : सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य.*** नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- शुक्ल, अनूप. (2015). ***समकालीन साहित्य और स्त्री प्रश्न.*** फ़तेहपुर : मधुरक्षर प्रकाशन.
- खेमानी, कुसुम. (2016). ***जड़िया बाई.*** नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- जोशी, ज्योतिष. (2016). ***उपन्यास की समकालीनता.*** दरियागंज : भारतीय ज्ञानपीठ.
- मधुरेश. (2016). ***हिन्दी उपन्यास का विकास.*** इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.

- राजे, सुमन. (2016). ***इतिहास में स्त्री.*** दरियागंज : भारतीय ज्ञानपीठ.
- खेमानी, कुसुम. (2016). ***लावण्यदेवी.*** नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- तिवारी, विनोद एवं अजय आनंद. (2016). ***उपन्यास कला और सिद्धांत.*** दिल्ली : अनन्य प्रकाशन.
- चतुर्वेदी, रामस्वरूप. (2016). ***हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास.*** इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.
- जैन, अरविंद एवं प्रसाद, कमला. (2016). ***स्त्री मुक्ति का सपना.*** नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- ब्राउन, लुइज़ अनुवाद वर्मा, कल्पना. (2017). ***यौन दासियाँ : ऐशिया का सेक्स बाज़ार.*** नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- सिंहल, बैजनाथ. (2017). ***शोध : स्वरूप एवं मानक व्यवहारिक कार्यविधि.*** नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- माजि, दीपाविन्ता. (2017). ***हिन्दी उपन्यास और स्त्रीवाद.*** दिल्ली : ईशा ज्ञानदीप.
- पाण्डे, मृणाल. (2017). ***परिधि पर स्त्री*** नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन.
- सिंह, नमिता. (2017). ***स्त्री प्रश्न.*** नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- दत्ता, कोल्हारे. (2018). ***हिन्दी उपन्यास : इक्कीसवीं सदी का द्वितीय चरण.*** नई दिल्ली : स्वराज प्रकशन.
- आत्मीय, तिवारी हिमांशु. (2018). ***वेश्या एक किरदार.*** दिल्ली : हिन्दी-युग्म.
- के. पी. प्रमीला. (2019). ***स्त्री जीवन के युगल क्षेत्र.*** दिल्ली : अनन्य प्रकाशन.
- यादव, उषा. (2021). ***हिन्दी साहित्य को लेखिकाओं का योगदान.*** दिल्ली : सानिया पब्लिकेशन.
- पटेल, किंग्सन सिंह. (2021). ***नारीवादी आलोचना.*** दिल्ली : अनन्य प्रकाशन.
- कोमात्सु, हिसाए. (2021). ***स्त्री अस्मिता की खोज.*** दिल्ली : नयी किताब प्रकाशन.

***

नेपाली सहायक ग्रंथ

- नेपाल, घनश्याम एवं लामा, कविता. (२००६). ***उच्च माध्यमिक नेपाली व्याकरण र रचना.*** सिलगढ़ी : एकता बुक हाउस प्रा.लिमिटेड.
- कँडेल, घनश्याम. (२०५५). **नेपाली समालोचना.** ललितपुर : साझा प्रकाशन.
- चापागाई, निनु. (वि. सं. 2064). ***सन्दर्भ : संस्कृति र सांस्कृतिक रूपांतरण*** काठमांडो : विवेक सृजनशील प्रकाशन.
- प्रधान, कृष्णचन्द्रसिंह (च.सं. २०६१). ***नेपाली उपन्यास र उपन्यासकार***. पुलचोक : साझा प्रकाशन.
- प्रसाई, नरेन्द्रराज. (२०६३). ***नारीचुली.*** काठमांडो : नइ प्रकाशन.
- प्रधान, हृदयचन्द्र सिंह. (वि. स.२०६६). ***स्वास्नीमान्छे.*** ललितपुर : साझा प्रकाशन.
- अधिकारी, डॉ. इन्द्रविलास. (२०६६). ***तुलनात्मक साहित्य : संक्षिप्त परिचय.*** ललितपुर : साझा प्रकाशन.
- थापा, डॉ. मोहनहिमांशु. (२०६६). ***साहित्य परिचय.*** ललितपुर : साझा प्रकाशन.
- राई, इन्द्रबहादुर. (वि. सं. 2067). ***नेपाली उपन्यासका आधारहरू.*** ललितपुर : साझा प्रकाशन.
- त्रिपाठी, सुधा. (वि.सं.2067). ***नारिवादको कठघरामा नेपाली साहित्य.*** ललितपुर, सांझा प्रकाशन.
- लुइटेल, डॉ. खगेन्द्रप्रसाद. (2069). ***नेपाली उपन्यासको इतिहास***. काठमाण्डौ : नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान.
- मल्ल, विजय. (वि. सं. २०६९). ***अनुराधा.*** काठमांडू : साँझा प्रकाशन.
- शर्मा, डॉ. तारानाथ. (२०७०). ***नेपाली साहित्यको इतिहास.*** काठमांडों : विद्यार्थी पुस्तक भण्डार.

- पारिजात. (वि. सं. २०७१). ***शिरीषको फूल. इक्कीसवी संस्करण.*** काठमांडू : साँझा प्रकाशन.
- प्रश्रि, मोदनाथ.(1990). ***नारी बंधन र मुक्ति.*** वाराणसी : कल्पवृक्ष प्रकाशन.
- दाहाल, भीम.(1993). ***अभीष्टको खोज.*** गांतोक : जनपक्ष प्रकाशन.
- विन्ध्या, सुब्बा. (1999). ***अथाह.*** दार्जिलिंग : हांगखिम प्रकाशन.
- नयादेवी. (2002). ***कौशल्या.*** तेज़पुर (असम) : जय नारायण लुइटेल प्रकाशन.
- शर्मा, विनय कुमार नेपाल.(2006). ***नेपाली अंग्रेजी नेपाली शब्दकोष.*** काठमांडो : शब्दार्थ प्रकाशन.
- श्रेष्ठ, डॉ दयाराम एवं शर्मा, प्रा. मोहनराज (2012). ***नेपाली साहित्य को संक्षिप्त इतिहास.*** ललितपुर, साझा प्रकाशन.
- धुन्गेल, प्रा. भोजराज एवं दाहाल, दुर्गाप्रसाद (2013). ***नेपाली कथा र उपन्यास.*** काठमांडो : एम.के पब्लिसर्स एंड डिस्ट्रीब्युटेर्स
- राई, असीत. (2013). ***भारतीय नेपाली साहित्यको इतिहास***. दार्जिलिंग : साझा पुस्तक प्रकाशन.
- तिवारी, दीपक.(2014). ***नेपाली साहित्यमा नारीलेखन*** .सिलगुढ़ी : नेपाली साहित्य प्रचार समिति.
- प्रतीक्षा, सरस्वती. (2018). ***नथिया.*** काठमाण्डू : बूक हिल्स.
- शर्मा, सृजना. (2019). ***नारी विमर्श.*** सिक्किम : जनपक्ष प्रकाशन.

***

अंग्रेजी सहायक ग्रंथ

- Regmi, D. R. (1961). ***Morden Nepal : Rise and Growth in the Eighteen Century.*** Firma K. L Ukhopadhyay.
- Hasrat, Bikramjit. (1970). ***History of Nepal: As Told by its Own and Contemporary Chroniclers.*** Punjab
- Fox, Ralph. (1979). ***The novel of the People.*** Lawrence & Wishart Ltd.
- Sanwal, B. D. (1993). ***Social and Political History of Nepal.*** New Delhi: Manohar Puplishers.
- Chatterji, Shoma A. (2010). ***Women in Perspective.*** New Delhi: Vitasta Publishing.
- Sharma, Vinaya kumar. (2010). ***Nepali English Nepali Dictionary.*** Kathmandu: Shabdartha Prakashan.
- Dhar, Maloy Krishna. (2012). ***Shakti.*** New Delhi: Vitasta Publishing.
- Sharma, Mandira & Tamang, Seira (2016). ***A Difficult Transition.*** New Delhi: Zuban.

***

पत्र-पत्रिकाएँ

- शर्मा, नम्रता. (२०६५). ***नारी स्वर.*** ललितपुर काठमांडौ.
- घिमिरे, रोचक (भदौ-असोज २०७२) ***रचना.*** वर्ष ५५, अंक ३, पूर्णांक १३८ : काठमांडौ.
- गुप्ता, रमणिका. (दिसम्बर 2014). ***युद्धरत आम आदमी.*** वर्ष 2, अंक – 15. नई दिल्ली.
- राय, विभूति नारायण. (सितंबर 2015). ***वर्तमान साहित्य.*** वर्ष 32. अंक 9. नई दिल्ली.
- सहाय, संजय. (अक्टूबर 2016). ***हंस.*** वर्ष 30, अंक 8, पूर्णांक 356. नई दिल्ली.
- भारद्वाज, महेश. (अप्रैल-जून 2017). ***सामयिक सरस्वती.*** नई दिल्ली.
- मंडलोई, लीलाधार. (अक्टूबर 2017). ***नया ज्ञानोदय.*** अंक 176. नई दिल्ली.
- सहाय, संजय (जनवरी 2019). ***हंस.*** वर्ष 33, अंक 6, पूर्णांक 387. नई दिल्ली.
- शंकर. (जनवरी-फरवरी 2019). ***परिकथा.*** वर्ष 13, अंक 78. नई दिल्ली.
- http://www.hindisamay.com/content.aspx?id=1
- **http://lib.unipune.ac.in:8080/xmlui/bitstream/handle/123456789/8549/08_chapter2.pdf?sequence=8&isAllowed=y**

***

परिशिष्ट

पुस्तकालय अवलोकन के दौरान लिए गए छायाचित्र

जवाहरलाल नेहरू केंद्रीय पुस्ताकलय डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर

उत्तर बंग विश्वविद्यालय पुस्तकालय, सिलगुढ़ी

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान जे. एन. यू. दिल्ली

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सावित्रीबाई फुले पुणे विद्यापीठ, पुणे (महाराष्ट्र)

सम्बलपुर विश्वविद्यालय, सम्बलपुर (ओड़ीसा)

साहित्यकारों से वार्तालाप

"आँधी" उपन्यास के लेखक लोकनाथ उपाध्याय चापागाईं

हिन्दी के आलोचक / साहित्यकार प्रो. विजय बहादुर सिंह

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सम्बलपुर विश्वविद्यालय प्रो. मुरारीलाल शर्मा

"फिरोजी आँधियाँ" की लेखिका हुस्न तबस्सुम निहाँ का साक्षात्कार लेते हुए

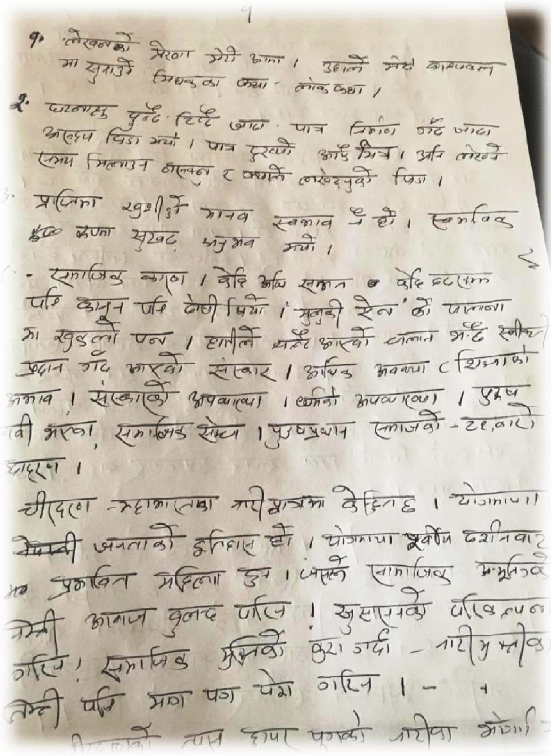

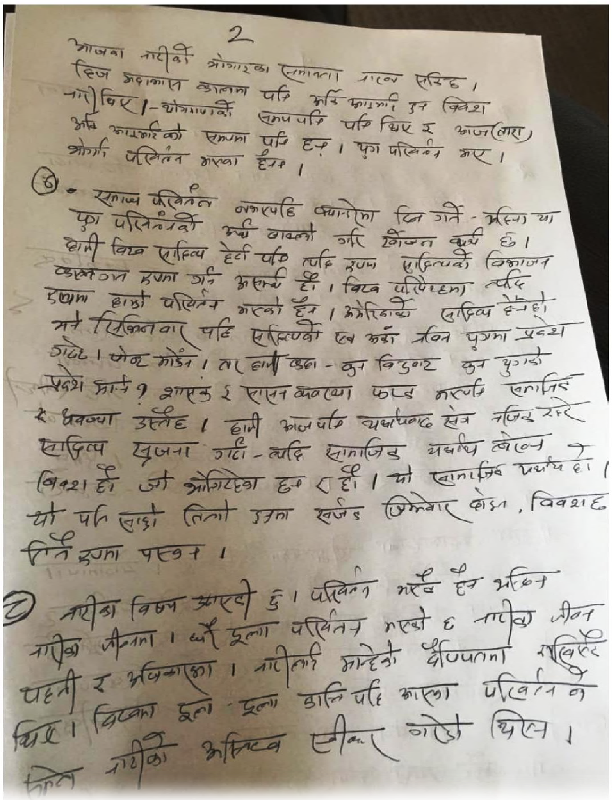

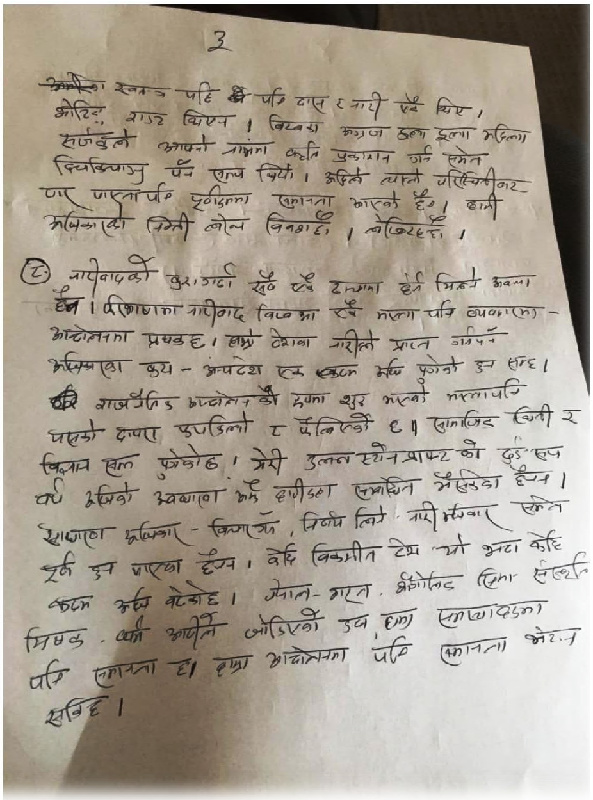

"अर्की आइमाई" की लेखिका नीलम कार्की निहारिका का मेल के माध्यम से साक्षात्कार

***

संगोष्ठी पत्र

अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी

त्रिवेणी कला एवं पुरातत्व संग्रहालय एवं
अक्षर वार्ता अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रतिष्ठा आयोजन
28 फरवरी 2018, बुधवार
स्थान : त्रिवेणी संग्रहालय, रुद्रसागर, जयसिंहपुरा, उज्जैन- 456 006

कला एवं पुरातत्व संग्रहालय
त्रिवेणी
सनातन का समकाल

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका

विषय

स्त्री विमर्श : परम्परा और नवीन आयाम

Discourse on Woman : Tradition and New Dimensions

प्रमाण-पत्र क्र

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री/सुश्री/डॉ. सुनीता गुरुंग

संस्था

ने अक्षर वार्ता अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका और त्रिवेणी कला एवं पुरातत्व संग्रहालय, उज्जैन (म.प्र. संस्कृति परिषद, संस्कृति विभाग, भोपाल) द्वारा दिनांक 28 फरवरी, 2018 को आयोजित **स्त्री विमर्श : परम्परा और नवीन आयाम** पर केन्द्रित अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में सहभागिता की।

इन्होंने हिन्दी एंव नेपाली उपन्यास साहित्य में स्त्री - चेतना

विषय पर शोध पत्र प्रस्तुत किया/व्याख्यान दिया/ सत्र की अध्यक्षता की।

प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा
प्रधान सम्पादक, अक्षर वार्ता
आचार्य एवं कुलानुशासक
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, म.प्र

डॉ. मोहन बैरागी
सम्पादक अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका
उज्जैन, म.प्र.

अवधेश श्रीवास्तव
प्रभारी अधिकारी
त्रिवेणी कला एवं पुरातत्व संग्रहालय
उज्जैन, म.प्र.

कार्यालय : 43, क्षीरसागर, द्रविड़ मार्ग, उज्जैन, म.प्र. भारत 456 006, फोन : 0734-2550150
office : 43, Kshir Sagar, Dravid Marg, Ujjain, M.P. India 456 006, Phone : 0734-2550150
Website : www.aksharwarta.com, gmail : aksharwartajournal@gmail.com

हिन्दी विभाग
DEPARTMENT OF HINDI
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470 003
DOCTOR HARISINGH GOUR VISHWAVIDYALAYA, SAGAR (M.P.) 470 003
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय A CENTRAL UNIVERSITY)

98

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये

ICSSR
New Delhi

राष्ट्रीय संगोष्ठी

भारतीय-भाषाओं की एकात्मता और वैज्ञानिकता

14-15 मार्च, 2018

भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली एवं केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा द्वारा वित्तपोषित
तथा अकादमिक सहयोग भारतीय भाषा मंच एवं हिन्दी विभाग द्वारा आयोजित

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि

प्रो. / डॉ. / श्री / श्रीमति / कु. सुनीता गुरुंग (शोधार्थी)
संस्था साँची विश्वविद्यालय, रायसेन (म.प्र.), हिन्दी विभाग
ने अध्यक्षता / बीज वक्ता / आमंत्रित वक्ता / शोध पत्र प्रस्तुति / प्रतिभागी / संचालक के रूप
में सहभागिता की एवं हिन्दी एवं नेपाली भाषा के कोशीय एवं संरचना का व्यतिरेकी अध्ययन
विषय पर अपना व्याख्यान/शोध पत्र प्रस्तुत किया।

डॉ. विवेकानंद उपाध्याय
संयोजक, राष्ट्रीय संगोष्ठी

प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी
विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग

शोध पत्र

Peer Reviewed and Refereed Journal of Multidisciplinary. ISSN 2231-1351

हिन्दी के महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी-अस्मिता के बदलते स्वरूप

सुनीता गुरुङ्ग*
sunitagurung777@gmail.com

डॉ. राहुल सिद्धार्थ†
rahul.siddharth@subis.edu.in

धरती के इस छोर से उस छोर तक, मुट्ठी भर सवाल लिए मैं, दौड़ती रही हूँ,

सदियों से निरन्तर अपनी जमीन, अपना घर अपने होने का अर्थ लिए।। (निर्मला पुतूल)

शोध सारांश :

विश्व में आज स्त्रियाँ राष्ट्रपति बनने से लेकर चाँद तक पहुँच गई हैं बावजूद वे अपने ऊपर होने वाले अमानवीय व्यवहार, शोषण, घरेलू हिंसा, बलात्कार आदि से छुटकारा नहीं पा सकी हैं! यह सम्पूर्ण मानव जाति के लिए दुर्भाग्य की बात है कि दुनिया की आधी आबादी अभी भी अपने आप को स्वतंत्र, सुरक्षित एवं बराबरी के स्तर पर नहीं देख पातीं, जबकि स्त्री को असीम शक्ति का श्रोत माना गया है। प्रेमचंद के समय से स्त्री-शिक्षा की नींव पड़ने लगी जिसने स्त्री के चेतना को जगाया। इसी काल में बौद्धिक दृष्टि से स्त्री-पुरुष के समानता का महत्व भी बढ़ा इसलिए इस काल के उपन्यासों में नारी के स्वतंत्र चेतना की छवि स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आधुनिक युग में स्त्रियों की विभिन्न समस्यायों के साथ-साथ, समाज निर्माण में उनकी भूमिकाओं एवं उनके जीवन के बदलते स्वरुप को लेकर बड़े ही सलीके से महिला उपन्यासकारों - कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा, शशिप्रभा शास्त्री, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, मंजुल भगत, नासिरा शर्मा, प्रभा खेतान आदि ने अपनी लेखनी के माध्यम से साहित्य को देखने का नया दृष्टिकोण प्रदान किया है। समाज के मध्यवर्गीय परिवार की कामकाजी स्त्री की विभिन्न चुनौतियों को भी अपने उपन्यासों में प्रस्तुत कर उनके संघर्ष तथा महत्व को चित्रित करने का प्रयास किया है।

प्रमुख शब्द : नारी-अस्मिता, उपन्यास, जागृत, संघर्ष, घरेलू हिंसा एवं स्त्री ।

* **पी-एच. डी. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश**

† **शोध निर्देशक/सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश**

इतिहास में स्त्रियों के सम्बन्ध में देखें तो वे जीवन की एक मात्र ऐसी पात्र रहीं जो संस्कृति, धर्म, परम्पराओं के नाम पर ठगी गई। आलोचक विजय बहादुर सिंह लिखते हैं कि "सामाजिक सच्चाईयों के भयावह यथार्थ और आकड़े इस बात के गवाह है कि संस्कृति के राज्य में सबसे ज्यादा दलित और उत्पीड़ित स्त्री ही है।"[1] जिसका एक प्रमुख कारण है आर्थिक एवं शैक्षिक दृष्टि से परतंत्र होना। शिक्षा के अभाव में न सिर्फ एक स्त्री बल्कि उसकी आने वाली पीढ़ी भी सामाजिक कुरीतियों के बोझ तले पलती-बढ़ती है। महादेवी वर्मा स्त्रियों के आर्थिक-स्वातंत्र्य पर चिंता व्यक्त करते हुए कहती है कि "भारतीय स्त्री के सम्बन्ध में पुरुष का भर्ता नाम जितना यथार्थ है उतना संभवत: और कोई नाम नहीं। स्त्री, पुत्री, पत्नी, माता आदि सभी रूपों में आर्थिक दृष्टि से कितनी परमुखापक्षिणी रहती हैं, यह कौन नहीं जानता!"[2]

उषादेवी मित्रा द्वारा लिखा गया 'वचन के मोल' उपन्यास की कजरी तथा उपन्यास 'पिया' की नीलिमा नारी प्रतिनिधि के रूप में अपने आप को स्थापित करती हैं, जिन्होंने विषम परिस्थितियों में भी हार नहीं माना। इस काल की नारी से संबंधित प्रमुख समस्या थी वेश्यावृत्ति की समस्या। इस समस्या पर उपन्यासकार उषादेवी मित्रा का ध्यान गया है। 'जीवन की मुस्कान' की पूरबी एक संघर्षशील नारी है। वह अपने व्यक्तिगत समस्याओं के कारण वेश्यावृत्ति अपनाने को मजबूर होती है। उसका जन्म वेश्यालय में होता है लेकिन उसे अपने अस्तित्व का ज्ञान है। वह एक लड़के को पसंद करती है जिस पर एक सेठ द्वारा आपत्ति जताने पर वह इस प्रकार आक्रोश व्यक्त करती है – "देह मेरी अवश्य बिकी हुई है सेठ जी, दुनिया से यह बात छिपी नहीं है। परंतु मेरी आत्मा मेरी ही है मेरी रहेगी। उसे मैं नहीं बेच सकती"[3]

हमारी सामाजिक संरचना ही ऐसी है कि पुरुष जाति को स्त्री जाति से श्रेष्ठकर माना जाता रहा है। सैद्धांतिक तौर पर नारी को पूजा जाता है, पर व्यवहार में सदैव ही काम की वस्तु मानी जाती है इसलिए पुरुषों द्वारा स्त्री को हमेशा सौंदर्य की प्रतिमा माना जाता है। वही पुरुष को आकर्षित करना स्त्री का ध्येय तथा पराभूत करना कामना रही है इसलिए स्त्रियाँ अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाती हैं। लेकिन हिन्दी के महिला उपन्यासकारों ने स्त्री के वास्तविक अर्थ को महत्व देते हुए इन परम्पराओं का खण्डन किया। वे ख़ुद भी आर्थिक रूप से सबल हुईं तथा उपन्यासों के पात्रों के जरिए अन्य के लिए भी प्रेरणा बनीं।

चित्रा मुद्गल द्वारा रचित उपन्यास 'आँवा' में समाज के पुरुषों की अनियंत्रित और कुदृष्टि को उजागर करने का जोखिम उठाया गया है। लेकिन उपन्यास की स्त्रियाँ संघर्ष करती हैं। सुनंदा एक अविवाहित माँ है जो किसी भी परिस्थिति में हार नहीं मानती, उपन्यास में निलम्मा एक विधवा स्त्री है जो अपने जीवन के तमाम संघर्षों एवं चुनौतियों को मात देते हुए आगे बढ़ती है। उपन्यास के अंत में नमिता कोख में पलता हुआ गर्भ गिरवाकर संजय कनोई का विरोध करती है।

नब्बे के दशक तक आते-आते उपन्यासकारों ने नए-नए विषयों को अपने उपन्यास का विषय ही नहीं चुना बल्कि बिना किसी की परवाह करते हुए दकियानूसी परम्पराओं का खंडन भी किया। इस सिलसिले में

प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, गीतांजलि श्री, अलका सरावगी आदि उभरकर आती हैं। चित्रा मुद्गल कृत 'एक जमीन अपनी' की स्त्री पात्र में स्व के प्रति सजगता, अधिकार तथा अस्तित्व की चेतना जगी हुई है। वह पति नहीं जीवन साथी चाहती है इसलिए कहती है – "पुरुष से स्वतंत्र होना है तो पहले उन्हें सिंदूर को पोंछना होगा। बिछुए त्यागने होंगे ! दासत्व के प्रतीक चिह्न ! .... मैं पत्नी नहीं, सहचरी बनना चाहती हूँ। पत्नी शब्द में मुझे दासीत्व की बू आती है..... इस शब्द ने हमारे समाज में अपनी गरिमा खो दी हैं।"[4]

'छिन्नमस्ता' की प्रिया का व्यवसाय के संबंध में विदेश जाने की योजना को नरेंद्र (पति) कैंसिल करने की कोशिश करता है तथा भावनात्मक रूप से प्रिया को शब्दों के जाल में उलझाकर उसे ब्लैकमेल करता है, लेकिन प्रिया समझ चुकी है कि यह सब छलावा है क्योंकि उसकी चेतना जगी हुई है। वह कहती है - "सच कहूँ नरेंद्र, ये शब्द भ्रम हैं। औरत को यह सब इसलिए सिखाया जाता है कि वह इन शब्दों के चक्रव्यूह से कभी नहीं निकल पाए ताकि युगों से चली आती आहुति की परम्परा को कायम रखें।"[5]

'शाल्मली' में नासिरा शर्मा द्वारा पितृसत्तात्मक व्यवस्था के दोहरे चरित्र का पर्दाफाश किया गया है। शाल्मली का डटें रहना कि – "यह नाटक तब तक चलेगा, जब तक मैं अपना अधिकार नहीं पा लेती हूँ।"[6] आज की स्त्रियाँ अपने अधिकारों के लिए गिड़गिड़ाती नहीं, बल्कि हासिल करने में विश्वास रखती है चाहे उसके लिए संघर्ष ही क्यों न करनी पड़े। शाल्मली अपने अधिकारों और आज़ादी को लड़कर ले लेगी, लेकिन भीख नहीं मांगेगी। अलका सरावगी कृत 'कलि-कथा वाया बाइपास' का केन्द्रीय विषय मारवाड़ी परिवार के पाँच पीढ़ियों की संघर्ष भरी कहानी है। बाजारवाद की भोगवादी मानसिकता से ग्रस्त मारवाड़ी समाज की नयी पीढ़ी की असंवेदनशीलता भी उपन्यास में उजागर हुई है।

गीतांजलि श्री रचित उपन्यास 'माई' में घर की महिला सदस्य एक टांग पर खड़े होकर सभी सदस्यों के खातिर अपने स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं दे पातीं, जिसका मार्मिक चित्रण इस प्रकार हुआ है - "बचपन से ही उसकी निरीहता ने हमें घायल कर रखा था। धीरे-धीरे हम उसे सबसे बचाने लगे - दादी से, बाबू से, दादा से. बस उसी से, उसे ना बचा पाते। उसकी रीढ़ की हड्डी ही जब जवाब दे चुकी थी, डॉक्टर तक ने जवाब दे डाला कि अब दर्द होगा ही होगा। हम तो शुरू से ही जानते थे उसकी रीढ़ की हड्डी के बारे में। "वह तो बाद में...."[7]

मधु काँकरिया द्वारा रचित उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' में धर्म की आड़ में गुमनाम होते स्त्रियों के अस्तित्व को पहचान देने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में धार्मिक आडम्बरों तथा कुरितियों की शिकार हुईं स्त्रियों की दासता का यथार्थ चित्रण हुआ है। स्त्रियाँ चाहे किसी भी देश या जाति के हों वह सदैव पिछले पन्नों पर ही रहती आयी है। बेडिया समुदाय के इतिहास, संस्मरणों, लोक कथाओं एवं किंवदन्तियों के माध्यम से शरद सिंह ने बेडनियों (बेडिया स्त्रियाँ) के जीवन के यथार्थ को 'पिछले पन्ने की औरतें' के जरिये प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष :

सिमोन द बोउवार के कथन 'स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है' को समझते हुए विभिन्न बदलावों का प्रभाव स्त्री लेखन पर पड़ने लगा है। भारतीय समाज में स्त्री की गुलामी का इतिहास जितना पुराना है, उस गुलामी से मुक्ति के लिए स्त्री के संघर्ष का इतिहास भी उतना ही पुराना है। अत: हिन्दी के महिला उपन्यासकारों ने अपने लेखन में स्त्री मुक्ति के स्वर को गढ़ा ही नहीं बल्कि वास्तविक धरातल पर भी उतारा।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

[1] सिंह, विजय बहादुर. (2007). *उपन्यास : समय और संवेदना*. नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. 80.

[2] वर्मा, महादेवी. (2008). *श्रृंखला की कड़ियाँ.* इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृ. 87.

[3] गव्हाड़े, डॉ. भगवान. (2011). *कमलेश्वर की उपन्यासों में नारी*. कानपुर : समता प्रकाशन. पृ. 61.

[4] राय, गोपाल. (2002). *हिंदी उपन्यास का इतिहास*. नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 390.

[5] खेतान, प्रभा. (2016). *छिन्नमस्ता*. दरियागंज : राजकमल प्रकाशन. पृ. 11-12.

[6] शर्मा, नासिरा. (1994). *शाल्मली*. नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन. पृ. 74.

[7] गीतांजलि, श्री. (2004). *माई*. नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 14.

www.shodh-prakalpresearch.com
शोध–प्रकल्प
त्रैमासिक रिसर्च जर्नल
ISSN 2278-3911

स्त्री–चेतना और नेपाली उपन्यास

सुनीता गुरुङ्ग
पी–एच.डी. शोधार्थी, (हिन्दी–विभाग)
साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला

शोध–सारांश – विश्वभर में आज महिलाएं अपने प्रतिभाओं के कारण विभिन्न पदों पर आसीन हैं। उन्हें इस मुकाम तक पहुँचने के लिए बेशक कई संघर्षों का सामना करना पड़ा है। ये संघर्ष केवल पदों पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराने हेतु नहीं बल्कि, अपने अस्तित्व को पुनः स्थापित करने के लिए तथा स्वयं के लिए स्वयं निर्णय लेने के अधिकार के लिए हुआ है। इसके बावजूद महिलाएं आज भी समाज का वो अंग नहीं बन पाई हैं जिसकी उन्हें तलाश हैं। साहित्य, समाज का दर्पण होता है तथा समाज में घटित वाक्या को साहित्य आत्मसात् कर उसे प्रभावी ढंग से अपने शैली में रचकर समाज को पुनः प्रेषित करता है क्योंकि साहित्य के माध्यम से साधारण सन्देश भी जन समुदाय को बहुत हद तक प्रभावित कर सकता है। साहित्य के अनेक विधाओं में से उपन्यास एक विधा है। आधुनिक साहित्य में इसने अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाकर लोकप्रियता हासिल की है। इसका मुख्य कारण है दृ उपन्यास में रोचकता, वृहत जीवन का परिचय और सत्याभास। अतः प्रस्तुत शोध पत्र में नेपाली उपन्यासों के माध्यम से स्त्री–चेतना को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है।

प्रमुख शब्द : स्त्री, उपन्यास, चेतना।

प्रस्तावना –

नेपाली साहित्य के इतिहास को देखा जाए तो यह पता चलता है कि इसका प्रेरणास्रोत संस्कृत, बांग्ला एवं हिंदी साहित्य रहा है। वेद, पुराण, ब्राह्मण, उपनिषद आदि से प्रेरित होकर 'विराटपर्व' (सम्बत् 1827) के अनुवादक शक्तिवल्लभ अज्यार्ल ने सर्वप्रथम नेपाली में गद्य परम्परा का आरम्भ किया ऐसा माना जाता है। नेपाल एक ऐसा राष्ट्र है जिसकी अपनी संस्कृति, भाषा एवं साहित्य समृद्ध है तथा इसका इतिहास काफी विस्तृत रहा है। यहाँ कई राजाओं ने शासन किया है। पहली बार 2007 में राजतन्त्र का लोप हुआ और लोकतंत्र का प्रादुर्भाव हुआ जो एक ऐतिहासिक घटना थी। इसके साथ ही श्री मातृकाप्रसाद कोइराला नेपाल के प्रथम प्रजातान्त्रिक प्रधानमंत्री नियुक्त हुए। विश्व भर में साहित्य के विभिन्न विधाओं में महिलाओं की भागीदारी को लेकर गहन अनुसन्धान हो रहे हैं लेकिन, नेपाली साहित्य के विभिन्न विधाओं में महिलाओं की भागीदारी को लेकर बहुत ही कम शोध हो पाए हैं। नेपाली उपन्यास के इतिहास को देखा जाए तो अनेक महिला उपन्यासकारों ने अपनी कृति के माध्यम से नेपाली उपन्यास के विकास में अमूल्य योगदान दिया है। दुर्भाग्यवश नेपाली उपन्यास के इतिहास में उनका नाम उल्लिखित तक नहीं है।

प्रस्तुत शोध पत्र में नेपाली उपन्यासों के माध्यम से स्त्री की खोयी हुई चेतना को, उनके अमूल्य योगदान को तथा समस्त नारी जाति के महत्व को स्थापित करने का प्रयास किया गया है। स्त्री–विमर्श नाम का जो ट्रेंड हिंदी साहित्य में चला है, जो स्त्रियों को मुख्य धारा में लाने में काफी सफल हुआ है। यह अधुनिक युग का यह सबसे जीवंत विमर्श है। इस विमर्श के शुरू होने के बाद ही महिलाओं ने अपनी ताकत पहचानी, अपने अधिकार पहचाने। बाद में उन्होंने उसी की तर्ज पर काम करना शुरू किया और महिलाओं की हालत में काफी हद तक बदलाव आए। नेपाली उपन्यासों पर बात करने से पहले स्त्री–चेतना से हम क्या समझते हैं? यह जानना जरुरी है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था का आधार स्त्री और पुरुष के बीच भेदभाव से उत्पन्न कुत्सित मानसिकता को माना जा सकता है अर्थात् स्त्रियों में इस हीन भावना का संचार किया जाना कि वो अबला है, या सदैव पुरुष पर आश्रित है अथवा उसका पुरुष के बिना कोई स्वतंत्र अस्तित्व है ही नहीं, ये सारे बिन्दु स्त्री चेतना पर प्रकाश डालने को प्रेरित करते हैं। स्त्री–चेतना का वास्तविक अर्थ – स्त्रियों का अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक होना है। पुरुष पर आश्रित न रहकर भी स्त्री की अपनी स्वतंत्र भूमिका हो सकती है। स्त्री होने का अर्थ केवल अबला या गृहणी होना नहीं है अपितु स्त्री का समाज में भी अपना विशिष्ट स्थान हो सकता है। इन्हीं भावनाओं से किसी

Received : 16 Nov, 2019 Reviewed 26 Nov , 2019 Accepted : 10 Dec. 2019

IMPACT FACTOR GIF 2.3409 U.G.C. NO. 63535

स्त्री का जागृत होकर आगे बढ़ना ही स्त्री–चेतना है।

स्त्री–चेतना के कई आयाम हो सकते हैं – स्त्री के हित के बारे में सोचकर यदि कोई (पुरुष, स्त्री या अन्य) साहित्य (कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि) रचता है तो वह रचना स्त्री–चेतना के अंतर्गत आता है, स्त्रियों का स्वयं (स्त्री–सम्बन्धी विषयक) के बारे में लिखना भी स्त्री–चेतना का जागृत होना है, स्त्री–सम्बन्धी विषय के अलावा प्रकृति, तीसरा जेंडर, राजनीति जैसे विषयों पर लिखकर महिलाओं का अपने असीम क्षमताओं का परिचय देना भी स्त्री–चेतना का एक उदहारण है।

चयनित उपन्यासों का विश्लेषण :

रूपमती एक आदर्शवादी उपन्यास है। उपन्यासकार रुद्रराज पाण्डेय ने इस उपन्यास में सभी पात्रों के लिए आदर्श जीवन को गढ़ा है लेकिन, इसमें स्त्री की सीमा को निर्धारित कर प्रस्तुत किया गया है। स्त्रियों का आदर्श जीवन से तात्पर्य है दृ अपने पति को प्रसन्न करना, ससुराल वाले को खुश रखना। इसके लिए चाहे उसको कुछ भी करना पड़े। नीचे उद्धृत पंक्तियों के द्वारा आदर्श जीवन के परंपरा को देख सकते हैं ।

विलाल (रूपमती का पति) "के मयले नभएको कुरा भने त, रूपा? आज तिम्रो रूपराशि देखेर कति मान्छे डाहले भुतुक्क भएर मारिरहेछ। तिम्रो शीलस्वभाव देखेर कति आइमाईहरु ईर्ष्याले जलिरहेछन।" इसके जवाब में रूपमती कहती है कि "कोहि मरे मरुन्, रीस गरे गरुन्। हजुरलाई प्रसन्न राख्न पाए मलाई पुग्यो।"1 (अर्थात् कोई मरे या जिए, या फिर ईर्ष्या करे। आपको खुश रखना ही मेरा लक्ष्य है।)

स्त्री जाति के लिए उपन्यास में जिस प्रकार की सोच व्यक्त हुई है वह कहीं न कहीं उस पुरुषवादी मानसिकता की तरफ इंगित करती है जो सदैव स्त्री को एक वस्तु की तरह समझता है लेकिन, यहां पर ध्यान देने की जरुरत है कि लेखक ने तत्कालीन समाज को ध्यान में रखकर उपन्यास की रचना की है। रूपमती अपने पति को रिझाने का मौका जाया नहीं करना चाहती क्योंकि उसे कहीं न कहीं यह डर है कि बच्चा न होने के कारण उसका पति दूसरा विवाह कर सकता है। चूँकि समाज में हमेशा से एक स्त्री की सम्पूर्णता उसकी मातृत्व से आँका जाता रहा है, रूपमती को इस बात का अंदेशा है इसलिए वह कहती है । "मुझे केवल अपने शीलस्वभाव एवं सौन्दर्य का सहारा है अतः इससे पतिदेव प्रसन्न होते हैं तो ठीक है नहीं तो मेरा कर्म ही ऐसा है मानकर अपने मन को समझाने के अलावा मेरे पास कोई रास्ता नहीं है।"2

लैनसिंह बाङदेल कृत माइतघर उपन्यास में भी एक शादीशुदा स्त्री (सानी) भी इसी आडम्बर की शिकार होती है। सानी का पति जब दूसरा विवाह करता है तो वह अपने मायके चली आती है। सानी अपने पीड़ा को इस प्रकार व्यक्त करती है – "पोइले सौता हालेछ। सौता हालेपछि स्वास्नीमानिसको जीवन कस्तो हुन्छ? पोइले सौता हालेपछि आइमाई को जीवनमा दूध पनि विष हुन्छ, औषधि पनि मृत्यु हुन्छ।" इसके बदले में उसे सान्तवना कुछ इस प्रकार मिलती है । "तेरो कर्ममा कस्तो लेखेको रहेछ नि ! तैंले पोइलाई रिझाउन सकिनस्, पोइबाट अवहेलना पाइछस्....।"3 (तेरे भाग्य में क्या लिखा गया है! तू अपने पति को खुश नहीं रख सकी इसलिए आज तुझे ये अवहेलना मिल रही है।) फिर भी सानी अपने ससुराल वापस न जाने के लिए लगातार प्रतिकार करती रहती है और एक दिन अपने आत्मसम्मान के खातिर मायके से तो चली जाती है लेकिन ससुराल नहीं लौटती।

इस मानसिकता के पीछे का कारण सिमोन द बोउवार के शब्दों द्वारा समझ सकते हैं । "आर्थिक जीवन में पुरुष विशिष्ट स्थान में है। उनकी सामाजिकता, विवाह से मिला हुआ सम्मान, पुरुषों का सहारा दृ ये सब बातें मिलकर स्त्री के मन में बस एक ही उद्देश्य को बढ़ावा देती हैं कि वह कैसे अपने पति को खुश रखे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्त्री अपना चुनाव अपने स्वभाव के अनुकूल नहीं करती बल्कि, पुरुष द्वारा परिभाषित और प्रदत्त जीवन को स्वीकारती है।"4

हृदयचन्द्रसिंह प्रधान के द्वारा लिखा गया उपन्यास स्वास्नीमान्छे में नारी–चेतना का अलग ही रूप दर्शाया गया है। इस उपन्यास में भी बहुविवाह समस्या का चित्रण हुआ है। फर्क सिर्फ इतना है कि उपरोक्त दोनों उपन्यासों में बहुविवाह जैसे कुप्रथा का अंत में चित्रण हुआ है लेकिन, स्वास्नीमान्छे में इस समस्या को आरम्भ में ही चित्रित कर इसे सभी समस्याओं का जड़ बताया गया है। लेखक ने इस उपन्यास में ऐसे पात्र गढ़े हैं जिससे प्रतीत होता है कि वे प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित है। वास्तव में इस उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य समाज–सुधार की भावना है। मैयाँनानी और उनके साथी समाज–सुधार के लिए हमेशा तत्पर हैं वे सामाजिक प्रचलन, आर्थिक पराधीनता एवं एकपक्षीय चारित्रिक नैतिक मर्यादा जैसे कुरीतियों का विरोध करते हैं। स्त्री को जीवनपर्यंत भोग्या बनाकर रखने के बाद अंत में उसे वेश्यावृति में जाने हेतु बाध्य करने वाले पुरुषवादी समाज के विरुद्ध मैयाँनानी का संगठन कार्य करता है। वेश्या होकर भी समाज का कल्याण किया जा सकता है इसका जीवंत उदहारण मैयाँनानी के द्वारा प्रस्तुत हो पाया है। जब मोतीमाया को ढूढ़ते हुए विनोद (बेटा)

IMPACT FACTOR GIF 2.3409 U.G.C. NO. 63535

वेश्यालय पहुँचता है तो मैयाँनानी कहती है । "आप हमें बाजार की मामूली वेश्या न समझे विनोद जी ! हाँ हम वेश्या हैं, इसकी जिम्मेदारी भी लेते हैं। आप जैसे नादान बालकों का नशे में गिरते–पड़ते, तथा आपके समाज को सँभालने के लिए हम इस पेशा में हैं। पैसों के लिए नहीं बल्कि समाज में जीवन देने के लिए हमने इस पेशा को अपनाया है।"5

उपन्यासकार हृदयचन्द्रसिंह ने समाज में परंपरागत रूप से चली आ रही आदर्श नारी नामक वृत्ति को तोड़कर समाज के कटु सत्य से रूबरू करवाया। नेपाली उपन्यास के इतिहास में वेश्या–जीवन को चित्रित करने वाले ये पहले उपन्यासकार थे। मैयाँनानी का रूप इस उपन्यास में क्रांतिकारी दर्शाया गया है यह तब प्रतीत होता है जब वह रिवल्वर उठाती है और मोतीमाया के दोषियों को सजा देती है।

नेपाली समाज के पुरुषवर्ग ने कभी भी सामाजिक रूप में पत्निव्रता धर्म का पक्ष नहीं लिया। वह हमेशा 'मर्दका स्वास्नी जुत्ता बराबर' कहता गया और दो, चार, पत्नी रखते गया, इसलिए वह बहुविवाह को हमेशा जायज सिद्ध करने में लगा रहा तथा उसे धर्म और पाप से जोड़ने लगा। इसका उदाहरण भानुभक्त आचार्य की कविता 'वधु शिक्षा' के माध्यम से देखा जा सकता है दृ "सौताको रिस गर्नु पाप छ बहुत् एकै दुवैका पति"6 अर्थात् सौतन को एक–दूसरे से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए क्योंकि दोनों के पति एक ही है।

'नयादेवी' द्वारा रचित 'कौशल्या' उपन्यास में एक ऐसी महिला के मनःस्थिति का चित्रण किया गया है जो अपने भरे–पूरे परिवार में भी बिलकुल अकेली है। उसका पति गजाधर हमेशा सामाजिक कार्यों में व्यस्त रहता है इसलिए भी कौशल्या अकेली पड़ जाती है। वह लगातार प्रयास करती रहती हैं कि तीनों बेटे–बहुए एक साथ मिलकर खुशी–खुशी रहे। परन्तु परिस्थितियाँ ठीक इसके विपरीत होती हैं। वह वृद्ध महिला अपने पोती–पोतियों से मिलने के लिए हमेशा तड़पती रहती है लेकिन किसी पर दबाव नहीं बनाती, बल्कि कहती है दृ "हाम्रो सबैथोक छ हाम्रो चिन्ता नगर्नु कसैले। तिमीहरुलाई जस जसलाई हाम्रो आवश्यक छ आउनु बस्नु हामीसँग।"6 (हमारे पास सारी सुख–सुविधाएं हैं, हमारी चिंता करने की आवश्यकता नहीं। तुममें से किसी को भी यदि जरूरत पड़े तो हमारे साथ रहने के लिए आ सकते हो।) इतना बड़ा दिल केवल माँ (नारी) का ही हो सकता है। लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से कौशल्या जैसे लाखों वृद्ध महिलाओं के मनोदशा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

अक्षरकाका के द्वारा लिखा गया उपन्यास 'देवती' में बालविवाह प्रथा के आग में झुलसती देवती के जीवन का मार्मिक वर्णन है। बाल्यावस्था में ही देवती शादी होकर ससुराल लायी जाती है। जब तक वह समझती कि उसका भी एक पति है जो उसे समझेगा तब तक पति घर छोड़ बनारस चला जाता है। देवती भरे यौवन में पति के प्यार से वंचित रहती है साथ ही जीवन–भर समाज की कुरीतियों, विसंगतियों, रिश्तेदारों के वचनों को सहने के लिए बाध्य की जाती है। माँ जैसी सास भी उसे छोड़ हमेशा के लिए चली जाती है जिससे अत्यंत दुखी होकर कहती है कि जाते समय एक बार भी नहीं पूछा..., काल तू इतना निर्दयी कैसे हो सकता है? डाल को तोड़ने से पहले तुझे उस कली पर बिलकुल दया नहीं आयी? ये महज देवती के वाक्य नहीं है बल्कि पूरे काल का दर्शन है यह उन लाखों दादियों–नानियों की जीवन गाथा है जिन्होंने देवती समान जीवन जिया, संघर्ष किया और पति संग सती हुई। इस प्रकार हम देख सकते हैं की 'देवती' सिर्फ एक स्त्री की कहानी न होकर लाखों नारियों की कथा है।

जब एक पक्ष हमेशा दमित, शोषित, असहाय की स्थिति में होता है तो स्वस्थ समाज का निर्माण संभव नहीं हो सकता है। पुरुष और स्त्री में असमानता के कई कारण हैं जिनमें प्रमुख है दृ पितृसत्तात्मक व्यवस्था। इसी व्यवस्था का दुष्परिणाम उक्त उपन्यासों में देखने को मिलता है। एंगेल्स का कहना था कि "मातृसत्ता से पितृसत्तात्मक समाज का अवतरण वास्तव में औरत जाति की सबसे बड़ी ऐतिहासिक हार थी।"8 इसका यह अर्थ नहीं कि मातृसत्ता व्यवस्था ही सही हो। नर–नारी को न तो एक दूसरे की दासता करनी है, न एक दूसरे में खो जाना है, न एक दूसरे पर अपने आपको आरोपित करना है। बस अपना–अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखते हुए एक दूसरे से जुड़ना है, अर्धनारीश्वर की तरह। जैसा कि वेदों में भी कहा गया है कि "पौराणिक देवों में एक कल्पना अर्धनारीश्वर की भी है। परम शिव अथवा परमेश्वर ने शरीर के आधे–आधे दोनों भागों से शिव तथा सती की उत्पत्ति की। जब दोनों का उपस्थिति स्थल समान है तब दोनों में पार्थक्य की सम्भावना नहीं की जा सकती है।"9

एक अन्य उपन्यासकार पारिजात नेपाली उपन्यास की परंपरा के इतर जाकर उपन्यासों की रचना करती हैं। नेपाली उपन्यास के इतिहास में 'शिरीषको फूल' का प्रकाशन एक युगांतकारी घटना है। विसंगत जीवन को प्रस्तुत कर मानव अस्तित्व की खोज करना इस उपन्यास का उद्देश्य है। इस उपन्यास के बहाने नेपाली उपन्यास में अस्तित्ववादी दर्शन का प्रवेश हुआ है। पारिजात, शिरीषको फूल उपन्यास में भविष्य की परिभाषा इस प्रकार देती है दृ यो दुःखद जीवनको अन्त्य मृत्यु हो र त्यसपछि हाम्रो भावनाहरूको कुनै पनि अस्तित्व

IMPACT FACTOR GIF 2.3409 U.G.C. NO. 63535

छैन। हामी एकअर्कामा स्पष्ट हुन सकेनौं र कहिल्यै सक्दैनौं पनि। यो जीवनपछि एउटा महाशून्य छय अब केहि पनि चिताउन्नं, सब निरर्थक छन्। तिमी एउटा अन्धकारमा निस्सास्सिएर मरयौ र कुनै दिन म पनि मर्छु, यहि हो तिम्रो र मेरो जीवन को मूल्य। इसके अतिरिक्त पारिजात के अन्य उपन्यासों 'बोनी', 'परिभाषित आँखाहरु' आदि में लेखिका का गहन चिंतन दृष्टिगोचर हो पाया है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के अंतर्गत यही कहा जा सकता है कि नारियों के उत्थान के लिए शिक्षा बहुत जरूरी है। शिक्षा के अभाव में मोतीमाया, सानी तथा देवती जैसी स्त्रियाँ आज भी अपने ऊपर हो रहे अन्याय को अपनी नियति मान सहने को बाध्य हैं। उक्त नेपाली उपन्यासों को पाठकगण हिन्दी उपन्यासों की भांति न देखें क्योंकि नेपाली उपन्यास का उद्‌भव एवं विकास प्रक्रिया बिलकुल भिन्न है। नेपाली उपन्यास का परिवेश बहुत हद तक नेपाल की सामाजिक स्थिति से प्रभावित हैं तथा भारत के कई राज्यों के परिवेश ने भी नेपाली उपन्यास को प्रभावित किया है। कुछ उपन्यासकार स्त्रियों के इस गंभीर समस्या के प्रति सजग हैं तथा वे अपने कृतियों के माध्यम से स्त्री–चेतना को महत्व भी दे रहें हैं, लेकिन इतना काफी नहीं है। दोनों पक्षों को मिलकर इस असमानता की दिवार जो परंपरागत रूप से हमारे समक्ष विद्यमान हैं उसे तोड़ना होगा, तभी एक स्वस्थ समाज का निर्माण हो सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. राई, इन्द्रबहादुर. (२०३१). नेपाली उपन्यासको आधारहरु. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 19.
2. राई, इन्द्रबहादुर. (२०३१). नेपाली उपन्यासको आधारहरु. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 15.
3. बाङदेल, लैनसिंह. (२००६). माइतघर. काठमांडो : रत्न पुस्तक भण्डार. पृष्ठ सं. 65.
4. खेतान, डॉ. प्रभा. (2004). स्त्री उपेक्षिता. नई दिल्ली : हिंदी पॉकेट बुक्स. पृष्ठ सं. 72.
5. प्रधान, हृदयचन्द्र. (नवा सं.२०६६). स्वास्नीमान्छे. ललितपुर : साझा प्रकाशन. पृष्ठ सं. 131.
6. प्रश्रित, मोदनाथ, (चौ. सं.१९९०) नारी बंधन र मुक्ति. वाराणसी : कल्पवृक्ष प्रकाशन पृष्ठ सं. 51.
7. देवी, नया. (2006). कौशल्या. तेजपुर :जय नारायण लुइंटेल. पृष्ठ सं. 120.
8. खेतान, डॉ. प्रभा. (2004). स्त्री उपेक्षिता. नई दिल्ली : हिंदी पॉकेट बुक्स. पृष्ठ सं. 54.
9. बैनर्जी, डॉ. शिप्रा, (2012). 'संस्कृत वांग्मय में नारीः एक परिचयात्मक कोश' नई दिल्लीः परिमल प्रकाशन. पृष्ठ सं. 43.

■

उरकुंड प्रमाण-पत्र

URKUND

Urkund Analysis Result

Analysed Document: thesis Sunita.docx (D112529356)
Submitted: 9/14/2021 6:50:00 AM
Submitted By: coordinator.inflibnet@subis.edu.in
Significance: 7 %

Sources included in the report:

Lakshmi Pathak Department of Sociology JP UNIVERSITY.doc (D79462208)
Poornima-choudhary.docx (D81467275)
RANJANA SANJAY final thesis correction file.doc (D76177585)
https://img.nepalipublic.de/others/26515
https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%90%E0%A4%A4%E0%A4%BF%E0%A4%B9%E0%A4%BE%E0%A4%B8%E0%A4%BF%E0%A4%95_%E0%A4%89%E0%A4%AA%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4%B8
http://drnarayanaraju.blogspot.com/2019/01/blog-post_11.html
https://samalochan.blogspot.com/2019/02/blog-post_4.html
https://www.jankipul.com/2018/12/ashutosh-bhardwajs-article-on-novel.html
https://www.sahapedia.org/%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%82%E0%A4%A6%E0%A5%80-%E0%A4%89%E0%A4%AA%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4%B8-%E0%A4%95%E0%A4%BE-%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%B8
https://www.nsrgrammar.com/2020/06/upanyas-upnyas.html
https://samalochan.blogspot.com/2019/01/blog-post_7.html
https://www.prabhasakshi.com/literaturearticles/munshi-premchands-biography-in-hindi
https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%A8%E0%A5%8C%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%A1%E0%A5%81%E0%A4%AC%E0%A4%BF
http://saagarika.blogspot.com/2011/09/
https://www.nsrgrammar.com/2020/06/upanyas-hindi-sahitya.html
https://besthindinovels.com/munshi-premchand-best-novels/
https://www.abplive.com/news/india/writer-krishna-sobti-died-1057414
http://pathey.blogspot.com/2008/03/blog-post_16.html
https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%85%E0%A4%82%E0%A4%97%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%87%E0%A4%9C%E0%A5%80_%E0%A4%89%E0%A4%AA%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4%B8
https://vimisahitya.wordpress.com/2008/01/17/%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A5%80-%E0%A4%89%E0%A4%AA%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4%B8%E0%A5%8B%E0%A4%82-%E0%A4%AE%E0%A5%87%E0%A4%82-%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%80/
https://www.drishtiias.com/hindi/mains-practice-question/question-2052
https://www.onlinekhabar.com/2021/01/927679